|| श्रीवीतरागाय नमः ||

|| श्री वृषभादिमहावीरपर्यन्तचतुर्विंशतितीर्थङ्करेभ्यो नमो नमः ||

वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री विमलसागरजी के पट्ट शिष्य

मर्यादा शिष्योत्तम

आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज

(जीवनवृत)

प्रकाशक

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्
पुष्प संख्या 142

मर्यादा शिष्योत्तम
आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज (जीवन वृत्त)

प्रस्तुति : गणिनी अर्यिका 105 श्री स्याद्वादमती माताजी
श्री अशोक कुमार पाटनी, भागलपुर

प्रबन्ध सम्पादन : ब्र प्रभा पाटनी, बी.एससी., एल-एल-बी, संघ

सम्पादन : डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

प्रकाशक : भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

प्राप्ति स्थान : (१) आर्यिका स्याद्वादमति माताजी संघ
(२) विमल भरत साहित्य सदन, सम्मेदशिखर
(३) अष्टापद तीर्थ जैन मंन्दिर विलासपुर चौक गुड़गांवा (हरियाणा) फोन 09466776611

संस्करण : द्वितीय संस्करण 1000 प्रतियाँ
आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज की द्वितीय पुण्यतिथि
कार्तिक कृष्णा अमावस्या, दिनांक 9 नवम्बर 2008

प्रकाशन सहयोगी : • पदम चंद जी, पदमा देवी पाटनी (जयपुर)
• स्व राजमलजी पाटनी की धर्म - पत्नि
अंजना देवी पाटनी तत्पुत्र
डॉ मनोज कुमार पाटनी (इन्दौर)

संकल्पना : निधि कम्पयूटर्स, जोधपुर फोन 2440578

मुद्रक : श्री चन्दा प्रिन्टर्स, दरियागंज, दिल्ली.११०००२
मो. 9811182588

卐 निवेदन 卐

जिस प्रकार समुद्र से पार होने के लिए नौका का अवलम्बन आवश्यक है, उसी प्रकार संसार से पार होने के लिए तारण-तरण परमोपकारी सच्चे देव, शास्त्र और गुरु अवलम्बनीय हैं। धर्म के मूल प्रवर्तक तो तीर्थंकर देव ही हैं किन्तु कुछ ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि गुरु (गणधर) के अभाव में उनकी वाणी भी नहीं खिरती। गुरु ही भगवान की वाणी को झेलते हैं, द्वादशांग की रचना करते हैं, शास्त्रों में लिपिबद्ध करते हैं, पठन-पाठन एवं सदुपदेश द्वारा आदान-प्रदान करते हुए उसे बहुत काल तक प्रवाहित करते रहते हैं। भगवान महावीर की दिव्य देशना केवल २९ वर्ष ८ माह और २२ दिन प्राप्त हुई किन्तु गुरुओं के परम प्रसाद से उस देशना का प्रवाह २१ हजार वर्ष तक होता रहेगा। इतने लम्बे काल तक धर्म को अक्षुण्ण बनाये रखने का सम्पूर्ण श्रेय परम निस्पृह दिगम्बर गुरु-शिष्य परम्परा को ही है।

गुरु जीते-जागते तीर्थ हैं। वे हमें देव की पहिचान एवं उनकी उपासना विधि आदि बतला कर तथा शास्त्रों का समीचीन अर्थ समझा कर सन्मार्ग में लगाते हैं। इस अपेक्षा इस कलिकाल में वे हमारे विशेष उपकारक हैं। हमारा सौभाग्य है कि आज हमें ऐसे सद्गुरुओं का समागम प्राप्त है। अनेक ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी सद्गुरुओं ने इस भारतभूमि को गौरवान्वित किया है।

वात्सल्य रत्नाकर **परम पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराज** एवं उनके **पट्टशिष्य परम पूज्य आचार्य भरतसागरजी महाराज** ने वर्तमान में निर्ग्रन्थ गुरु-शिष्य परम्परा को ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। गुरु तो गुरु थे ही। उनकी पारखी आँखों ने 'होनहार छोटेलाल' का भविष्य पढ़ लिया था इसीलिए तो छोटेलाल क्षुल्लक शान्तिसागर से मुनि भरतसागर, उपाध्याय भरतसागर और फिर आचार्य भरतसागर के रूप में जन-जन के उपास्य और आराध्य परमेष्ठी स्वरूप को प्राप्त हुए।

❋ मर्यादा शिष्योत्तम - ४ ❋

पूज्य भरतसागरजी महाराज की सच्चे देव, शास्त्र, गुरु में अटूट आस्था थी। उनका सम्पूर्ण जीवन इस तथ्य का निदर्शन कराता है। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा करवाई तो वे अनेक जिनालयों के जीर्णोद्धार में प्रेरक निमित्त बने। जिन भक्ति भी उनकी अनुपम थी। भक्ति में इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें बाह्य की कुछ प्रतीति नहीं रहती थी। पू. **मानतुंगाचार्य** कृत **भक्तामर स्तोत्र** उनका प्रिय स्तवन था। मानतुंगाचार्य जी के वचनों में उनकी गहरी निष्ठा थी–

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।।७।।

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत् संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।।९।।

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्य: शिव: शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्था: ।।२३।।

इन आर्ष वाक्यों ने उनकी जिनभक्ति को संपुष्ट किया था। वे अपने भक्तों को भी 'भक्तामर स्तोत्र' का अध्ययन-पाठ करने को प्रेरित करते थे।

शास्त्र भक्ति भी उनकी अद्वितीय रही है। स्वयं अध्ययन करना, दूसरों को अध्ययन कराना और जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करना मानों उनका मिशन था। उनकी प्रेरणा से अनेक उपलब्ध-अनुपलब्ध आर्ष ग्रंथों का प्रकाशन-पुनर्प्रकाशन हुआ। ज्ञानदिवाकर आचार्यश्री ने स्वयं कितना तलस्पर्शी अध्ययन किया था, यह उनके प्रवचनों के श्रवण-पठन से ज्ञात होता है। उनके प्रवचन चारों अनुयोगों के ग्रन्थों के उदाहरणों से परिपुष्ट हैं। प्रस्तुत कृति में संकलित द्वादश अनुप्रेक्षाओं पर उनके प्रवचन उनकी गहरी समझ, अध्ययनशीलता और चारित्रनिष्ठा के परिचायक हैं।

उनकी गुरुभक्ति तो अद्वितीय, अनुपम, बेमिसाल रही है। **'मर्यादा शिष्योत्तम'** विरुद उनके इस गुण का उद्घोष करता है।

नेत्र दोऊ नीचे किये, चरण कमल की ठौर।
तन्मय मन गुरुदेव में, नजर न आवे और॥

वे 'वात्सल्यरत्नाकर' के 'अन्तेवासी' रहे। अपनी गुरुभक्ति से ही उन्होंने गुरु की अनेक विशेषताओं को आत्मसात् किया। वे पात्र बने और **पात्रतां नीतमात्मानं स्वयं यान्ति हि सिद्धयः।** अपने दीक्षाकाल से गुरु की समाधि पर्यन्त वे सदैव गुरु की कृपा की अभिलाषा रखते हुए उनके सान्निध्य में पूर्णतया समर्पित शिष्य की भूमिका में रहे क्योंकि उनका विश्वास था कि–

ध्यानमूलं गुरोः मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

आधुनिक युग में उन्होंने 'शिष्यत्व' का आदर्श प्रस्तुत किया। ऐसा शिष्यत्व सभी शिष्यों के लिए अनुकरणीय है।

दीक्षा के बाद पूज्य मुनिश्री ने अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं, विषमताओं, उपसर्गों और परिषहों को समभाव से सहन किया। आज वे 'उपसर्गजयी' के रूप में भी पहचाने जाते हैं। जैसे धनार्थी जीवों के लिए किसी भी प्रकार का कष्ट दुःसह नहीं होता, उसी प्रकार तत्त्वज्ञान के अर्थी जीवों एवं भव से विरक्त महात्माओं को भी उस मार्ग में आती प्रतिकूलताएँ, उपसर्ग और परिषह दुःसह नहीं होते हैं।

विद्वद् अनुरागी, सरल प्रकृति, मधुरभाषी, परम सन्तोषी,जिन-श्रुत-गुरु भक्ति में निमग्न, उपसर्गजयी गुरुदेव आचार्य भरतसागरजी के पुण्य स्मरण पूर्वक मैं कवि बनारसीदासजी कृत वन्दना की अनुमोदना करता हुआ यही कहूँगा कि –

भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट,
शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिव मारग में,
जग माँहि जिनेश्वर के लघुनन्दन॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके,
प्रकट्यो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन।

शान्त दशा तिनकी पहचान,
करे कर जोरि बनारसी वन्दन॥

पूज्य आर्यिका स्याद्वादमती माताजी के आदेश से मैं इस कृति के सम्पादन-प्रकाशन कार्य में संलग्न हुआ, एतदर्थ मैं पूज्य आर्यिकाश्री का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। आपके श्रीचरणों में वन्दामि निवेदन करता हूँ। **ब्र. प्रभाजी** के माध्यम से अनेक सूचनाओं का लाभ मिला। जिससे पुस्तक के संयोजन में सहायता मिली, एतदर्थ मैं आप का अनुगृहीत हूँ। सभी अर्थ-सहयोगियों को साधुवाद देता हूँ।

आशा है, जिज्ञासु भक्तों को प्रस्तुत कृति '**मर्यादा शिष्योत्तम**' अपने जीवन को संयमोन्मुख करने की प्रेरणा देगी।

कृति के सम्पादन-प्रकाशन में रही भूलों का उत्तरदायित्व मेरा है। सहृदय पाठकगण इस सम्बन्ध में मुझे अवगत कराने का श्रम करेंगे तो आगामी संस्करण में उन सुझावों का सम्यक् उपयोग हो सकेगा। इत्यलम्,

जैनं जयति शासनम्।

अविरल, ५४-५५, इन्द्रा विहार
सेक्शन ७ विस्तार,
न्यू पावर हाउस रोड, जोधपुर

- डॉ.चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक
दीपमालिका, ९.११.२००७

卐 प्रणति 卐

उपसर्गजेता आगम सुवेत्ता,
स्वाध्यायशीलं चारित्रनिष्ठं।
आचार्यवर्यं श्रीभरतसिन्धुं,
प्रशान्तमूर्तिं प्रणमामि णिच्चं॥

'भवाब्धेस्तारको गुरुः' भवरूपी समुद्र से तारने वाले निर्ग्रन्थ गुरु ही हैं। परम पूज्य **जैनाचार्यश्री भरतसागरजी महाराज** ऐसे ही एक अनुपम व्यक्तित्व थे। बाह्य वातावरण से दूर रह कर अन्तरंग में आत्म तत्त्व को प्राप्त करने-कराने में उनका विश्वास प्रबल था। वे ऐसे सन्त थे जिनकी वाणी में मिठास था, उनकी अनोखी प्रवचन शैली से बात-की-बात में व्यक्ति चुम्बक की तरह खिंचा चला आता था।

आपके अन्तरंग में जिनवाणी के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी। जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करने और उसके विनय की भावना आपके हृदय में कूट-कूट कर भरी हुई थी। आपकी ही प्रेरणा से आर्ष मार्ग के प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रकाशन, पुनर्प्रकाशन हुआ। जन-जन तक जिनेन्द्र की वाणी का परिचय कराने की ललक आपके रग-रग में भरी हुई थी। आप धर्मप्रभावना के अनेक कार्य ख्याति-लाभ-पूजा से रहित होकर करते रहे। आपकी निस्पृहता अनुकरणीय थी।

मुझे आपके श्रीचरणों के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ५८ वर्ष की कुल आयु में से आपने अपने जीवन के ४० वर्ष संयम, व्रतों का पालन करते हुए बिताये। अन्तिम समय में पूर्वाभास हो जाने पर धनतेरस से ही शरीर, संघ, पद से सम्पूर्ण मोह का त्याग कर कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन आपकी पावन आत्मा ने स्वर्गारोहण किया।

आपके व्यक्तित्व व गुणों से सब परिचित हों, इसी आस्था से अपने भावभीने श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ और सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, आचार्य भक्ति पूर्वक केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद बार नमोस्तु करते हुए पूज्य माताजी की यह कृति **'मर्यादा शिष्योत्तम'** परिषद् के नवीनतम प्रकाशन के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती हूँ।

पूज्य **आर्यिका स्याद्वादमती माताजी** के चरणों में वन्दामि निवेदन करती हूँ और कामना करती हूँ कि उनकी लेखनी सदैव मोक्षपथ के पथिकों का मार्गदर्शन करती रहे। कृति के कुशल सम्पादन हेतु **डॉ. चेतनप्रकाशजी पाटनी** को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। ग्रन्थ के प्रकाशन निमित्त उन सभी सहयोगियों की आभारी हूँ जिन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का उपयोग कर हमें अनुगृहीत किया।

श्रीमान् शिखरचन्दजी पहाड़िया संघपति, श्री प्रद्युम्नजी पाटनी इन्दौर, श्री सुरेशजी झांझरी कोडरमा, श्री प्रभुलालजी गिरीडीह तथा श्री मगनलालजी नश्नावत, लोहारिया आदि श्रावकों ने समय पर इस कृति के लिए आवश्यक सूचनाएँ व फोटो आदि भेज कर जो सहयोग किया है, एतदर्थ मैं आप सबकी अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

परम पूज्य आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज के चरणों में कोटिशः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।

– ब्र. प्रभा पाटनी

❋ ❋ ❋

परम पूज्य आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज

परम पूज्य आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज

चर्चानिमग्न गुरु शिष्य, बीसपंथी कोठी, सम्मेदशिखरजी

गोम्मटगिरि, लोहारिया क्षेत्र पर आचार्यश्री भगवान बाहुबली के चरणों में

पूज्य गणिनी आर्यिका १०५ श्री स्याद्वादमती माताजी

卐 अपनी बात 卐

प्रशान्तमूर्ति, गुरु चरणों के भ्रमर, **मर्यादा शिष्योत्तम आचार्य श्री १०८ भरतसागरजी महाराज** के श्रीचरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्यभक्ति पुरस्सर नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।

प्राचीन युग में गुरुभक्ति में समर्पित एकलव्य का नाम जैसे प्रसिद्ध है वैसे वर्तमानयुगीन शिष्यों में आचार्यश्री भरतसागरजी का नाम गुरुभक्ति में अमर रहेगा। तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ भगवान का नाम उपसर्गविजयी व क्षमाभूषण के रूप में अमर है, वैसे ही इस युग के इतिहास में प.पू. आचार्यश्री भरतसागरजी को युगों-युगों तक उपसर्गविजेता, क्षमामूर्ति के रूप में स्मरण किया जाएगा।

आचार्यश्री के गाम्भीर्य, मन्द मुस्कान, धैर्य, साहस, वाणीमाधुर्य, गुरु के प्रति समर्पण भाव आदि महागुणों ने जहाँ उनको प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचाया, वहीं असाता वेदनीय कर्म की तीव्रता ने उन्हें असमय में मृत्यु का ग्रास बना गुरुभक्तों को वियोगाग्नि में दग्ध कर दिया।

वर्त्तमान काल में सत्ताईस वर्षों तक निरन्तर बना रहने वाला गुरु-शिष्य का यह एक अनुपम सुखद संयोग था। मात्र ५८ वर्ष की अल्पायु में ४० वर्ष जिनके संयम साधना में बीत गए ऐसी महान् आत्मा निश्चय ही आसन्न भव्यता को प्राप्त हो यथाशीघ्र मुक्तिरमा का वरण करे, यही भावना है।

परमपूज्य आचार्यश्री मेरे जीवन के मार्गदर्शक थे, आलम्बन थे, प्रेरक गुरु थे। मैंने जो कुछ किया या पाया उसमें गुरुदेव आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज के आशीर्वाद के बाद आपश्री की सतत कृपा और पग-पग पर प्रेरणा ही एक मात्र प्रेरक सूत्र था। आज दोनों उदारचरित गुरुओं के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन बिना जीवन में रिक्तता ही दृष्टिगत होती है।

मर्यादा शिष्योत्तम पुस्तक के माध्यम से पूज्यश्री के जीवनवृत्त को संक्षेप में गूंथकर सूर्य को दीपक दिखाने जैसा दुस्साहस मुझ अल्पबुद्धि शिष्या ने मात्र भक्तिवश ही किया है। **त्वद् भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां।** भूलें रहना स्वाभाविक है, कृपया उनसे अवगत करावें ताकि आगे सुधार हो सके।

प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर पूज्यश्री की स्मृति में समर्पित है प्रस्तुत **मर्यादा शिष्योत्तम** लघु कृति। इस रचना-कर्म के प्रेरक **डॉ. चेतनप्रकाशजी पाटनी** को मंगल आशीर्वाद। सम्पादनकला में सिद्धहस्त उनकी आगमनिष्ठ लेखनी के लिए पुन: पुन: आशीर्वाद। सामग्री जुटाने आदि कार्यों में सहयोगी **ब्र. प्रभा पाटनी** को समाधिरस्तु आशीर्वाद। सुन्दर प्रकाशन व साज-सज्जा के लिए **श्री क्षेमंकर पाटनी** को हार्दिक साधुवाद।

विजितमदनकेतुं निर्मलं निर्विकारं,
रहितसकलसंगं संयमासक्तचित्तं।
सुनयनिपुणभावं ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चम्,
जननमरणभीतं सद्गुरुं नौमि नित्यम्॥

सुजानगढ़ — **आर्यिका स्याद्वादमती**
२७.१०.२००७

卐 समर्पण 卐

जीवन की कंकरीली, कण्टकाकीर्ण

पगडण्डियों पर

हर कदम पर

मेरे

मार्गदर्शक

प्रेरक गुरू

प्रज्ञाधनी

जिनवाणी-प्रसारक

गुरुचरण-चञ्चरीक

सत्पथ प्रदर्शक

परम पूज्य

आचार्य १०८ श्री भरतसागरजी महाराज

के प्रथम पुण्यतिथि प्रसंग पर

उनकी पावन स्मृति को

प्रस्तुत कृति

सविनय, सश्रद्ध, सभक्ति

सादर समर्पित

- आर्यिका स्याद्वादमती

卐 卐 卐

आचार्य विमलसागराय नमः

भरत सिन्धुजी गुरु महा,
रत्नत्रय गुण खान,
जीवन इनका प्रेरक है
पढ़ो-सुनो मतिमान ॥

मर्यादा शिष्योत्तम

भारत भूमि अनादिकाल से महापुरुषों की प्रसविनी भूमि होने से परम पावन रही है। इसीलिए भारत को महापुरुषों का देश कहा जाता है। इसकी रत्नगर्भा, रत्नप्रसूता धरा पर जितने संत, त्यागी, तपस्वी, श्रमण, मुनि एवं महान् आत्माओं ने जन्म लिया है उतने महापुरुष संसार के किसी भी देश में नहीं जन्मे। यहाँ की शीलवती सच्चरित्र नारियों ने महान् सपूतों को जन्म देकर तथा सुसंस्कारित कर अपनी कोख को सदैव ही यशस्वी बनाया है। महान् सपूतों की परमपवित्र सुगन्ध तथा उनके द्वारा संस्पर्शित पावन भावनाओं से यहाँ की संस्कृति सुवासित हो सुख-समृद्धि के मनोरम उद्यान की भाँति फलती-फूलती रही है।

भारतीय संस्कृति का सजीव परिवेश

पावन वसुन्धरा का एक भाग राजस्थान। उसका प्रभाग बाँसवाड़ा जिला। उसमें एक गाँव लोहारिया। भारतीय संस्कृति का जीता-जागता चित्रण दर्शाने वाला, हरे-भरे खेत-खलिहानों से लहलहाता लोहारिया। दो पर्वतों के बीच सुरम्य सरोवर वाला लोहारिया। पर्वत तल में लोहे की खान होने से पर्याय नाम पाया लोहारिया।

उस दिन रात्रि का अन्धकार छँट चुका था। वृक्षों के झुरमुट से पक्षियों की चहचहाहट भरी कोकिल आवाज सुनाई पड़ने लगी थी। सूर्य अपनी आभा के साथ अवतरित होने वाला था। कलियाँ खिलने को थीं। तितलियों का मँडराना और भँवरों का गुंजन प्रारम्भ होने वाला था। मंदिरों में बजने वाले घंटे-घड़ियाल

की सुनाई पड़ती मंगल ध्वनि। सपनों के अथाह सागर में हिलोरें भरने वाला प्राणी नींद से जाग स्वप्नों को सत्य बनाने की उधेड़-बुन में। सुबह-सुबह सिर पर घड़े रख कर कुए पर आ-जा रहीं महिलाएँ। कुछ घरों में हाथचक्की पीसते हुए मधुर गीत गाती। प्रातः मंगल बेला में आराध्य देवों की स्तुति में लीन धर्मपरायण लोगा। कोई गाय-भैंस को चारा-पानी डाल रहा था तो कोई उनके साथ खेत की ओर प्रस्थान कर रहा था।

लोहारिया में सोनारिया

दिनकर चढ़ने ही लगा था कि पिता किशनलाल नरसिंहपुरा की कुटिया में माता गुलाबी देवी की कुक्षि से गुलाब के समान सुगन्धमय सुन्दर बालक ने जन्म लिया। वह शुभ दिन था मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का जन्मदिन रामनवमी, चैत्र सुदी नवमी। ७ अप्रैल १९४९, वार था गुरुवार, नक्षत्र पुष्य था, अनुपम शुभ योग था। मानों उगते सूर्य की अरुणाई से दीप्तिमान, गुरुवृहस्पति और भगवान राम के समुच्चय-पुण्यपुंज का ही वर्तमान युग के पुरुषोत्तम राम के रूप में अवतरण हुआ हो। महान् तेजस्वी पुत्र का जन्म माता के गर्भ को धन्य कर गया और सारे भारत को गौरवान्वित।

छह पुत्रों एवं तीन पुत्रियों में सबसे छोटे होने के कारण पिताश्री ने आपका नाम प्यार से 'छोटेलाल' रखा। धीरे-धीरे छोटे घर-आँगन में किलकारियाँ करता हुआ दूज के चांद सदृश बड़ा होता गया। घर में सबसे छोटा, भोला-भाला बालक, कंचन-सी मासूम काया, मुस्कान भरा मुखड़ा, अपनी बाल-सुलभ क्रीड़ाओं से सबके नयनों का तारा बन गया।

थोड़ा-सा बड़ा होने पर माता ने प्रथम गुरु होने का कर्त्तव्य निर्वाह करते हुए बालक को अपने ममतामयी संस्कारों से सजाना-सँवारना चालू कर दिया। पिता किशनलाल भी कभी-कभी नसीहत का पाठ पढ़ा देते। भाई-बहिनों से हिल-मिल कर रहने वाला छोटे अब औरों को स्कूल जाते देख, स्वयं भी जाने को मचलने लगा। लगभग पाँच वर्ष की उम्र में वह लौकिक शिक्षा ग्रहण करने हेतु पाठशाला जाने लगा।

सुनहरी प्रतिभा : कल का भविष्य

पढ़ते-पढ़ते आप आठवीं कक्षा में पहुँचे। एक दिन कक्षा में गलती करने पर संस्कृत शिक्षक श्री जयनारायण शास्त्री ने सब विद्यार्थियों को सबक सिखलाने के लिए हथेली आगे करने को कहा। सबको बारी-बारी से पड़ने लग गया डण्डा। लेकिन यह क्या? 'छोटे' के सामने आते ही शास्त्रीजी का मारने को उठा डण्डा यकायक रुक गया। उनकी नजर छोटे की हथेली की लकीरों से टकरा गयी थी। नजर पड़ते ही विद्वान् शिक्षक ने हाथों में लिखी इबारत पढ़ ली थी। उनको भान हो गया था कि कीचड़ में लिपटे कमल के समान यह एक दिन समय पाकर अपनी सुरभि से जन-गण-मन को महकायेगा। यह खान से निकले काले पत्थर की तरह तराशने पर हीरा बनकर जगमगायेगा। तपने पर स्वर्ण पाषाण की काली किट्ट कालिमा से मुक्त हो सब के गले का हार बन जायेगा। आज का सामान्य-सा बालक छोटेलाल साधक बन, साधनापथ पर अग्रसर हो महात्मा बन जायेगा। धन्य है वह गुरु, जिसने भविष्य में प्रतिबिम्बित होने वाली सुनहरी प्रतिभा का अपनी विलक्षण दृष्टि से समय के पूर्व ही निर्णय कर लिया।

बाल्यावस्था से ही सरल-सहज गंभीर एकान्तप्रिय मनोवृत्ति थी आपकी। दृढ़ निश्चयी, मेहनती, आज्ञाकारी एवं समय की पाबन्दी आदि गुण आप में कूट-कूटकर भरे हुए थे। उस समय शिक्षा का प्रसार कम होने से गाँव में पढ़ने वाला बालक भगवान् के रूप में इज्जत पाता था। आपने एक के बाद एक सफलता के सोपान चढ़कर मैट्रिक तक की लौकिक शिक्षा राजकीय हायर सेकेण्डरी स्कूल, लोहारिया में ही प्राप्त की। आपका अनुशासित जीवन सब विद्यार्थियों के लिए आदर्श था। "पूत के लक्षण पालने में ही नजर आते हैं" कहावतानुसार विद्यार्थी जीवन में भी मित्रों को, छोटे-छोटे बालकों को निःशुल्क पढ़ाकर मानों भावी उपाध्याय पद की योग्यता दर्शाते थे।

नेतृत्व गुण आपमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। यदि आप साधु नहीं बनते तो फिर नेता अवश्य बनते। हर कार्यक्रम में आप अग्रणी रहते थे। पाँच-सात सहपाठी तो हर समय आपके आगे-पीछे ही रहते थे। आपकी रुचि लौकिक शिक्षा से ज्यादा देशसेवा एवं धार्मिक क्रियाकलापों में थी।

आपने घर में एक मन्दिर-सा बना रखा था। वहाँ पर आप प्रतिदिन पंच परमेष्ठी व भगवान् महावीर की संध्या समय आरती उतारते थे। इस समय आपके अनेक सहपाठी भी जुट जाया करते थे। समय की पाबन्दी इतनी कि लोग आरती होते देख घड़ी मिलाया करते थे। आपने अपनी बाल्यावस्था में ही आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी, मुनि श्री देवेन्द्र सागर जी, आचार्यश्री धर्मसागर जी एवं आर्यिकाश्री ज्ञानमती माताजी आदि के दर्शन पा लिये थे और काफी प्रभावित हुए थे।

लक्ष्य

देशभक्ति एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति दृढ़ आस्था आपके रोम-रोम में समायी हुई थी। सन् १९६२ में चीन ने देश पर विश्वासघाती हमला किया तो आपके मन में देशभक्ति का ज्वार किशोरावस्था के बावजूद प्रबल हो उठा। आपने मन-ही-मन देश की सीमाओं की रक्षा करने की ठानी और लग गये सच्चा सिपाही बनने के मिशन में। मनोयोग से रायफल चलाना, तैराकी करना आदि कलाओं में निपुणता हासिल कर होमगार्ड की ट्रेनिंग पूरी कर ली। एक दिन बातों-बातों में आपने माँ को सैनिक बनकर देश-सेवा में जीवन अर्पित करने का अपना निश्चय सुनाया। सुनते ही ममतामयी माँ का हृदय द्वन्द्व के भँवर में फँस गया। सोच-विचार के बाद द्वन्द्व से निकलते हुए आपको सेना में भर्ती होने की अनुमति प्रदान नहीं की। माँ की अनिच्छा को देखकर आपने आज्ञाकारी पुत्रवत् सैनिक बनने का विचार त्याग दिया।

अब सोद्देश्यपूर्ण जीवनपथ चुनने के लिए आप सोच-विचार में निमग्न हो गये। तभी सोचते-सोचते विचार आया कि मैं क्यों न पण्डित या साधु बन जाऊँ। श्रमण-पथ कौन-सा बुरा है? इस पथ पर तो देशभक्त भी न्योछावर होते हैं। सोचते-विचारते आपको जीवन जीने का उद्देश्य मिल गया था। अब आपको संसार के दुष्चक्र में न पड़कर पुण्योदय से मिली मानव पर्याय की सार्थकता सिद्ध करनी थी।

आपके चिन्तन की दिशा बदल गयी थी। आप यह सोचते थे कि अनादिकाल से इस जीव को हर पर्याय में माता-पिता, भाई-बहिन मिलते रहे

हैं, वे आगे भी मिल सकते हैं, नहीं मिली तो मुक्ति। इस अनमोल नर भव में मुझे मुक्ति लक्ष्मी की तलाश करनी है। बस, निमित्त या उचित अवसर का इन्तजार होने लगा।

इस दरम्यान कमलवत् निर्लिप्त रहकर बाँसवाड़ा नगर में एक सेठ के यहाँ नौकरी पर लग गये। उनके यहाँ तेल-घी की आढ़त का व्यवसाय था। आप कर्तव्यपरायणतावश उनके यहॉ परिश्रम और लगन से कार्य करते थे। इसी कारण आपने सुदूर देहातों में अपनी पैठ जमा ली थी और व्यापार काफी बढ़ गया था और सेठजी का भी आप पर अतिशीघ्र विश्वास जम गया था। उन्होंने आपकी क्षमता और सदाचार से प्रभावित हो पूरी दुकान आपके सुपुर्द कर दी थी। वे आपको पुत्रवत् स्नेह देने लगे थे। लेकिन सबकुछ अनुकूल होने के बावजूद आपका अन्तर्मन व्यापारादि कार्यों मे नहीं लग रहा था, कारण रोम-रोम में वैराग्य जो समाया था।

नौकरी करते-करते छोटेलाल की खोज चालू थी, कहाँ जाऊँ, मेरी शांति मुझे कहाँ, कैसे मिलेगी? बस, इसी उधेड़-बुन में दो वर्ष का समय बीत गया। एक दिन सोचा–'बिना सद्ज्ञान के शान्ति कहाँ? चलो, ज्ञान के लिए मोरेना विद्यालय चलें'–इन्हीं विचारों का ताना-बाना बुन रहे थे कि तभी करुणहृदय, ऊँचा कद, मधुर मुस्कान, धर्मध्यानी, स्वर्ण के समान पीत वर्ण, तेजस्वी कांति के धारक महाचार्य श्री विमलसागर जी महाराज अपने संघ सहित बाँसवाडा पधारे।

धर्मपरायण सेठजी तीनों प्रहर उनके दर्शन करने चले जाते छोटेलाल जी को दुकान पर छोड़कर। एक दिन सुबह दुकान खोली ही थी कि सेठजी ने कहा–"छोटेलालजी! मैं आचार्य महाराज के केशलोंच देखने जा रहा हूँ आप दुकान पर रहना।" प्रतिदिन इच्छा होते हुए भी छोटेलाल जी सेठजी के चले जाने के कारण नहीं जा पाते थे लेकिन उस दिन उनका मन मचलने लगा आचार्यश्री के दर्शन व केशलोंच देखने हेतु। उद्विग्न हो आपने सेठजी से कह दिया–"आप सँभालिये अपनी दुकान, मुझे आपकी नौकरी नहीं करनी।" कहने के बाद एक पल के लिए भी रुके नहीं। सीधे गुरुजी के दर्शनार्थ पहुँच गये। नौकरी के बंधन

को तोड़ महानिधि के दर्शन करने पहुँचे छोटेलाल जी दर्शन कर कृतार्थ हुए। उनके प्रथम दर्शन-मात्र से आपको अपूर्व शांति मिली। आप गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हो बैठ गये। गुरुदेव ने पुत्रवत् आशीर्वाद दिया। फिर नजर भरकर देखा छोटेलाल की ओर। मानों अपने निमित्तज्ञान से छोटे में कुछ पढ़ रहे हों। फिर पूछ बैठे– क्या नाम है तुम्हारा?

–जी, छोटेलाल। नाम पूछने के पश्चात् आचार्यश्री कुछ देर अपने आप में निमग्न। लगता था जैसे अपनी व छोटेलालजी की दोनों की गुणराशि मिला रहे हों। उनके मुखमण्डल पर असीम शान्ति-सी उभरी देख छोटे आगे खिसका और पकड़ लिये मुनिवर के चरण। धर दिया शीश। कहने लगे–मुझे भी आपके समान बनना है और तीन दिन आचार्यश्री के चरण-सान्निध्य में ही गुजार दिये।

अपनी सेवा, आदर, श्रम, विनम्रता, लगन, निष्ठा और निष्कपटता से छोटे गुरु को सहज ही भा गये। गुरु पूछ बैठे–

–बेटा! मेरे साथ चलोगे?

अन्धे को क्या चाहिए? दो आँखें। तनिक भी देरी न कर छोटे ने कहा– हाँ, हाँ!

"गुरुवर! मुझे अपनी शरण में ले लो।" कहकर दोनों हाथों से चरण पकड़ लिये। आचार्यश्री ने कहा–"ठीक है बेटा! हम तुम्हें अवश्य साथ में ले लेंगे।" आचार्यश्री का 'बेटा' शब्द बालक के हृदय में स्नेह-वात्सल्य भर रहा था। छोटे हो गये थे निहाल। तुरन्त गुरु की पद-रज आँज ली। प्रमुदित हो उठे मन की मुराद पूरी होने पर। गुरु-शिष्य का नाता तय हो गया। मानों प्रथम दर्शन में ही दशरथ-राम का मिलाप हो गया हो। अनेक प्रलोभनों के बावजूद नौकरी आदि छोड़-छाड़ वे संघ के साथ हो लिये। संघ बाँसवाड़ा से पारसोला आया। वहाँ से विहार करता हुआ बालक छोटेलाल की जन्मभूमि लोहारिया पहुँचा।

आचार्यवर श्री विमलसागर जी का सान्निध्य आपको घरबार छोड़ तपस्या की राह पर चलने का मौन आमंत्रण दे रहा था। लोहारिया में माँ तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की यात्रा को गई हुई थी तथा बालक की विरक्ति भावना को

शुरू से जानती भी थी। बालक ने सोचा–मौका अच्छा है, यदि माँ यहाँ रहती तो कुछ करने नहीं देती। कारण माँ का सबसे छोटा, लाड़ला एवं आशाओं का दीपक जो था। अत: माँ की अनुपस्थिति में ही बालक मैदान में कूद पड़ा काममल्ल को युद्ध में पछाड़ने के लिए। उसने अपनी जन्मभूमि पर अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत आचार्यश्री से ले लिया।

बालक छोटा था अत: लोगों ने आचार्यश्री से विनयपूर्वक इनकार किया। किन्तु दूरदर्शी आचार्य ने मुस्कराते हुए कहा–"हाथ में आये जगमगाते-चमचमाते हीरे को कौन छोड़ता है?" और छोटे मन-ही-मन सबसे अन्तिम विदा ले गुरुदेव के साथ चल पड़े। भवानीमंडी में आपको आचार्यश्री ने दो प्रतिमा के व्रत दिये, आपको अपनी डगर मिल गयी थी। गुरुचरणों में अपना जीवन पूर्णतया समर्पित कर दिया था। बस, एक ही साध मन में थी गुरुदेव के समान बनने की।

देश में एक और बाल ब्रह्मचारी पैदा हो गया। बाल ब्रह्मचारी छोटेलाल जिसने माता और बहिनों के अलावा किसी नारी को देखा ही नहीं था। जिस किसी नारी को देखता भी तो उसमें माता या बहिन के ही दर्शन पाये थे बस। स्वविवाह की बात कभी सोची ही नहीं थी आपने। आपको तो विवाह की उम्र आने से पहले ही आ गये वे विचार जो वधू का नहीं मुक्तिवधू का वरण करना चाहते थे।

छोटे की अन्तर चाह से लोगों का परिचय नहीं था। अत: छोटे के सम्बन्ध में जो सुने वही हतप्रभ। नव वैराग्य गाँव-समाज, सगे-सम्बन्धी सभी को खटक गया। लगा–एक नन्हे बच्चे को जैसे हिमालय पर चढ़ने को कहा गया हो।

यह मोहजाल और दृष्टि-भ्रम ही था, नहीं तो उसकी एकान्तप्रियता, शान्ति की खोज, विरक्ति और शाश्वत सत्यता का मर्म समझने की चाहत, बचपन से ही उसे सामान्य जीव से ऊपर भव्यजीव की यात्रा पर होने का परिचय देती थी। पूत के गुण पालने में ही बराबर चमक बिखेरते थे। शायद पालना झुलाने वालों के पास ही वह दिव्यदृष्टि नहीं थी जो अंदाज लगाते उसके भावी जीवन का, जीवन के विकास का और उसकी भवितव्यता का।

क्या उसके चाल-ढाल, रहन-सहन और आचार-विचार से झलक नहीं मिल रही थी? छोटों के प्रति वात्सल्य-भाव, बड़ों के प्रति आदर-सेवा का भाव, निराश्रितों के प्रति सहयोग का भाव, धनिकों के प्रति समभाव, देवशास्त्र-गुरु के प्रति अनन्य भक्ति और तीर्थों के प्रति अभिवंदना का भाव—कह तो रहे थे उसके बड़ा बनने के बारे में। बड़ा भी यकायक नहीं, वह तो कब से देख रहा था चातक की भाँति व्यग्र भाव से बादल की ओर, स्वाति नक्षत्र की बूँद का आस्वादन करने के लिए।

गुरु से संस्कार का प्रथम स्पर्श और निर्ग्रन्थ के समक्ष जनेऊ की ग्रन्थि, उसे आगे नया कुछ सोचने-समझने का वैचारिक धरातल दे गयी थी। साथ में रहकर आचार्यश्री की सेवा-वैयावृत्ति करते हुए आपको अत्यन्त सन्तुष्टि प्राप्त होने लगी थी। लगता था जैसे एक तीर्थ की वन्दना कर ली हो। साधुओं की क्रियाओं का आत्मानुभव भी होता जा रहा था और भीतर वैराग्य भाव दृढ़ से दृढ़तर। मन के एक कोने में यह भी लग रहा था कि मोह के मारे परिवारजन साधना-पथ पर और आगे बढ़ने से रोकना चाहेंगे। माँ ममता के ब्रह्मपाश में जकड़ने की कोशिश करेगी। अत: आप त्याग-मार्ग पर शीघ्र अपने पैर बढ़ाना चाह रहे थे, इतने पैर बढ़ाना चाह रहे थे कि 'पैर' पैर न रहकर 'चरण' हो जायें।

बिन्दु से सिन्धु

छोटेलालजी की यात्रा 'बिन्दु' से 'सिन्धु' की ओर चल पड़ी और विमलसागरजी का मन 'सिन्धु' से 'बिन्दु' की ओर। 'बिन्दु' 'सिन्धु' में समाहित होना चाहता था और सिन्धु बिन्दु को अपने में समेट लेना चाहता था। छोटेलाल के रूप में गुरु को इतना विनम्र, मृदुभाषी शिष्य मिला जिसे गुरु की पारखी नजरें हर तरह से अपने अनुकूल पा रही थीं। छोटे उनको उस गीली मिट्टी के समान लगा था जिसे मनचाहे रूप में ढाला जा सकता था। वह ऐसा कोरा कागज था जिस पर आचार्य विमलसागर जी इच्छानुरूप प्रतिबिम्ब उतार सकते थे।

गुरुरूपी पारसमणि का संसर्ग पा छोटे का व्यक्तित्व स्वर्ण समान निखरने

लगा। गुरु उसे अपने सामीप्य का गौरव देने लगे, होने लगी हृदय-हृदय की चर्चा। सींचने लगे एक मस्तिष्क का अमृत दूसरे पर। सद् सान्निध्य से अपूर्व शांति पा छोटे का उद्विग्न मन स्थिर होने लग गया। आचार्य महाराज जैसा कहते वे वैसा ही करते। निष्ठा इतनी कि बस–'बाबावाक्यं प्रमाणं।'

वैरागी का मन मात्र ब्रह्मचर्य व्रत से ही सन्तुष्ट थोड़े होता है। वह तो आगे बढ़ने की ही सोचता है कि कब मैं साधु बनूँ और अपने जीवन को सफल बनाऊँ। अत: सम्यक् प्रकार से गुरुभक्तिपूर्वक आपने क्षुल्लक दीक्षा हेतु आचार्यश्री के सामने श्रीफल चढ़ाकर अपना मन्तव्य प्रस्तुत कर दिया। आचार्यश्री तो अपनी सूक्ष्मदृष्टि से मन-ही-मन योग्य पात्र मान ही बैठे थे, सो छोटे का निवेदन स्वीकार कर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी सं. २०२५ दिनांक २५ मई १९६८ को अजमेर समाज के सामने क्षुल्लक दीक्षा देने का निर्णय सुना दिया।

इस बीच बहुत से परिवारजन आपको लोहारिया वापस लिवाने के लिए आये। सबने बहुत तरह से समझाया, बहुत प्रकार का प्रलोभन भी दिया लेकिन दृढ़प्रतिज्ञ वैरागी के मन को कोई नहीं बदल सका। तब अश्रुपूरित नेत्रों से नियति मान सतोष कर घर लौट आये परिवारजन। मोह भरा उनका मन सोच ही नहीं पा रहा था कि लोहारिया का छोटेलाल कुछ वर्षों में बड़ा बन सारे संसार की अमूल्य निधि बन जायेगा।

अजमेर समाज के लोगों ने भी आचार्यश्री से निवेदन किया कि महाराज ब्रह्मचारीजी की अभी बहुत छोटी अवस्था है। जैन साधुओं की चर्या बहुत कठिन है। अत: वे जब परिपक्व हो जायें तब दीक्षा दे दीजियेगा। सुनने के बाद महातपसी विमलसागरजी ने कहा–मैंने दो महीने में पात्र की मजबूती देख ली है। यह मात्र भावावेश में नहीं, दृढ़निश्चयी और विचारवान है। यह शरीर से फूल-सा दिखने वाला युवक अन्तर्मन से कड़ा और निजाश्रित है। इसको कोमल मत समझो, यह कंटक-सा कड़ा है। तत्पर है भिदने के लिए धर्म में-चारित्र में-तप में। आचार्यश्री की गहन दृष्टि परीक्षण से गुजरे दीक्षार्थी के बारे में आश्वस्त हो समाज ने दीक्षा हेतु अपनी सहमति दे दी।

क्षुल्लक पद का दीक्षार्थी ब्रह्मचारी छोटेलाल। १९ वर्ष की अल्प वय,

कृशकाय शरीर, सुन्दर गेहुआँ रंग, भोला-भाला निर्विकार चेहरा, लम्बा कद। दीक्षा के पूर्व तीन दिनों तक चक्रवर्ती के समान रत्नजड़ित मुकुट, राजसी वेशभूषा, स्वर्णाभूषणों से सज्जित दूल्हे की तरह हाथी पर आरूढ़ कर आपकी बिन्दौरी निकाली गई। सजे हुए हाथी का अपनी गजोचित चाल से झूमते हुए चलना, बैण्डबाजा, शहनाई, अपार जन समुदाय और पूरा शहर बन्दनवारों और तोरणद्वारों से सजा हुआ। अजमेर शहर में महोत्सव का समाँ बँध गया। अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। ब्र. छोटेलालजी का हाथी पर बैठे मन्द-मन्द मुस्कराना, लगता था वे परिग्रह से लदकर अपरिग्रह पर विहँस रहे थे। वे नश्वर संसार को छोड़ 'सार' की ओर बढ़ने के कारण मुस्करा रहे थे। दीक्षा के एक दिन पूर्व गणधरवलय विधान हुआ था जो दीक्षार्थी के लिए इष्ट होता है। अब वह समय आ पहुँचा था जब अजमेर की धरती पर गुरुशिष्य की सात्विक परम्परा जन्म लेने को बेचैन थी।

क्षुल्लक शांतिसागर

२५ मई १९६८, ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी। सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ भगवान् का जन्म-तप-मोक्षकल्याणक दिवस। मध्याह्नकाल। भयंकर ऊमस व गर्मी के बावजूद पंडाल लगभग २० हजार नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ। दीक्षा समारोह प्रारम्भ। ब्र. छोटेलाल जी ने खडे होकर गुरुवर की वन्दना करके पुन: हाथ जोड़कर दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। तत्पश्चात् गुरुदेव ने अपने कर-कमलों से विधिपूर्वक दीक्षा संस्कार कर आपको क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। आपका नाम रखा गया क्षुल्लक श्री १०५ शांतिसागर जी महाराज। कारण आप स्वयं थे ही शान्त स्वभावी और उस दिन था शान्तिनाथ भगवान् का त्रिकल्याणक मंगल प्रंसग। दीक्षा संस्कार समारोह इतनी धूमधाम से सम्पन्न हुआ कि उसे अजमेर के जैन इतिहास का अभूतपूर्व एवं अविस्मरणीय आयोजन कहा गया।

ग्यारह प्रतिमा, लंगोटी और चादर, हाथ मे मयूरपिच्छिका व कमण्डलु। दो लंगोटी और दो चादर का परिग्रह। केशलोंच अथवा कैंची से केश निकालने का विकल्प। गुरु के पीछे गोचरी वृत्ति से जाकर श्रावक के यहाँ पडगाहन विधि से पहुँचकर नवधाभक्ति होने के बाद बैठकर पात्र में भोजन करने की वृत्ति वाले बन गये थे क्षुल्लक शांतिसागर।

दर्दनाक हादसा

परीषह-उपसर्ग तो जैन साधुओं के जीवन के शृंगार होते हैं। उपसर्ग और परीषह से युक्त जीवन ही अपनी वास्तविक निधि को प्राप्त करने में सक्षम होता है। लेकिन एक नवदीक्षित अल्पवय क्षुल्लक की कठिन उपसर्ग द्वारा परीक्षा होना एक दर्दनाक घटना थी जिसके सुनने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

अभी क्षुल्लक अवस्था धारण किये मात्र १५ दिन भी नहीं बीते होंगे कि अजमेर से मंगल विहार कर संघ रात्रि को विश्राम के लिए यवन बहुल ग्राम नागेलाव में रुका था। रात्रि सानन्द व्यतीत हुई। प्रात: पाँच बजे सामायिक के बाद सभी त्यागीगण पीसांगन को रवाना हो गये। लेकिन क्षु. शान्तिसागर जी को शौच की बाधा हुई तो वे अकेले पीछे रह गये। कुछ अर्थलोलुप लुटेरों ने दीक्षा पूर्व वैराग्य जुलूस में स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित उनको देखा था तभी से कीमती आभूषणों को देखकर मन ललचाने से इन पर उनकी बुरी दृष्टि लगी हुई थी। सौ मौका देखकर, इन पर हमला बोल दिया–तुम्हारे पास इतने सोने, मोती, हीरे के आभूषण हैं, वे हमें दो। क्षुल्लकजी ने उनको बहुत समझाया–मेरे पास कुछ भी नहीं है। पर वे कहाँ मानने लगे। इस पर क्षुल्लकजी मौन हो गये। कुछ नहीं मिलने पर लुटेरों ने प्रतिशोधस्वरूप उनको एक कुए में डाल दिया। क्षुल्लकजी पर कर्मयोग से विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा था। घटना की किसी को कानोंकान जानकारी नहीं हुई।

अजमेर के कुछ लोग जीप लेकर सुबह नागेलाव आये तो संघ को ग्राम के स्कूल में न देखकर जीप आगे बढ़ाने वाले थे कि स्कूल की चारदीवारी के पीछे कमण्डलु और चादर रखी देखकर असमंजस में पड़ गये–आखिर ये यहाँ क्यों रखे हुए हैं?

जीप पीसांगन की ओर बढ़ी। सभी त्यागियों को सम्हाला। पता चला कि नवदीक्षित क्षुल्लक महाराज उनमें नहीं है। जनता में बड़ा क्षोभ हुआ और सारा वातावरण संतापमय बन गया। अब तक संघ अपने गन्तव्य पीसांगन तक पहुँच चुका था। बात फैलते देर न लगी। जीप, स्कूटर, कार, साईकिल जो भी साधन जिसके पास था दौड़-धूप शुरू हो गई परन्तु क्षुल्लकजी का कोई

पता नहीं लग रहा था। गर्मी के कारण सभी परेशान हो रहे थे। त्यागियों की चर्या का समय आगे सरक रहा था।

किसी ने कहा–अभी तक नहीं आया–कल का छोकरा है भाग गया होगा। कोई कहने लगा–इतने छोटे बच्चे को दीक्षा नहीं देनी चाहिए, आदि मनचाही अनेक चर्चाएँ होने लगीं।

संघ संचालिका चित्राबाई के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। आचार्यश्री भी चिन्तित हो चले थे। तभी अजमेर निवासी पं. हेमचन्द्रजी शास्त्री ने आचार्यश्री से प्रार्थना की–"गुरुदेव! आपका निमित्तज्ञान इस समय क्या कहता है?" आचार्यश्री ने बडे विश्वास के साथ उत्तर दिया–"वह होनहार बालक है, कहीं नहीं गया है। किसी विपत्ति में पड़ गया है। वह किसी जलमग्न स्थान पर सुरक्षित है परन्तु मिलने में समय लगेगा।" अब सभी लोग कुए-बावड़ियाँ खोजने चल दिये।

इधर कुए में णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए क्षुल्लक जी शान्तिपूर्वक ध्यानमग्न थे, मछलियाँ पैरों को खा रही थीं, सर्प फुंकार रहे थे फिर भी नियम सल्लेखना ले वे कभी तैर रहे थे, कभी कायोत्सर्ग कर रहे थे। कुए पर एक महिला पानी भरने आई। अन्दर मनुष्य की आवाज सुनकर घबरा गई। क्षुल्लक जी ने कहा–"मुझे निकाल लो, डरो नहीं।" महिला ने चरस डाल दिया। इसमें बैठकर आ जाओ। क्षुल्लक जी ने विपत्ति में भी धर्म व सदाचार को नहीं छोडा। बोले–"चमड़े के चरस में मैं नहीं बैठूँगा।" तभी जैन और जैनेतर लोग वहाँ पहुँच गये। पूरे सात घंटे बीत चुके पानी में, तत्पश्चात् प्रयत्नपूर्वक आपको निकाला गया। यद्यपि कोमलांग क्षुल्लक जी का पूरा शरीर सफेद पड़ चुका था फिर भी आपने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। आप मौत के मुँह से बच निकले। मानों यमराज ने आपकी प्रतिभा के तीक्ष्ण तेज से हार मानकर, आपको जीवन प्रदान कर दिया था।

जनता आपको देखने उमड पड़ी और जयनाद पूर्वक पीसांगन ले आयी। आचार्यश्री का निमित्त ज्ञान बिल्कुल सत्य निकला। उस दिन आचार्य महाराज ने घोषणा की–यह क्षुल्लक एक महान् नररत्न होगा तथा अपने व्रतों से कभी

च्युत नहीं होगा। आचार्यश्री की वाणी अक्षरश: सत्य निकली।

क्षुल्लकजी का इस उपसर्ग से शरीर कड़ा हो गया तथा जगह-जगह चोट भी आयी थी। आचार्यश्री एवं आर्यिका सिद्धमतीजी की सेवाचर्या द्वारा आप उपसर्ग के प्रभाव से मुक्त हुए। गुरुदेव के आशीर्वाद से नवजीवन पाया। इतनी छोटी वय में क्षुल्लक अवस्था में घोर उपसर्ग और परीषहों को धीरता से सहने वाले क्षुल्लकजी की सिद्धि चारों दिशाओं में फैलने लगी। संघ विहार कर चातुर्मास करने हेतु सुजानगढ़ पहुँच गया।

समाज की रोटी फोकट की है क्या?

सुजानगढ़ में आचार्यश्री के दर्शनार्थ पर्युषण पर्व में पं. सुमेरचन्दजी दिवाकर पधारे। उन्होंने आचार्यश्री को नमोस्तु किया। पंडितजी की दृष्टि सामने बैठे छोटे से क्षुल्लक महाराज पर पड़ी।

पंडितजी ने गंभीरता से क्षुल्लकजी को देखा। छोटी-सी वय में यह क्या? पंडितजी ने कुछ आवेश भरे शब्दों में कहा–"महाराज जी! इनको छोटी अवस्था में दीक्षा क्यों दी? पढाना-लिखाना चाहिए था। समाज की रोटी फोकट की है क्या?"

आचार्यश्री तो मात्र मुस्करा दिये, बोले–"पंडितजी, आप तो पढ़कर महापंडित हो गये हो, आओ, तुम ही दीक्षा ले लो।" अब पंडितजी क्या बोलें? वहाँ से सिर नीचा करके चले गये।

कुछ देर बाद पंडितजी सरल स्वभावी क्षुल्लकजी के पास पहुँच गये। वे बालक तो थे ही, अभी हाल में त्यागमार्ग में प्रवृत्त होने से विशेष कुछ जानते नहीं थे। पंडितजी ने क्षुल्लकजी पर प्रश्नों की बौछार लगा दी। क्षुल्लकजी ने शान्तिपूर्वक कहा–पंडितजी! अभी मैंने अध्ययन शुरू किया है, अभी तो मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ।

सहसा पंडितजी ने कह दिया–"क्या पैसा कमाना नहीं आता था जो समाज की रोटी खाने आ गये हो?"

क्षुल्लकजी का शान्त एवं गंभीर चेहरा देख, पंडितजी सहम गये। कुछ

देर पश्चात् क्षुल्लकजी के शारीरिक लक्षण देख चुप हो, चरणों में नतमस्तक हो पंडितजी मन-ही-मन पछताते हुए चल दिये।

नया मोड़

पंडितजी के प्रश्न और व्यंग्य आपको मर्माहत कर गये थे। आपके मन में विचारों का ज्वार उठा और सुषुप्त प्रतिभा को झकझोर गया। एक-एक करके संस्कृत शिक्षक, आचार्यश्री एवं पंडित सुमेरचन्द्र दिवाकर द्वारा कही गयी बातें मस्तिष्क में तैरने लगीं। मन-ही-मन निश्चय किया कि अब मुझे अपनी प्रतिभा से दो-चार होना है। दृढ़ परिश्रम एवं लग्न से ज्ञानार्जन कर छिपी हुई बहुमुखी प्रतिभा को उजागर करना है।

बस, एकान्तप्रिय क्षुल्लक शान्तिसागर ध्यान-अध्ययन, पठन-पाठन में पूर्णतया संलग्न हो गये। आपके प्रवचनों का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। रात्रि में घंटों आपका प्रथमानुयोग के आधार पर प्रवचन होने लगा। सुजानगढ़ में आप संघ में सबसे छोटे होने के कारण 'टाबर महाराज' के नाम से विख्यात हो गये। जनता आपके सरस प्रवचन सुनने के लिए आतुर रहती। परिणामत: प्रवचन में अपार भीड़ जुटती। क्षुल्लक अवस्था में भी आपकी निर्दोष कठिन चर्या, उत्कट आगमनिष्ठ ज्ञानार्जन की अभिलाषा संघ, समाज एवं गुरुहृदय को प्रभावित करने लगी। जहाँ-जहाँ संघ का विहार हुआ, आपने अपनी मधुरवाणी से प्रवचन देकर जन-जन का मन मोह लिया था।

जीवन के चार आधार-स्तम्भ

आर्यिकाश्री सिद्धमती माताजी आचार्यश्री के संघ की प्रथम एवं प्रमुख आर्यिका थीं। आप एक विदुषी, सरलस्वभावी, वात्सल्यमयी आर्यिकारत्न थीं। वैय्यावृत्ति, उपदेश, स्वाध्यायादि आपके गुण थे। आप आरा आश्रम की स्नातक थीं। पंडिता चन्दाबाई से आपने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर गहन अनुचिंतन-मनन किया था। पश्चात् गया में अध्यापन-कार्य किया था। आचार्यश्री के मुनि अवस्था में दर्शन से आपको विरक्ति प्राप्त हुई थी। संघ में आपका अनुशासन एवं गुरुभक्ति स्तुत्य थी। आपकी सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर जिन भगवान का स्मरण करते हुए समाधि हो गई।

आपका क्षुल्लक शांतिसागरजी पर काफी उपकार एवं वरद हस्त रहा। आपने उनको स्नेह दे संघ में पुत्रवत् अपनाया और विशद धार्मिक शिक्षा प्रदान कर सन्मार्ग पर लगाया। आप क्षुल्लक जी के व्यक्तित्व रूपी भवन के निर्माण में नींव की ईंट बनीं।

आचार्यश्री द्वारा दीक्षित प्रथम मुनि पार्श्वसागरजी। शरीर अतिकृश पर आत्मा अति शक्तिसम्पन्न। आपने आचार्य महाराज के साथ ही मोरेना विद्यालय में अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आप आगमनिष्ठ, गुरुभक्त साधुरत्न थे। आपके योग्य गुणों से प्रभावित होकर समाज ने गुरुआज्ञा से आपको आचार्य पद पर आसीन किया था। आपने शरीर की जीर्णावस्था जान आगम के आधार से १२ वर्ष की उत्तम समाधि को गुरु साक्षीपूर्वक ग्रहण किया था। बसनगढ़ी अतिशय क्षेत्र पर आचार्य पद का त्याग कर विधिवत् अपने शिष्य मुनिवासुपूज्यसागर जी को आचार्य पद पर आसीन किया और स्वयं सम्यक् समाधिपूर्वक स्वर्गारोहण कर गये। आपने क्षुल्लक शांतिसागरजी के व्यक्तित्व को अनुशासन रूपी छैनी से तराशा एवं व्यावहारिक शिक्षा प्रदान कर सजाया-सँवारा। आप क्षुल्लकजी को विहारादि में अपने साथ रखते थे।

आचार्यश्री द्वारा संस्कारित मुनि मुनिसुव्रतसागरजी उच्चकोटि के विद्वान् थे। वे मोरेना विद्यालय में आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के सहपाठी रहे। बाद में आप पं. पन्नालालजी शास्त्री भिण्डवालों के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। आपका धर्म, न्याय, साहित्य एवं व्याकरण पर समान अधिकार था। पहले आप आचार्यश्री से क्षुल्लक प्रबोधसागरजी के रूप में दीक्षित हुए। सन् १९७१ में राजगृही सिद्धक्षेत्र पर आपने दिगम्बर दीक्षा धारण की। आपने अपना सद्सान्निध्य देकर क्षुल्लक शांतिसागरजी को अपनी विद्वत्ता से न्याय एवं व्याकरण में पारंगत किया और दीक्षागुरु आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज तो ऐसी स्फटिकमणि थे जिन्होंने अपनी आभा से हर क्षेत्र से नख से शिख तक आपको प्रकाशित किया। आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त साहस और सम्बल, स्नेह और वात्सल्य से ही क्षुल्लक शांतिसागरजी उच्चकोटि के साधक बने।

पात्र तो होनहार था। निष्ठा, लगन, विलक्षण बुद्धि और स्मरण शक्ति

का धनी। आर्यिकाश्री सिद्धमतीजी, मुनिश्री पार्श्वसागरजी महाराज, मुनिश्री मुनिसुव्रतसागरजी महाराज एवं आचार्यश्री से जो कुछ ग्रहण करने को मिलता रहा, पूरी तन्मयता से आत्मसात् करता गया। शांतिप्रिय शांतिसागरजी को अपूर्वशान्ति मिलने लगी थी। चार आधार स्तम्भों का अनुपम योग जो मिल गया था।

आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज स्वयं कहते–"क्षुल्लकावस्था में मैंने आचार्यश्री के मार्ग-निर्देशन में जैनधर्म के अध्ययन के साथ त्यागमार्ग में प्रवेश किया। ज्ञान और चारित्र की दोनों धाराएँ एकसाथ जीवन में प्रवाहित हुईं। त्याग मार्ग में मुझे अपूर्वशान्ति का अनुभव हुआ। मेरे जीवन में श्रद्धा-भक्ति, शान्ति तथा ज्ञान-चारित्र की अविरल धारा बह रही थी। मैं गुरुदेव का ऋणी हूँ।"

अभी कुए में डालने की घटना विस्मृत भी नहीं हुई थी कि सम्मेदशिखर जी की ओर मंगल विहार में क्षुल्लक शांतिसागर जी को भयंकर मलेरिया ने जकड़ लिया। व्याधि इतनी तीव्र थी कि लोग सोचने लगते-कहीं कोई अप्रिय न घट जावे। पर रोगवश शारीरिक बल से क्षीण होने पर भी आप आत्मबल के बूते संघर्ष कर परीषहविजयी बने। सबने आपकी सहनशक्ति एवं धीरता-वीरता की एक बार फिर मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

लंगोटी-चादर चुभन

गुरु सान्निध्य में ज्ञानार्जन एवं साधना का स्तर उन्नति की ओर अग्रसर था। लेकिन ध्यान की तल्लीनता में भी आत्मिक शान्ति का अनुभव नहीं कर पा रहे थे। चिंतन की अजस्रधारा बहती रहती थी–क्या कारण है कि मुझे शान्ति नहीं मिल रही है? समस्या गुरुदेव के सामने रखी।

गुरुदेव ने कहा–शान्तिसागर! मुनि बन जाओ, मुनि बने बिना कभी पूर्ण शान्ति नहीं मिलेगी। शूल की तरह चुभती लंगोटी एवं चादर का परिग्रह त्यागो। कहा भी है–

भाले न समता सुख कभी नर, बिना मुनि मुद्रा धरै।
धरि नगन पर तन-नगन ठाड़ै, सुर-असुर पायनि परै।

गुरुदेव सदैव प्रोत्साहित करते रहते। क्षुल्लक जी इनकार करते रहे।

पर करुणासिन्धु से नहीं रहा गया। गुरुदेव ने पुनः पास बुलाकर कहा–"बेटा! मुनि बन जाओ, फिर देखो कितनी शान्ति मिलती है।"

क्षुल्लकजी ने कहा–"गुरुदेव! मुझे दो बीमारियाँ मुनि-दीक्षा से रोक रही हैं।" गुरुदेव ने कहा–"क्या तकलीफ है? मुझे बताओ।" तब आपका कहना था–"गुरुदेव! मुझे आधा आहार करते ही वमन हो जाता है तथा मुँह में सदा छाले बने रहते हैं। ये रोग जायेंगे तब मैं मुनि दीक्षा धारण कर सकूँगा।" गुरुदेव ने कहा–"शान्तिसागरजी! हमारी बात मानो, जब तुम मुनि बन जाओगे, तब तुम्हारी बीमारियाँ भी दूर हो जायेंगी।"

भरत-बाहुबली

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा ६ नवम्बर १९७२ को तीर्थराज सम्मेदशिखर पर क्षुल्लक सुमतिसागरजी एवं क्षुल्लक शांतिसागरजी की आचार्यश्री के पावन कर-कमलों द्वारा मुनि दीक्षा हुई। नवीन नामकरण क्रमशः मुनि बाहुबली सागरजी एवं मुनि भरतसागरजी किया गया। श्री सोहनलालजी एवं श्रीमती पद्मादेवी पहाड़िया ने भरतसागरजी के मुनिदीक्षा के माता-पिता बन पुण्य कमाया।

किसी ने पूछा–महाराजजी! दोनों के नाम तो आपने चुनकर रखे हैं पर ये ही नाम क्यों रखे?

तब आचार्यश्री का कहना था–"हमने दोनों के नाम गुणों के आधार पर रखे हैं। बाहुबली सागरजी तपस्वी हैं, कठोर साधना एवं आठ-दस उपवास सहज में कर लेते हैं। देहयष्टि से बलिष्ठ हैं। कठोर तपस्वी बाहुबली के समान स्वाभिमानी और तपस्वी होने से मैंने इनका नाम बाहुबली सागर रखा। भरतसागरजी भरत चक्रवर्ती के समान धीर-गंभीर, शान्त, वैरागी, ध्यान-अध्ययन में लीन, भावों से विशुद्ध परिणामी होने से इनका भरतसागरजी नाम रखा।

आचार्यप्रवर विमलसागरजी विलक्षण व्यक्तित्व थे। उन्होंने जैसी प्रतिभा देखी वैसा ही अन्वर्थ नाम रख दिया।

"धैर्य धारण कर, गुरुवचनों को प्रमाण मानकर मुनि दीक्षा प्राप्त की। सच कहता हूँ, किस समय दीक्षा हुई और किस समय नीरोग हुआ, मैं भेद

भी नहीं कर पाया। आचार्यश्री के वचनों की सिद्धि और तपस्या के प्रभाव को देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही। जिस शान्ति की खोज के लिए मैं चिन्तित था, जिसे प्राप्त करने के लिए मैं लालायित था वह निधि आचार्य गुरुदेव के चरण सान्निध्य में उनके बताये मार्ग पर चलने पर मुझे प्राप्त हुई।'' संस्मरण सुनाते हुए आचार्य भरतसागरजी ने बताया।

अपनी विशुद्धि, वैराग्य एवं चारित्र के माध्यम से आपने दिगम्बर मुनि पद धारण कर पंचपरमेष्ठियों में स्थान बना लिया। दीक्षा पश्चात् आपका पुनर्जन्म हुआ और आप पूज्य बन गये, एक नई शक्ति, नई चेतना बन गये जो विषयों का त्यागी है, आशाओं से अनजान है, आरम्भ और परिग्रह से विरत है अर्थात् अट्ठाईस मूलगुणों और उत्तरगुणों का पालन करते हुए ज्ञान, ध्यान और तप में लवलीन है।

मुनिश्री १०८ भरतसागरजी महाराज का व्यक्तित्व बाह्य एवं अन्तरंग नग्नत्व धारण करने के बाद और प्रखर हो गया। आपकी धीर, वीर, गंभीर प्रशान्त मुद्रा हर एक को आकर्षित करने लगी। आप सरल, स्पष्ट एवं मधुर ग्राह्य शैली में प्रवचन करते। आप बारीकी से धर्म के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस प्रकार समझाते थे कि आबाल-वृद्ध सब आपकी बात समझ जाये। आपके सामान्य प्रवचनों में भी व्यक्ति और समाज की अनेक समस्याओं का सहज समाधान हो जाता। आचार्यश्री द्वारा उपजायी गयी प्रतिभा अनुपम निकली जो ओजमयी वाणी की प्रखर प्रवक्ता थी। जिसका एकमेव ध्येय था पुरुषार्थ कर गुरु सम बनना।

जिस प्रकार छाया हमेशा साथ रहती है, कभी भी साथ नहीं छोड़ती उसी प्रकार भरतसागर जी गुरुवर के साथ रहते। भले ही दोनों का अस्तित्व अलग हो लेकिन आत्मीय एकत्व था। गुरु के संसर्ग से आप संघ के मनोज्ञ साधु के रूप में शोभायमान हो गये। आपके एकान्तप्रिय होने के कारण एक व्यक्ति आचार्यश्री से शिकायत कर बैठा–''महाराजजी! भरतसागरजी वहाँ अकेले बैठे हैं, आप अकेले क्यों छोडते हैं उनको?''

आचार्यश्री ने कहा–''आप चुप बैठ जाइये, वे जहाँ भी रहेंगे अपना

ध्यान-अध्ययन ही करेंगे, मुझे उन पर पूर्ण विश्वास है।'' शिकायतकर्ता मन में ग्लानि भाव के कारण नतमस्तक हो उल्टे पाँव लौट गया।

उपाध्याय पद प्रतिष्ठा

उत्कृष्ट गुणों के धारी मुनि भरतसागरजी गुरुभक्ति के अनन्य अनुरागी, सतत अध्ययन-अध्यापन में निरत हो अपनी सरल प्रवचन शैली से गुरुदेव के मन में बस गये, गुरुदेव के हृदय में आपने अमिट छाप डाल दी थी।

सन् १९७९ का चातुर्मास सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर हुआ। यह चातुर्मास कई दृष्टिकोणों से ऐतिहासिक था। इसमें महामना साधुराज के करकमलों से दो मुनि दीक्षा, आर्यिका दीक्षा तथा दो क्षुल्लिका दीक्षा हुई। उनमें से एक क्षुल्लिका अनंगमतीजी आज गणिनी आर्यिकाश्री स्याद्वादमती माताजी हैं।

आश्विन कृष्णा सप्तमी ७ सितम्बर १९७९। आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज का ६४वाँ जन्मदिवस। हजारों नर-नारी दूर-दूर से श्रद्धा-सुमन अर्पित करने आये थे। इसी मंगल प्रसंग पर संघस्थ अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, तत्त्वचिंतक, गंभीर और प्रशान्त मुनि भरतसागरजी को चतुर्विध संघ की सम्मति से उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया गया। आचार्यश्री ने उपाध्याय दीक्षा के संस्कारों की विधि से संस्कारित कर, पुष्पक्षेपण कर मंगलपद की प्रतिष्ठा के पश्चात् ''उपाध्याय श्री भरतसागरजी'' को अपने पास बैठाया।

''चौदहविद्यास्थान-चौदह पूर्व के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं, अथवा तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं। वे संग्रह और अनुग्रह आदि गुणों को छोडकर मेरु के समान निश्चितता आदि रूप आचार्य के गुणों से समन्वित होते हैं।'' ऐसी आचार संहिता के कर्तव्यपालक बन गये थे उपाध्याय भरतसागर।

उपाध्याय पद आपके द्वारा पुरुषार्थ के बल पर किये गये गूढ़ आगमोक्त ज्ञानार्जन का यथोचित सम्मान था। आपका सम्यक्ज्ञान एकान्तवाद का पोषक न होकर सदैव अनेकान्तवाद-स्याद्वाद का पोषक रहा। आपने अपने प्रवचनों में बार-बार एकान्तवाद के पोषक ग्रन्थों के पठन-पाठन को मोक्षमार्ग के सर्वथा विरुद्ध बताया। आचार्यश्री के साथ देशभर में उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम

विहार कर आपने अपने सद्प्रवचनों में कभी किसी का दिल नहीं दुखाया, न ही कोई पन्थवाद की बात की अतः आप कभी भी विवादास्पद बिन्दुओं में उलझे नहीं। आपकी सोच इतनी स्वस्थ एवं व्यापक थी कि अपने कथन के माध्यम से कभी विरोधाभास पैदा नहीं होने दिया। मत-मतान्तर पर श्रावकों द्वारा पूछे जाने पर इतना समीचीन जवाब देते कि बात सामने वाले के गले उतर जाती। कहा जा सकता है–

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभ नय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों प्राणी भववारिधि तिरते हैं॥

उपाध्याय भरतसागरजी समयपालन के प्रति पूर्णतया प्रतिबद्ध थे। संघ के पठन-पाठन में निर्धारित समय से विलम्ब आपको खेदजनक लगता था। जिस ग्रन्थ का अध्ययन चल रहा होता उसका अपेक्षित पृष्ठ संघस्थ त्यागियों को निकालकर रखना पड़ता था। अन्यथा अनुशासन की मार सहनी पड़ती। रंचमात्र भी समय व्यर्थ गँवाना आपको गवारा न होता था। त्यागियों को जिस पाठ का अध्ययन एवं कण्ठस्थ करने को आप देते थे उसमें शैथिल्य के लिए कोई जगह न थी। आपने अनेक त्यागियों को सद्ज्ञान का पाठ सिखाया-पढ़ाया है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि उपाध्यायश्री अपने समय के श्रेष्ठतम उपाध्याय रहे हैं।

ज्ञान दिवाकर

सन् १९८० का चातुर्मास नीरा (महाराष्ट्र) में हुआ। नीरा की भूमि पर विशाल संघ का चातुर्मास विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। आचार्यश्री का जयन्ती पर्व विशेष प्रभावनापूर्वक यहाँ मनाया गया। यहाँ की जनता को उपाध्यायश्री ने अपने प्रवचनों के माध्यम से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की त्रिवेणी में ऐसा परिस्नान करवाया मानों वहाँ ज्ञानसूर्य अवस्थित हो ज्ञान की किरणें बिखेर रहा हो। जनता ने उपाध्यायश्री की ओजमयी वाणी से प्रभावित होकर **'ज्ञान दिवाकर'** की उपाधि से विभूषित किया। आप सही अर्थों में ज्ञान-दिवाकर रहे। धर्म का श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम मार्ग बताने में सूर्यसदृश सक्षम रहे। भव्य जीव रूपी कमलों को खिलाने के लिए आप दिवाकर तुल्य बने।

दूरदर्शिता

सन् १९८४ में चातुर्मास गिरनार जी सिद्धक्षेत्र पर हुआ। आचार्यश्री की जयंती का समय था। हमने सोचा यहाँ पर जैनियों के घर नहीं हैं। सिर्फ बाहर से यात्री आयेंगे पर कितने? जयन्ती में आनन्द कैसे आयेगा?

पर उपाध्याय भरतसागरजी महाराज सदैव कहते रहे–सभी धर्मशालाएँ रिजर्व करा लो। यहाँ जयन्ती दिवस पर पैर रखने को जगह नहीं मिलेगी। मुझे कुछ आश्चर्य-सा लगता रहा, यह सब असंभव है। फिर भी उपाध्यायश्री की आज्ञा से श्वेताम्बर, वैष्णव सभी धर्मशालाएँ रिजर्व करा ली गईं।

जयन्ती का समय आ गया। जनता उमड़ रही थी। सभी धर्मशालाएँ ठसाठस भर चुकीं। घोर आश्चर्य! पैर रखने को भी जगह नहीं। उपाध्यायश्री का कथन अक्षरश: सत्य निकला। जन्म जयंती पर्व निरापद सोल्लास सम्पन्न हुआ। वे दिन याद आते ही आज भी आनन्दाश्रु छलछला उठते हैं; यह कहते हैं वहाँ के प्रबन्धक श्री मीठनलाल जी।

गिरनार से विहार कर संघ तारँगा, अहमदाबाद, देलवाड़ा, उदयपुर होते हुए अडिंदा पार्श्वनाथ पहुँचा।

यहाँ पर आचार्यसंघ के दर्शनों के लिए चारों ओर से भीड़ उमड़-उमड़ कर आ रही थी। सब आचार्य महाराज का उपदेशामृत पीने के लिए लालायित थे। माइक की व्यवस्था थी किन्तु लाइट चली गई। अत: आचार्यश्री के सामने से माइक हटा लिया गया।

उपाध्यायश्री ने तुरन्त व्यवस्थापकों से कहा–आचार्यश्री के पास माइक रख दीजिये, समय पर लाइट आ जायेगी। माइक आचार्यश्री के सामने पुन: रखा गया। व्यवस्थापक लाइट के लिए परेशान थे, चारों ओर शोरगुल हो रहा था, सबको चुप करते-करते व्यवस्थापक थक गये। तब आचार्य महाराज ने कीर्तन के बोल शुरू कर दिये–

पार्श्वनाथ के चरण कमल में, अलि सम लटके कली-कली।
अश्वसेन नृप माता वामा, हरष बनारस गली-गली॥

आचार्यश्री की भक्ति की मधुर ध्वनि निकलते ही माइक चालू हो गया। व्यवस्थापक चकित हो उपाध्यायश्री को देखने लगे। धन्य है उपाध्यायश्री की त्याग-तपस्या और गुरुभक्ति जिसके बल पर उनका भविष्यवाणी रूप विश्वास सच में परिणत हो गया।

आचार्यश्री के संघ में उपाध्यायश्री स्वाध्याय, पठन-पाठन और तात्त्विक चिंतन-मनन करने वाले विशिष्ट व्यक्तित्व थे। अत: वे आचार्यश्री के साथ अथवा एकान्त में मौन साधना करते थे। सन् १९८१ में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर आर्यिका स्याद्वादमती जी के प्रखर व्यक्तित्व को आपकी ज्ञानपिपासु प्रवृत्ति से तत्त्वचर्चा करने का सुयोग प्राप्त हुआ। सुसंस्कारित, उच्चशिक्षा प्राप्त स्याद्वादमती माताजी के साथ आपका वैचारिक एवं चिन्तन-मनन के स्तर पर सुन्दर तालमेल बैठने से आपस में विस्तृत शास्त्रीय चर्चा होने लगी। व्यापक दृष्टिकोण, आपसी समझ और विचारधारा में मतैक्य के कारण जिज्ञासुमन को आत्मिक शान्ति मिलती। इन दोनों प्रतिभाओं का अनवरत सामंजस्य अनुकरणीय एवं श्लाघनीय रहा।

आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज अपनी वाणी में प्राय: कहते रहते थे कि मेरे संघ में दो जगमगाते हुए हीरे हैं। एक उपाध्याय श्री भरतसागरजी एवं दूसरा आर्यिका श्री स्याद्वादमती माताजी। दोनों ज्ञान की अजस्र धारा हैं। ये जिनवाणी की इतनी सेवा करेंगे जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

प्रशान्तमूर्ति

मार्च १९८७ में संघ तीर्थों की वन्दना करते हुए हस्तिनापुर पहुँचा। इस नवीन तीर्थस्थली पर विदुषी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की सूझ-बूझ की अनोखी देन जम्बूद्वीप का निर्माण हुआ है। यह निर्माण अपने आपमें अद्वितीय है। यहाँ संघ के आगमन के अवसर पर ज्ञानमती माताजी विराजमान थीं। यहाँ पर प्रशान्त महासागर की-सी शांत एवं गम्भीर मुद्रा के धारी उपाध्याय मुनि श्री भरतसागर जी को 'प्रशान्तमूर्ति' के विरुद से अलंकृत कर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की गयी।

अमिट आज्ञापालन

सन् १९८७ के जयपुर चातुर्मास के पश्चात् संघ पद्मपुरा पहुँचा। वहाँ उपाध्यायश्री को आचार्यकल्पश्री श्रुतसागर जी महाराज का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनसे तत्त्वचर्चा के क्रम में वर्ण व्यवस्था, आहारचर्या आदि अनेकानेक विषयों पर गम्भीर चर्चा हुई। चर्चा के दौरान आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी ने उपाध्यायश्री से एक अमिट बात कही थी–भरतसागरजी! एक बात ध्यान रखना, चाहे कितनी ही मुसीबत आये सुधारवाद के नाम पर, आगमनिष्ठ बनकर रहना। आगम को मोड़ने का दुष्प्रयास कभी मत करना। इससे आगम में दृढ़ श्रद्धान वाले उपाध्यायश्री की भावना और दृढ़तर हो गयी।

वाणीभूषण

तीर्थाटन के क्रम में संघ सन् १९८८ में अन्देश्वर पार्श्वनाथ पहुँचा। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ की मनोज्ञ, श्यामवर्ण की अतिशयकारी प्रतिमा है। यहाँ पर तीर्थक्षेत्र कमेटी व बागड़ प्रान्त की समस्त जनता ने अध्यात्मवेत्ता एवं अपनी मंगलवाणी से ज्ञानचक्षु खोलने वाले उपाध्याय भरतसागरजी को 'वाणीभूषण' की उपाधि से विभूषित किया।

दशरथ-राम

इस समय आचार्य उपाध्याय परमेष्ठी से सुशोभित संघ की कीर्ति समस्त भारतवर्ष में फैल रही थी। आचार्यश्री द्वारा पुष्पित-पल्लवित उपाध्याय भरतसागरजी की चर्या इतनी मर्यादित थी कि आचार्य उपाध्याय की ऐतिहासिक जोड़ी बन गयी। आपकी दैनिकचर्या आचार्यश्री के साथ-साथ ही सम्पन्न होती थी। पूज्य गुरुदेव श्री विमलसागर जी महाराज की प्रेरणा व सान्निध्य में हुए निर्माण, साहित्य-सृजन, पंचकल्याणक, दीक्षा-विधानादि कार्यों में आपने आधार स्तम्भ के रूप में स्तुत्य कार्य किया है।

आचार्य महाराज ने केशलोंच करने में उत्कृष्ट क्रिया का पालन करते हुए मुनि अवस्था से ही दो माह में केशलोंच किया। आपके पद-चिह्नों पर चलने वाले परम शिष्य उपाध्यायश्री भरतसागरजी महाराज भी दो माह में ही केशों को जीर्ण तृणवत् उखाड़कर फेंक देते। विशेषता यह कि आचार्यश्री व उपाध्यायश्री

के केशलोंच सदा एक ही दिन एक साथ होते रहे हैं तभी तो उत्तर प्रान्त में प्राय: युवावर्ग एक नारा लगाता था–"गुरु का शिष्य कैसा हो, भरतसागर जैसा हो।"

आपने आचार्यश्री की प्रतिछाया बनकर जीवन जीया। आप दोनों में इतनी समानता और आत्मीयता थी कि दूर बैठे भी एक दूसरे की गतिविधि और मन में आ रहे भावों को जान जाते थे। आपस में बहुत अच्छा अन्तरंग सम्प्रेषण था। उपाध्यायश्री के रोम-रोम में गुरुदेव समाये हैं, तो गुरुदेव विमलसागर जी के हृदय में उपाध्यायश्री के प्रति अमूल्य स्थान था। गुरु-शिष्य की जोड़ी 'दशरथ-राम' की जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपश्री का जीवन गुरुभक्ति का अनुपम उदाहरण है। मर्यादापुरुषोत्तम राम की तरह आपने गुरुदेव के चरणों में जीवन समर्पित कर सदा मर्यादा की रक्षा की। ख्याति, पूजा, लाभ की भावना से आपने कभी भी मर्यादा की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं किया। यहाँ तक कि गुरुदेव के पास बैठे रहने पर महान् उपाध्याय होते हुए भी आपने कभी पीछी उठाकर आशीर्वाद नहीं दिया। बस, हल्का-सा हाथ उठाकर कराशीष देते रहे। गुरु का शिष्योत्तम भरतसागरजी पर विशेष स्नेह था तो शिष्य में भी गुरु के प्रति बेजोड़ श्रद्धाभक्ति थी। समर्पण-अपनत्व की इस जोड़ी को देख किसी ने लिखा भी–

करुणामूर्ति वात्सल्य राजा, विमलसिन्धु जी आये हैं।
मन्त्री इनके भरतसिन्धुजी, सबके मन को भाये हैं।।
दशरथ-राम सी जोड़ी इनकी, युगों-युगों तक बनी रहे।
हम सबकी है यही भावना, विमल-भरत चिरंजीव रहे।।

विश्व के इतिहास में गुरु-शिष्य का यह अप्रतिम रूप था। गुरुदेव जब 'भरतजी' कहकर उपाध्यायश्री को पुकारते थे तो गुरु की महिमा का अमोल बोध होता था। इस धरा पर जैसे पितृ-भक्ति में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का नाम अनन्त काल तक लिया जावेगा वैसे ही गुरुभक्ति में २७ वर्ष तक छाया बनकर गुरु के पीछे-पीछे चले **मर्यादाशिष्योत्तम आचार्य भरतसागरजी** का नाम अविस्मरणीय रहेगा। बीसवीं-इक्कीसवीं सदी का इतिहास आपकी गौरवगाथा का चिरऋणी रहेगा।

जिनवाणी संरक्षा

आप आगम के गूढ़ ज्ञाता थे। श्रावकों की समझ में आने योग्य भाषा के उत्कृष्ट शिल्पकार थे। आप तीक्ष्ण-विलक्षण बुद्धि के स्वामी आर्षग्रन्थों के जीवन्त आगार रहे। आपने संघ में पठन-पाठन, श्रावकों को सद्उपदेश के साथ-साथ साहित्य-सृजन भी किया है। आपके द्वारा लिखित साहित्य में विमल वैभव, वीरशासन जयंती, अलौकिक दर्पण, तिरने की कला आदि मुख्य हैं। 'धम्म रसायणं' प्राकृत ग्रन्थ का आपने हिन्दी में अनुवाद किया है। श्री विमल पाठ संग्रह एवं श्री विमल विनयाञ्जलि आदि आपके द्वारा संकलित ग्रन्थ हैं। अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं, स्मारिकाओं में आपके लेखादि प्रकाशित होते रहे हैं।

आपके निर्देशन में ही श्री भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् की स्थापना हुई। इसके अन्तर्गत अनेक आर्षग्रन्थों का प्रकाशन कर जैनधर्म की साहित्य निधि को समृद्ध किया गया है।

आश्विन कृष्णा सप्तमी सन् १९९० को सोनागिर क्षेत्र पर आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज का ७५वाँ जन्म दिवस 'हीरक जयंती' महोत्सव के रूप में मनाया गया। इस शुभ अवसर पर उपाध्यायश्री की मंगल प्रेरणा से आर्यिकाश्री स्याद्वादमती माताजी द्वारा संकल्पित आचार्यप्रणीत ७५ प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन लक्ष्य में से ४० ग्रन्थों का आचार्यश्री के कर-कमलों से विमोचन हुआ। ७५ विद्वानों को सम्मानित किया गया। आपकी ही प्रेरणा से ७५-७५ युवाओं ने इस अवसर पर सप्त व्यसनों के त्याग करने का संकल्प लिया। विभिन्न स्थानों पर स्मृतिस्वरूप शिक्षण शिविरों का आयोजन आपके निर्देशन एवं आशीर्वाद का फल है और भी विशेष-विशेष कार्य इस पावन प्रसंग पर सम्पन्न हुए।

२९ नवम्बर १९९१ को संघ का सोनागिरि से सम्मेदशिखर की ओर विहार हुआ। संघपति श्री आर. के. जैन सपत्नीक विहार में साथ थे। मार्ग में पड़ने वाले सभी तीर्थक्षेत्रों की वन्दना के साथ धर्मप्रभावना का अलख जगाते हुए संघ सतना से रीवा में श्रीशान्तिनाथ भगवान् के दर्शन करता हुआ हनुमना ग्राम पहुँचा।

जंगल में मंगल

सामने था एक पुण्य अवसर जिसका पुण्यात्माओं को इन्तजार था। लेकिन संघपति सोच रहे थे उस पुण्य अवसर पर कोई बड़ा शहर मिले जहाँ जैनियों की बस्ती हो। खूब प्रभावनापूर्वक वह दिवस मनाऊँ। पुण्य अवसर था उपाध्यायश्री का ४२वॉ जन्मदिवस। चैत्र सुदी नवमी ११ अप्रैल १९९२।

तपस्या का चमत्कार देखिये—गर्मी की भयानकता में अष्टमी की रात बीती। अचानक नवमी के विहार में मौसम ने अपना रूप बदला। आकाश में काले-काले बादल मँडराने लगे। मन्द-मन्द रिमझिम वर्षा होने लगी। मौसम सुहावना हो गया। आचार्य विमलसागरजी के मुख से सहसा निकल पड़ा—"जानते हो आप उपाध्यायश्री 'भरतजी' का जन्म दिन है इसलिए गर्मी की तपन शान्त करने के लिए पानी बरस रहा है।" सत्य है नगर में मात्र मानव ही झूमता पर भगवान् राम के जन्म दिवस के दिन जन्म लेने वाले उपाध्याय श्री भरतसागरजी का जन्मदिन जगल में मंगल कर गया। वृक्ष-पेड़-पत्ते सभी इस उत्सव को झूम-झूमकर मना रहे थे। लग रहा था जैसे प्रकृति भी इस आनन्द से सराबोर होना चाह रही थी। 'बबोरा' ग्राम में सारे अजैन बन्धुओं के मध्य यह दिवस धूमधाम से मनाया गया। 'हनुमना' के सेठजी ने सपरिवार उत्साहसहित पधार कर कार्यक्रम की शोभा में चार चॉद लगाये। अकस्मात् विभिन्न नगरों से भक्तगण भी अवसर का लाभ उठाने समय पर आ पहुँचे। उम्मीद के बाहर जैन-अजैन बन्धुओं ने वात्सल्यपूर्वक भोजन किया। महती धर्मप्रभावना हुई। दिव्य-व्यक्तित्व के जन्मदिवस पर स्वयंस्फूर्त समायोजन जंगल में मंगल कर गया।

विहार करते हुए मार्ग को अपने स्पर्श से पवित्र करते हुए चतुर्विध संघ दर्शन-वन्दन करता हुआ २१ मई १९९२ को अपने गन्तव्य तीर्थाधिराज सम्मेदशिखर पहुँच गया। १६ वर्ष बाद पुनः बीस तीर्थंकरों एवं असंख्य मुनियों की निर्वाणभूमि के दर्शन कर उपाध्यायश्री भावविभोर हो गये।

वात्सल्य रत्नाकर

८ अक्तूबर १९९३। कलिकाल में अनुपम बल, तप व अध्यात्म की जीती जागती मूरत, दया-करुणा-क्षमा के अजस्र स्रोत युगप्रधान जैनाचार्य श्री

विमलसागर जी महाराज का ७८वाँ जन्म-जयंती महोत्सव। ऐसे धर्मनेता आचार्य जिन्होंने अपनी अनुकम्पा से लाखों जीवों को मिथ्यात्व से छुड़ाकर सन्मार्ग पर लगाया है। जिनके द्वारा जिनशासन की महती प्रभावना सम्पूर्ण भारतवर्ष में हुई है। जिनके उपकार को इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा। ऐसे साधक, जन-मन प्रभावक, करुणासागर, वात्सल्यमूर्ति सन्त को उनके जन्मदिवस पर अभिवन्दन ग्रन्थ 'वात्सल्य रत्नाकर' का अर्पण। कीर्तिस्तम्भ सदृश अभिवन्दन ग्रन्थ का समर्पण जो आचार्यश्री की पुण्यकीर्ति को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाये रखेगा।

तीन खण्डों में प्रकाशित अभिवन्दन ग्रन्थ 'वात्सल्य रत्नाकर' को गुरुचरणों में अर्पित करने के प्रस्ताव से लेकर उसे मूर्तरूप प्रदान करने में उपाध्यायश्री का अथक अविस्मरणीय योगदान रहा है। इतने उत्कृष्ट कोटि के वृहद् अभिवन्दन ग्रन्थ का गुरु-चरणों में समर्पण उनके प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा का प्रतीक है। यह दुरूह-सा कार्य आपके प्रबल पुरुषार्थ के बल पर इतना सशक्त बन पड़ा है कि समस्त आर्षग्रन्थों का निचोड़ आ जाने से यह एक महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक सन्दर्भ ग्रन्थ बन गया है। ऐसी अनुपम साहित्य निधि के कारण इतिहास आपका चिरऋणी रहेगा।

संयोग के साथ वियोग

वृद्धावस्था का प्रभाव अब आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज पर पड़ने लगा था लेकिन उनके त्याग एवं साधना के तेज ने उन्हें शिथिलता का आवरण अन्त तक नहीं ओढ़ने दिया। मामूली-सी अस्वस्थता यदा-कदा हो जाती थी। आपके मन में किसी प्रकार का संकल्प, विकल्प शेष नहीं रह गया था। आपने अपने जीवन के चरमोत्कर्ष काल में ही अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी का चयन कर लिया था। उपाध्याय श्री भरतसागरजी महाराज को आपने सोनागिरि सिद्धक्षेत्र में ही मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र विद्या, प्रायश्चित्त शास्त्र, रहस्यशास्त्र, सूर्यमंत्र देना आदि विद्याएँ सिखाकर पारंगत बना दिया था। लेकिन उपाध्यायश्री की गंभीरता इतनी अधिक रही कि गुरुदेव के रहते उन्होंने कभी इन विद्याओं का प्रयोग नहीं किया।

७९वें जन्म जयंती महोत्सव पर आचार्यश्री विमलसागरजी पूर्णतया स्वस्थ थे। गुरु महाराज ने सबको यथायोग्य स्नेहाशीष करुणामयी वात्सल्य लुटा कर दिया था। इस अवस्था में भी आचार्यश्री ज्ञान-ध्यान-तप-साधना में पूर्णतया सचेष्ट थे। २३ दिसम्बर १९९४ को आपको बुखार आया। २७ दिसम्बर तक बुखार घटता-बढ़ता रहा। इस बीच आवश्यक क्रियायें एवं आहारचर्या प्रयत्नपूर्वक चलती रहीं। इस समय गुरु के प्रति आपकी सेवा-भक्ति देखने योग्य थी। गुरु को इशारा भी नहीं करना पड़ता था आप उनकी मनोभावना समझकर तुरन्त उनकी सेवा में जुट जाया करते थे। आपने अपने कार्यकलापों से एक सच्चे और आदर्श शिष्य का परिचय दिया।

२८ दिसम्बर १९९४ को प्रात: स्वाध्याय करने की शक्ति क्षीण होने पर आचार्यश्री ने अपनी प्रियवाणी में कहा—आज भरतजी पढ़ेंगे, मैं सुनूँगा। 'परमात्मप्रकाश' ग्रन्थ का स्वाध्याय बिना किसी सहारे के एक घण्टे बैठ कर सुना। पश्चात् जिनाभिषेक देखा और प्रिय शिष्य भरतसागर जी के मस्तक पर तीन बार गन्धोदक ऐसे वात्सल्य भरे कर-कमलों से लगाया, मानों आचार्यपद का संस्कार ही किया। दोपहर में बुखार ने तेजी पकड़ी। आचार्यश्री मौन साधना में लीन हो गये। शिष्य समूह समाधिमरण-वैराग्य भावना-णमोकार मंत्र का जाप करता रहा। तारीख २९ दिसम्बर १९९४ को स्वास्थ्य सामान्य-सा लगने लगा था। सबको यही उम्मीद थी कि बाबा अभी बोलेंगे, अभी आशीर्वाद देंगे। लेकिन आचार्य महाराज तो यम सल्लेखना लीन थे। उपाध्यायश्री ने उनके कर्णकुहरों में णमोकार मन्त्र सुनाया और कहा "अब आपको आजीवन चारों प्रकार के आहार का त्याग है।" सुनते ही आपने आँखें खोल प्रिय शिष्य को देखा और मौन स्वीकृति प्रदान कर दी।

उपाध्यायश्री ने कर्णों में ऋद्धि मंत्र एवं णमोकार के जाप्य सुनाये। बार-बार आत्मदर्शन की ओर प्रेरित किया। आपने सम्मेदशिखर की भाव वन्दना की। "ॐ ह्रीं नमः" की ध्वनि आपके कानों तक पहुँचती रही। चेहरे पर वही तेज, वही आभा, वही प्यार, वही वात्सल्य की निर्झरणी का स्रोत। तपस्वी साधक की साधना में कहीं कोई विकृति नजर नहीं आ रही थी कि पौष कृष्णा द्वादशी

गुरुवार २९ दिसम्बर १९९४ को सायं ४. २७ बजे प्राणी मात्र से मोह त्यागकर चमत्कारी बाबा चमत्कारपूर्ण सम्यक् समाधि में लीन हो गये। आचार्य विमलसागरजी महाराज के महाप्रयाण से जैन समाज का मानक प्रकाशस्तम्भ ढह गया। लेकिन विधि का विधान ऐसा ही है। संयोग के साथ वियोग अवश्य है।

आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के स्वर्गारोहण से उपाध्यायश्री गहन सन्तप्त हो गये। गुरु महाराज का वियोग शिष्य के हृदय में गहरी चोट दे गया था। सजल नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली थी। जिसने भी उस समय उपाध्यायश्री की मन:स्थिति देखी उसका हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रह सका।

मर्यादाशिष्योत्तम की आचार्यपद प्रतिष्ठापना

माघ शुक्ला दशमी १० फरवरी १९९५ शुक्रवार को तीर्थराज सम्मेदशिखर पर चतुर्विध संघ सान्निध्य में उपाध्यायश्री १०८ भरतसागरजी महाराज को आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया गया। इस अवसर पर गुरुशिष्य परम्परा का जीवन पर्यन्त निर्वाह करने पर आपको आचरण के अनुकूल '**मर्यादाशिष्योत्तम**' की उपाधि से अलंकृत किया गया। देश के सुदूर कोने-कोने से इस ऐतिहासिक समारोह को देखने के लिए काफी श्रद्धालुजन एकत्र हुए। रात्रि में भजन-मण्डली द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम के साथ ही त्रिदिवसीय आचार्यपद प्रतिष्ठापना संस्कार समारोह धूमधाम से गरिमापूर्वक सम्पन्न हुआ।

जिस समय आपका आचार्यपद संस्कार किया जा रहा था आपके नेत्रों से अनायास ही अश्रुधारा निकल पडी। गुरुदेव का स्मरण हो आया था और उनका मुखमण्डल ऑखों के सामने तैरता-सा लगा था। मानों बार-बार आगाह कर रहा था–"भरतजी! होशियार रहना, किसी से डरना नहीं, मैं सदैव आपके साथ रहूँगा।"

भरतसागर जी आचार्यपद ग्रहण करते समय इस सोच में निमग्न थे कि गुरु की छत्रछाया में २७ वर्ष का निश्चिन्त जीवन जिया। उनके वरद-हस्त तले स्वातंत्र्य सुखपूर्वक साधना की। क्या अब आचार्यपद के बोझ तले वह संभव हो सकेगी? उनकी भाव-भंगिमा से लग रहा था कि वे सहज मिले इतने बड़े संघ

के आचार्यपद को पाने के कतई उत्सुक नहीं थे। ख्याति-पूजा-लाभ एवं पद लिप्सा से आप सदैव की तरह आज भी निर्लिप्त लग रहे थे। एकदम शान्त एवं गम्भीर चेहरा निर्निमेष भाव से जिम्मेदारियों का आवरण ओढ़ रहा था। संघनायक पद पाकर गर्वित नहीं लग रहे थे आप।

"जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच प्रकार के आचारों का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओं से आचरण कराते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। जो चौदह विद्याओं के पारंगत, ग्यारह अंग के धारी अथवा आचारांगमात्र के धारी हैं अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत हैं; मेरु के समान निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील, समुद्र के समान मल अर्थात् दोषों को बाहर फेंक देने वाले और सात प्रकार के भय से रहित हैं; देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, जो शिष्यों का संग्रह और उन पर अनुग्रह करने में कुशल हैं, सूत्र के अर्थ में विशारद हैं, यशस्वी हैं तथा सारण अर्थात् आचरण, वारण अर्थात् निषेध और शोधन अर्थात् व्रतों की शुद्धि करने वाली क्रियाओं में निरन्तर उद्यत हैं वे ही आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं।"

ऐसा आचार्यधर्म अपनाने के बाद आपने प्रथम सम्बोधन में कहा– "मैं गुरुदेव आचार्यश्री विमलसागरजी रूपी सूर्य की एक किरण मात्र हूँ। शासन उनका ही चलेगा, मेरा नहीं। मेरे हाथ में पीछी उनकी है, कमण्डलु उनका है तथा शास्त्र भी उन्हीं का है। वे जैसा आदेश देंगे, मैं वही करूँगा, मैं तो उनका संदेशवाहक हूँ सो पोस्टमैन की भाँति जहाँ-तहाँ उनका संदेश पहुँचाता रहूँगा।"

चुम्बकीय व्यक्तित्व

आपमें भी गुरु की भाँति असीम वात्सल्य था। आपके वात्सल्य के प्रभाव से सब आपके होकर रह जाते। बच्चे भी आपके वात्सल्य से प्रोत्साहन पाकर निखरने लगते। इतने बड़े आचार्य होने के बावजूद आप सबको भरपूर सम्मान प्रदान करते। ऐसा अक्सर देखने में नहीं आता। आपके पास जो भी आता वह आपकी चुम्बकीय शक्ति से प्रभावित होकर प्रसन्नचित्त हो जाता। आपके सरल, सौम्य एवं मृदुवात्सल्यमयी व्यवहार एवं कुशल संघ संचालन की योग्यता के कारण संघस्थ त्यागी वृंद सदैव प्रसन्नचित्त रह साधना में लीन रहते।

आपका हृदय बच्चों जैसा निश्चल, निस्वार्थ, निर्मल जल के समान उज्ज्वल दर्पणवत् था। सबके प्रति पक्षपातरहित व्यवहार आपकी विशिष्टता थी। दीर्घकाल तक एक स्थान पर भी किसी से आपका विशेष लगाव नहीं होता। सूक्ष्म चिन्तक एवं उत्कृष्ट क्षयोपशम के धनी थे आप। सहजता आपके जीवन का अभिन्न अंग रही। कोई धार्मिक प्रसंग हो या सामाजिक प्रसंग, आप अपने सहज रूप से कभी विचलित नहीं हुए। प्रत्येक प्रसंग पर आपने धैर्यपूर्वक कार्य किया। सुख-दुख में समदृष्टि रखने वाले योगिराज थे आप। आपकी परम शान्त मुद्रा एवं तपश्चर्या से अनेक दुर्लभ कार्य भी सरलता से हो जाते थे। आप जितने सीधे और सरल थे उतने ही अधिक निर्भीक, स्पष्टवक्ता तथा परोपकारी भी। आप करुणा के सागर थे। आपके हृदय में इतना प्रेम था कि संसार के सारे पुष्प उसमें समा जावें। लेकिन उसमें रंचमात्र भी ऐसी जगह नहीं कि एक छोटा-सा काँटा भी प्रवेश पा सके। आप अहंकार से तो कोसों दूर थे। क्रोध, मान, माया और लोभ चारों कषायों पर आपने यथासम्भव विजय प्राप्त की थी। आप समुद्र सम गम्भीर, पृथ्वीवत् क्षमाशील, अनियत विहारी रहे। आपके वचनों में चुम्बकीय आकर्षण था। मात्र आपके वचन ही क्या, सम्पूर्ण जीवन ही आकर्षण का केन्द्रबिन्दु रहा। आपके सान्निध्य में बैठने से सबको परमशान्ति का अनुभव होता था क्योंकि अन्तरंग शक्ति आपके मुख-मण्डल पर सदैव अभिव्यक्त होती रहती। सच तो यह है कि आपकी मधुरवाणी तथा सौम्य छवि ने जन-जन में अपना स्थान बना लिया है अर्थात् आपके निर्मल मन की आभा ने लोगों को अपनी ओर खींच लिया है। आपकी सरलता एवं भद्रता ने मानों जादू कर दिया। ऐसा आपके सम्पर्क में आने वाले लोग समवेत पुरजोर स्वर में कहते हैं।

आपने उपसर्गों एवं परीषहों को हँसते-हँसते झेला है। धर्म की रक्षार्थ सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर आप अनासक्त एवं निस्पृही योगी रहे। आपका तप एवं त्याग उच्चकोटि का था। आप अल्पनिद्रा लेकर रात्रि में १०-११ बजे ही जाग जाते और एक करवट से लेटे-लेटे चिन्तन करते हुए एक बजे ही उठकर स्वाध्याय एवं अध्ययन में लग जाते। आपकी चर्या को देखकर पं. युगलकिशोरजी जैन की निम्न पंक्तियाँ बरबस याद हो आती हैं–

जब जग विषयों में रच पच कर गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक पथ में विषकंटक बोता हो॥
हो अर्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्तनिराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो॥

आप जैसे ज्ञानवान साधु स्वयं तिरते हुए औरों को भी तिराने में सक्षम होते हैं। वास्तव में श्रावकों को तो आपकी क्रियामात्र से प्रेरणा लेनी चाहिए और जब तक संगति मिले, ज्ञानार्जन करने में साधुओं की प्रतिभा का उपयोग करना चाहिए, जिससे द्विपक्षीय भला होगा। आजकल प्राय: श्रावक लोक साधुओं से महज चमत्कार की आशा करते हैं। चमत्कार तो तपस्वी के रग-रग में बसे होते हैं परन्तु वे उनकी ओर दृष्टि भी नहीं करते। श्रावकों को ज्ञात होना चाहिए कि तपस्वी की महत्ता तो उनकी वीतराग दशा से है, चमत्कार से नहीं। तपस्वी को चमत्कार से कोई सरोकार नहीं होता।

आप महान् कल्याणकारी सन्त थे। आपने अनेक व्यक्तियों को शूद्र जलत्याग के नियम दिलवाये हैं। अनेक जैनेतर लोगों को मद्य-मांस-मधु का त्याग करवा कर संयम-पथ पर अग्रसर करवाया है। देवदर्शन, शुद्ध छना जल एवं सूर्यास्त के पहले भोजन के लिए तो आप हर समय प्रेरित करते रहते। मिश्री-सी मधुरवाणी मे आप सहज ही आकर्षित कर शक्त्यनुसार व्रत-नियम-संयम दिला देते थे। स्वकल्याण के साथ प्राणी-मात्र के कल्याण की भावना आपके हृदय में कूट-कूट कर भरी थी। आप पूरे के पूरे देश को ही साधु बनाना चाहते थे। साधु माने वह व्यक्ति, जो मुनि नहीं है, पर जिसमें मुनि होने की सकल सभावनायें हैं। साधु माने अत्यन्त सभ्य-सुसंस्कृत-शिष्ट धर्मज्ञ श्रावक।

आप अपायविचय धर्मध्यान के नेता रहे। द्वादशांग के अंग मन्त्र, तन्त्र व यन्त्र के ज्ञाता एवं कुशल वैद्य भी रहे। इनके बल पर आप गृहस्थी के बोझ तले दबे श्रावकों को विधर्मी एवं मिथ्या गतिविधियों से मुक्त कर जिनमार्ग में स्थिरीकरण कराते। आपका आशीर्वाद फलित होता। आपकी पीछी जिस पर फिर जाती, उसकी आधि-व्याधि, रोगशोक, संताप, आपत्ति टल जाते। इसी

कारण हजारों तन-मन-धन के रोगी आपकी शरण में आते। शरणागतों को आप अपनी करुणापूर्ण वाणी से मिथ्यामार्ग के अवलम्बन से हटाते, उनको णमोकार मत्र का माहात्म्य बतलाते तथा इस प्रकार अभिप्रेरित करते कि संसारी भोग-विषयों के प्रति अरुचि हो तथा व्रताचार एवं ज्ञानाध्ययन में रुचि जागृत हो जाये।

आचार्यश्री को कभी विकथा आदि की चर्चा करते नहीं पाया। कभी स्वाध्याय में मग्न, कभी शास्त्रों के संग और कभी जिनभक्ति के रंग में ही रँगा पाया। आप जैसे धार्मिक भव्य जीवों से ही धर्म सुरक्षित रहता है। कहा भी है– "न धर्मो धार्मिकैर्बिना।"

आचार्यश्री को आजीवन नमक, तेल व दही का त्याग था। नमक तो भोजन का राजा कहलाता है। नमक का त्यागी कितना बडा त्यागी है, हम सब स्वयं कल्पना कर सकते हैं। आहारादि के विषय में पूछने पर आचार्यश्री कहते– दिगम्बर मुनि अनिच्छापूर्वक उतना-सा भोजन करते हैं जितने से ज्ञान-ध्यान और तप की साधना होती है अर्थात् देहरूपी दीपक में उतना ही तेल डालते हैं जितने से रात्रि का अन्धकार तिरोहित होता है। मुनिजन खाने के लिए नहीं जीते है बल्कि जीने के लिए खाते हैं। साधु शरीरवृद्धि, उसके तेज और बल की वृद्धि, स्वाद तथा आयु की वृद्धि के लिए भोजन नहीं करते। क्षुधा की शांति, आवश्यकों का पालन, प्राण-रक्षा, धर्म, चारित्र और वैयावृत्ति ये छह मुनि के भोजन के कारण हैं। दिगम्बर मुनि ३२ अन्तराय ४६ दोषो से रहित नवधा भक्तिपूर्वक आत्मसिद्धि का ध्येय रखकर आहार ग्रहण करते हैं।

परीषहों एवं उपसर्गों के कारण आपके शरीर की प्रकृति क्षुल्लकावस्था से ही संवेदनशील हो गई थी। वस्तुस्थिति तो यह है कि आप अपने अदम्य साहस और पुरुषार्थ के बल पर शारीरिक अवस्था के विपरीत जीवन जीते हुए लगातार संघर्षरत रहे। आपने चारित्र शुद्धि के व्रत और णमोकार मन्त्र के व्रत पूर्ण किये तथा सम्मेदशिखर टोंक के २५ व्रत भी आप वन्दना के साथ सम्पन्न कर चुके थे।

आचार्य-पद में धर्म प्रभावना

माघ शुक्ला दशमी १० फरवरी १९९५ को तीर्थराज सम्मेदशिखर पर चतुर्विध संघ सान्निध्य में आचार्यपद पर प्रतिष्ठा के पश्चात् श्रीभरतसागरजी ने तीर्थवन्दना एवं बिहार प्रान्त की सोई जनता में धर्मप्रभावना करने के उद्देश्य से विहार करने का निश्चय किया। श्री दिगम्बर जैन समाज, झूमरीतिलैया के श्रावकों ने कोडरमा में आपकी जन्म जयंती कार्यक्रम रखने का आशीर्वाद माँगा। संघपति श्री शिखरचन्दजी-पाँचूलालजी पहाड़िया, बम्बई के पुण्योदय से विहार का कार्यक्रम निश्चित हुआ और २४ मार्च १९९५ को मधुवन से आचार्यश्री का संघ के २२ त्यागियों सहित मंगल विहार हुआ।

प्रशान्तमूर्ति महोत्सव

आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के समाधिस्थ हो जाने के बाद उनकी कोडरमा आने की अभिलाषा को क्रियान्वित करते हुए उनके पट्टाधीश मर्यादाशिष्योत्तम श्री भरतसागरजी ने अपने मंगलविहार के प्रथम चरण में अभ्रकनगरी कोडरमा (झूमरीतिलैया) को अपने पावन चरणों से पवित्र किया। आपके मंगल आगमन से यहाँ का जैन समाज गुरु-भक्ति का अवसर पाकर धर्मोल्लास से अतिहर्षित हो गद्गद हो गया। उत्साह इतना कि आपका १६ दिनों का लघुप्रवास उत्सव नहीं, पूर्णतया महोत्सवमय हो गया। यहाँ ९ अप्रैल १९९५ को आचार्यश्री का ४७वाँ जन्म जयंती दिवस 'प्रशान्तमूर्ति महोत्सव' के रूप में विशेष प्रभावना से मनाया गया जो कि श्रद्धा-त्याग-सेवा का अपूर्व आयोजन था। १३ अप्रैल १९९५ को श्री महावीर जयंती के शुभ दिन संघ के वयोवृद्ध मुनि श्री १०८ अजीतसागरजी महाराज का सम्यक् समाधिमरण जीवन की क्षणभंगुरता एवं नश्वरता का दिग्दर्शन करा गया। उसके बाद आचार्यश्री के प्रथम शिष्य के रूप में सरल-सौम्य क्षुल्लक श्री १०५ स्वयंभूसागरजी महाराज की मुनि दीक्षा देखने का सौभाग्य यहाँ के नर-नारियों को रोमांचित कर गया। बिना किसी पूर्व योजना के अनायास ही एकदिवसीय लघुपंचकल्याणक का सफल आयोजन असंभव को संभव बनाने वाले महारथी बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री सुरेश झांझरी की दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रतीक था जिनकी कर्मठता और अदम्य

साहस से हर कोई प्रेरणा ले सकता है। ध्यान शिविर, विधान एवं मन्दिर शिखरों पर ध्वजारोहण आदि कार्यक्रम भी संघ सान्निध्य में हुए। सभी कार्यक्रमों की शृंखला के मध्य प्रवचन, श्रद्धाभक्ति से परिपूर्ण गीत-संगीत, रोचक सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक अन्त्याक्षरी एवं आरती-भजनादि का सुन्दर सामयिक समायोजन आयोजनों को भव्यता प्रदान कर गया।

सभी कार्यक्रमों का सुव्यवस्थित रूप से भव्य आयोजन कोडरमावासियों की आचार्यश्री के प्रति सच्ची श्रद्धा का प्रतीक था जिसका फल उन्हें चतुर्दिक् सफलता के रूप में मिला। हर समय आगन्तुकों द्वारा अभीष्ट त्रुटिहीन सुनियोजित व्यवस्था की उपलब्धता ने तो आतिथ्य-सत्कार के प्रतिमान स्थापित कर दिये जिन्हें शायद ही कोई विस्मृत कर पाये।

इन पूरे कार्यक्रमों के सूत्रधार अद्वितीय प्रतिभा के धनी युवारत्न श्री सुरेश झांझरी ने अपनी अद्भुत संगठनात्मक शक्ति का परिचय दिया जिससे प्रभावित होकर कार्यकर्त्ताओं ने तन-मन-धन से दिन-रात की निःस्वार्थ मेहनत करके अपनी विनम्रता, सरलता एवं समर्पण-भाव से सफलता में चार चाँद लगाये। श्री मानमल महावीरप्रसाद झांझरी जैसे यशस्वी परिवार के जगमगाते रत्न श्री सुरेश झांझरी की प्रतिभा कोडरमा एवं बिहार प्रान्त तक सीमित रहने लायक नहीं है। इनकी प्रतिभा की अनुगूँज राष्ट्रीय स्तर पर होनी चाहिए। आपके ही प्रबल पुरुषार्थी प्रयासों से आचार्यश्री के १६ दिनों के अल्प प्रवास में सम्पन्न विभिन्न आयोजनों की स्मृति को ऐतिहासिक रूप में सँजोये रखने के लिए सुन्दर एवं आकर्षक स्मारिका 'प्रशान्तमूर्ति' का सफल प्रकाशन हुआ।

७७ वर्षों बाद

कोडरमा से विहार के बाद आचार्य संघ भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी की निर्वाण भूमि गुणावाजी पहुँचा। इस सिद्धक्षेत्र में भी पावापुरी की तरह सुन्दर सरोवर में भव्य जिन मन्दिर है, उसमें एक वेदी में गौतम स्वामी के प्राचीन चरण तथा दूसरी में पार्श्व प्रभु विराजमान हैं। दिगम्बर जैन शिखरबन्द मन्दिर में मूल नायक भगवान् कुन्थुनाथ की श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है। यहाँ विक्रम संवत् २४७४ में प्रतिष्ठित मानस्तम्भ की वेदी में चतुर्मुखी

खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। आचार्यश्री के सन्निध्य में स्थापना के ७७ वर्षो बाद पहली बार मानस्तम्भस्थित जिनबिम्ब का अभिषेक त्रिदिवसीय अपूर्व धर्म-प्रभावना के साथ आपकी प्रेरणा से सम्पन्न हुआ, अभिषेक हजारों नर-नारियों ने किया। यहाँ से संघ कुण्डलपुर, पावापुरी एवं राजगृही में दर्शन-वन्दन करता हुआ कोल्हुवा पहाड़ पहुँचा। विहार करते हुए मार्ग में अनेक अजैन बन्धुओं ने आचार्यश्री से प्रभावित होकर मद्य-मांस-मधु का त्याग करने का संकल्प लिया।

संभावित सिद्धभूमि

कोल्हुवा पहाड़ दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ भगवान् का तप और ज्ञानकल्याणक क्षेत्र होने के कारण अतिशय क्षेत्र है। यहाँ पर पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिर में वेदी काफी समय से सूनी थी जो कि अशुभ थी अत: आपके कर-कमलों द्वारा वेदी-प्रतिष्ठा हो कर उसमें पार्श्वप्रभु विराजमान किये गये। आपकी ही प्रेरणा से भक्तों द्वारा शिखरकलश, घंटा, ध्वजादि मंदिर पर चढ़ाये गये। इस अवसर पर हजारीबाग व गया के अनेक नवयुवकों ने कोल्हुवा पहाड़ की ८१ वन्दना करने का संकल्प आचार्यश्री से लिया। ज्ञातव्य हो कि यहाँ वर्षों पहले आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज ने पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति पर प्रतिवर्ष रामनवमी के दिन होने वाली बलिप्रथा बन्द करवायी थी। आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज का मानना था कि खोजपूर्ण अनुसन्धान करने से यह प्राचीन क्षेत्र जहाँ पग-पग पर जैन संस्कृति के पावन चिह्न दृष्टिगत होते हैं, सिद्धभूमि सिद्ध हो सकता है।

आचार्यपद में प्रथम चातुर्मास

कोल्हुवा पहाड से विहार कर संघ गया और हजारीबाग में धर्मप्रभावना करता हुआ तीर्थप्रमुख सम्मेदशिखर पहुँचा। यहाँ पर आपका आचार्यपद में पहला चातुर्मास हुआ। इस चातुर्मास के दौरान विभिन्न धार्मिक आयोजनों से धर्मवृद्धि एव जागृति का अनुपम योग मिला। आपकी प्रेरणा से आचार्य गुरुवर श्री विमलसागर जी महाराज द्वारा आरम्भ करवायी गयी अनुपम एवं अद्वितीय तीस चौबीसी की रचना का काम द्रुतगति से चला। परमविदुषी गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी की प्रेरणा से निर्मित श्री दिगम्बर जैन मध्यलोक शोध संस्थान का प्रतिष्ठापना समारोह आपके श्रीसान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

मानस्तम्भ अभिषेक

सम्मेदशिखर जी में आचार्य विमलसागर जी महाराज की प्रथम पुण्यतिथि मनाने के पश्चात् संघ ईसरी पहुँचा। ईसरी में मानस्तम्भ प्रतिष्ठापना के बाद उसमें स्थित जिनबिम्ब का अभिषेक नहीं हुआ था। आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज की प्रेरणा एवं सान्निध्य में १ जनवरी १९९६ को मानस्तम्भ-स्थित जिनबिम्ब का महती धर्मप्रभावना के साथ स्थापना के बाद पहली बार अभिषेक हुआ।

ज्ञानदिवाकर महोत्सव

सन् १९९६ में आपका ४८ वाँ जन्म दिवस 'ज्ञानदिवाकर महोत्सव' का त्रिदिवसीय कार्यक्रम अपूर्व प्रभावना के साथ बोकारो शहर में मनाया गया। सतत ज्ञान की किरणें प्रस्फुटित करने वाले ज्ञानदिवाकर आचार्यश्री के जन्म दिवस के उपलक्ष में मीलों लम्बी रथयात्रा निकाली गई। बोकारो शहर में प्रथम बार निकली यह रथयात्रा जैन, अजैन सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र बन मन में अपनी अमिट छाप छोड गई। बोकारो में धर्म के प्रति श्रद्धाभक्ति जगाते हुए विशाल संघ पुरुलिया पहुँचा।

आशीर्वाद से

पुरुलिया प्रवास में आपका ध्यान पाकवीरा ग्राम की ओर आकृष्ट हुआ। यहाँ जैनधर्म के बहुत से भग्नावशेष प्राचीन मन्दिर और कला-सामग्री चारों ओर बिखरी पड़ी है, जिनको देखने से लगता है कि ये ईसापूर्व से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। इनसे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्व में यह एक तीर्थक्षेत्र रहा होगा और बहुसंख्या में जैनधर्मावलम्बी निवास करते होंगे। आचरण से लगता है कि आज इस क्षेत्र में निवास कर रही सराक जाति पूर्व में जैन ही रही होगी। कालक्रम में यहाँ एक भी अखण्डित मंदिर नहीं बचा। विगत वर्षों में जैन समाज का इस ओर ध्यान गया और एक मन्दिर का नवनिर्माण हुआ और इधर-उधर बिखरी जैन संस्कृति का यत्नपूर्वक संरक्षण किया जा रहा है। यहाँ पर वेदी-प्रतिष्ठा एवं जिनबिम्ब विराजमान करने का मंगल कार्य आपके आशीर्वाद से सम्पन्न हुआ। यहाँ नौ फुट उत्तुंग श्यामवर्ण भगवान् ऋषभदेव की खड्गासन

प्रतिमा बहुत ही मनोज्ञ एवं बरबस आकृष्ट करने वाली है। पुरुलिया से संघ पावन विहार करता हुआ अनाईजामबाद पहुँचा।

अनाईजामबाद

अनाईजामबाद में भूगर्भ से निकली भगवान् पार्श्वनाथ की पाँच फुट ऊँची नीलवर्ण पाषाण की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है, जिसके दोनों ओर छह-छह कोष्ठकों में चौबीस तीर्थंकरों की खड्गासन प्रतिमाएँ अंकित हैं। कला वैभव से परिपूर्ण यह मूर्ति अति भव्य और अतिशय सम्पन्न है। यहाँ पर दर्शन-लाभ लेकर आचार्यश्री 'पेटरवार' पहुँचे।

भुवनभास्कर

पेटरवार में श्वेताम्बर मुनि श्री जगजीवन जी ने आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर समाज को सम्बोधित करते हुए आपको 'भुवन भास्कर' की उपाधि से विभूषित किया। वहाँ से साढ़म व गोमिया भ्रमण करते हुए पञ्चाचार के पालक रत्नत्रधारी आचार्यश्री गिरिडीह पहुँचे।

पंचकल्याणक

गिरिडीह में आपकी तपश्चर्या के प्रभाव से पंचकल्याणक महोत्सव का आयोजन हुआ और भगवान् बाहुबली की प्राण-प्रतिष्ठा निर्विघ्न सम्पन्न हुई। यहाँ पर णमोकार मंत्र शिक्षण शिविर का आयोजन हुआ। आचार्यश्री के प्रवचन को प्रवचनोपरान्त होने वाले प्रश्नमंच कार्यक्रम के कारण लोग दत्तचित्त होकर ध्यान से सुनते थे। ज्ञानवर्धन हेतु आचार्यश्री की प्रेरणा से जैन वर्ग पहेली प्रतियोगिता का कार्यक्रम भी रखा गया। कुल मिलाकर विभिन्न कार्यक्रमों से महती धर्मप्रभावना एवं लोक-चेतना जागृत हुई।

गिरिडीह में इस बीच श्री दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमारजी सेठी आपके दर्शनार्थ आये। उन्होंने आपके दर्शन कर करबद्ध प्रार्थना की–''आचार्यश्री! मंदारगिरि शिखर मन्दिर के लिए १७ वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित भगवान् वासुपूज्य की सात फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा आज तक विराजमान नहीं हो पाई है। यह कार्य विभिन्न बाधाओं के कारण कठिनतम है और आप

ही इसे कर सकेंगे। अत: हमारी प्रार्थना पर कृपापूर्वक ध्यान देकर श्री मंदारगिरि सिद्धक्षेत्र की ओर मंगल विहार करें।'' आचार्यश्री ने करुणापूर्वक अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। यह खबर सुनकर भागलपुर समाज में उत्साह का संचार हुआ। शीघ्र ही समाज के गणमान्य लोग आचार्यश्री के पास गिरिडीह पहुँचे। आचार्यश्री मंदारगिरि पर जिनबिम्ब स्थापित करने का दृढ़संकल्प लेकर गन्तव्य की ओर बढ़ चले। मार्ग में श्रुतपंचमी का मंगलपर्व देवघर में प्रभावनापूर्वक आपके सान्निध्य में मनाया गया।

अद्‍भुत चमत्कार, स्वप्न साकार

२८ मई १९९६। आचार्यश्री मंदारगिरि सिद्धक्षेत्र पहुँचे। चम्पापुर का बाह्य उद्यान भाग मंदारगिरि जहाँ बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य के तप, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक हुए। यहाँ पहुँचते ही आचार्यश्री मूर्ति पर्वत- शिखर मन्दिर में कैसे विराजमान हो, इसी विचार में मग्न रहे। जिस प्रकार की स्थिति पर्वत-क्षेत्र में बनी हुई थी, लग रहा था कि यह कार्य दुरूह व असंभव है। ३ जून १९९६ सोमवार को अथक प्रयासों के बावजूद मूर्ति तलहटी से ऊपर नहीं जा सकी। बहुत से विधर्मी अज्ञानी लोगों ने बाधा डाल दी थी। अगले दिन प्रतिमा विराजमान करने का कार्यक्रम जानकर रात में पहुँचे सैकड़ों लोगों को घोर निराशा हुई। भागलपुर समाज एवं प्रशासन के सारे प्रयास निरर्थक हो जाने से सभी का मुखमण्डल म्लान हो गया था। सबने आचार्यश्री के चरणों में अर्ज सुनायी। आचार्यश्री ने कहा—घबराओ नहीं, और रात्रि की कालिमा छँटने तक इन्तजार करने का संकेत दिया।

अगले दिन ४ जून १९९६ मंगलवार आषाढ़ शुक्ला तृतीया को मानों चमत्कार ही हो गया। प्रात: पाँच बजे आचार्यश्री संघस्थ त्यागियों के साथ तलहटी में रखी मूर्ति के पास पहुँचे ही थे कि उनके तपोतेज से प्रभावित होकर अज्ञानी-असामाजिक लोगों ने मार्ग छोड़कर उपस्थित अवरोधों को हटा चरणों में शीश झुकाया। आने की रंचमात्र आशा न होने के बावजूद न जाने कैसे मूर्ति ले जाने वाले मजदूर इतनी सुबह में पहुँच गये। आते ही सबने आचार्य-चरणों में शीश नवाकर आशीष पाया। आचार्यश्री के आशीर्वाद से उत्साहित होकर

मजदूरों ने वासुपूज्य का जयघोष करते हुए मूर्ति को उठाया और बढ़ चले मंजिल की ओर। आगे-आगे आचार्यश्री एवं त्यागीवृंद गुरुवर श्री विमलसागरजी महाराज की फोटो में चित्रांकित छवि का अवलम्बन लिये और उनके पीछे मूर्ति के वाहक मजदूर कन्धों पर मूर्ति को ढोते हुए।

ऊबड़-खाबड, कंटकाकीर्ण, सँकरा मार्ग तथा दुर्गम चढ़ाई, फिर भी आचार्यश्री की प्रेरणा से मजदूरों के द्रुतगति से बढ़ते कदम। लग रहा था आचार्यश्री के प्रबल त्याग, तपस्या एवं साधना की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से मूर्ति फूल की तरह भारविहीन होकर पथ दुर्गम होते हुए भी बढ़ती चली जा रही थी। अब श्रावकों के झुण्ड के झुण्ड दौड़े चले आये और कौतूहलमय हो मूर्ति चढ़ने का दृश्य देखकर दंग रह गये। आचार्यश्री के तपोतेज का साक्षात् प्रभाव देखकर सभी ने जय-जयकार से आकाश गुँजा दिया। अनुगूँज सुनकर मानों इन्द्रदेवता की तन्द्रा टूटी। आसमान से पर्वत पर होते करतब को देखकर मेघराज से नहीं रहा गया और उसने बादलों की बारात लगा दी। बादलों ने आनन्दित हो उमड-घुमड़ कर, जमकर, जी भरकर भगवान का अभिषेक किया, न जाने फिर मौका लगे, ना लगे। इन्द्राभिषेक से प्रासुक हुए पर्वत पर मूर्ति अब अपना कठिनतम मार्ग तय कर रही थी। कुछ ही देर बाद मूर्ति शिखर-मन्दिर के द्वार पर जा पहुँची। अब परीक्षा की घडी थी। मन्दिर का दक्षिणमुखी प्रवेश-द्वार ऊँचाई व चौड़ाई दोनों में छोटा था। लगा कि मूर्ति दक्षिण द्वार से न जाने का संकेत कर पूर्व में मन्दिर-द्वार बनाने को अभिप्रेरित कर रही हो। मूर्ति मदिर में ले जाने के लिए दीवार तोडना ही एकमात्र उपाय। पर पर्वत पर दीवार तोड़ने के कोई साधन उपलब्ध नहीं। अब क्या किया जावे। लोग इसी ऊहापोह में थे कि युवकों ने जोश-खरोश के साथ मूर्ति के साथ आये बॉसों से दीवार तोड़ना चालू कर दिया। मोटे-मोटे पत्थरों से बनी दीवार को तोडने के लिए बॉस। जी हाँ! बालयति आचार्यश्री के ओज के प्रभाव से उस दिन बॉसों से एक नहीं, दो-दो दीवारों के टूटने का चमत्कार हुआ और मध्याह्न १२.३० बजे श्री वासुपूज्य भगवान् की मूर्ति तमाम विघ्न-बाधाओं को पराभूत करते हुए यथास्थान विराजमान हो गयी।

सभी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुख से यही निकला कि १७ वर्षों

से चिरप्रतीक्षित मूर्ति को आचार्यश्री की धीरता-वीरता और साधना से विराजमान होने में उतने घंटे भी नहीं लगे। मंदारगिरि शिखर-मन्दिर में जैन-धर्म की प्रतीक मूर्ति स्थापित हो जाने से जैन समाज का वहाँ निर्विवाद आधिपत्य स्थापित हो गया। बांका जिला प्रशासन का भी परमावश्यक महान् ऐतिहासिक कार्य को सम्पन्न कराने में स्तुत्य योगदान रहा। इस अवसर पर आचार्यश्री ने अपने सम्बोधन में कहा–मंगलवार वासुपूज्य का वार है इसलिए मंगलग्रह की बाधा को शान्त करने वाला है। अत: मंगलवार को ही मूर्ति को पर्वत पर पहुँचना और विराजमान होना अभीष्ट था।

गिरिडीह से मूर्ति विराजमान करने का दृढसंकल्प लेकर चले आचार्यश्री का संकल्प पूरा हो गया था। आपकी सद्प्रेरणा एवं प्रयास से सम्पन्न इस ऐतिहासिक पुण्य-कार्य के लिए आपका नाम युगों-युगों तक अजर-अमर रहेगा।

अद्वितीय सिद्धक्षेत्र

मंदारगिरि सिद्धक्षेत्र से ८ जून १९९६ शनिवार को आचार्य श्री भरतसागरजी ने संघसहित चम्पापुर सिद्धक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। आचार्यश्री सहित सात मुनिराजों, छह आर्यिकाओं एवं तीन क्षुल्लिकाओं, कुल १६ त्यागीवृंदों से शोभित संघ ११ जून १९९६ को चम्पापुर सिद्धक्षेत्र पहुँचा।

चम्पापुर अत्यन्त प्राचीन एवं पौराणिक तीर्थक्षेत्र है। विश्व में अद्वितीय इस पावन-भूमि में प्रथम बालयति बारहवें तीर्थंकर देवाधिदेव श्री १००८ भगवान वासुपूज्य के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण–पाँचों कल्याणक हुए हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ द्वारा स्थापित बावन जनपदों में अंग जनपद की राजधानी रहा चम्पापुर भगवान महावीर के समय भी छह महानगरों में से एक था। इस क्षेत्र की प्रसिद्धि में भगवान महावीर के दीक्षाकाल के तीन वर्षायोग, अंग-बंग-मगध-वैशाली का धर्म-प्रचार केन्द्र, सती सुभद्रा की शील परीक्षा, सती चन्दनबाला द्वारा भगवान महावीर को प्रथम आहारदान, हरिवंश की स्थापना, श्रीपाल-मैनासुन्दरी का जीवन-चरित्र, धर्मघोष मुनि का समाधिमरण, दानवीर राजा कर्ण, राजा मुद्रक एवं महान् शिल्पी विश्वकर्मा आदि के कथानक जुड़े हुए हैं।

जयपुर की अनुपम कृति हवामहल की शैली पर आधारित सिद्धक्षेत्र व कलापूर्ण विशाल द्वार एवं अनेक भव्य शिखरों की मनोहारी छटा अवर्णनीय है सहस्रों वर्ष प्राचीन दो कीर्ति-स्तम्भों, चौबीस टोंकों के बीच अवस्थित पूर्वांच में अद्वितीय ७१ फुट उत्तुंग विशाल मानस्तम्भ से समलंकृत, मनोज्ञ जिनबिम्ब एवं अति प्राचीन चरण पादुका से सुशोभित इस निर्वाण-क्षेत्र का वातावरण बहु ही सुरम्य और प्रशान्त है। दिगम्बर जैन तीर्थों के मानचित्र में देदीप्यमान यह क्षे अपनी सुन्दर संरचना के कारण अप्रतिम है।

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव से क्षेत्र मन्त्री श्र रतनलाल जैन बिनायक्या की कर्मठता एवं लगनशीलता से निरन्तर विकासोन्मुख यह सिद्धक्षेत्र संघ के सभी त्यागियों के मन को भा गया। सभी ने एक स्वर इस सिद्धक्षेत्र को साधुओं के ध्यान, अध्ययन एवं साधनासिद्धि के लिए अपू शांतिमय अद्वितीय स्थल बताया। आचार्यश्री ने भागलपुर समाज के करब अनुरोध पर यहाँ विशाल संघ के साथ चातुर्मास कर गुरु-भक्ति एवं सेवा कर का अनन्य सौभाग्य प्रदान किया।

यहाँ आपके प्रभावी व्यक्तित्व के आकर्षण से पूरे समाज में नवचेतन का संचार हो धर्म की ओर झुकाव हुआ। सबके संस्कार, आचार-विचार ए व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। आपके मंगल प्रवचनों ने यहाँ ज्ञान चक्षु खोल धर्म का मर्म समझने की सुप्त अन्तर शक्ति जागृत की। आपक सद्सान्निध्य से सिनेमा एवं टी.वी. देखने से अरुचि और फिल्मी गानों का स्था प्रार्थना एवं भक्ति ने ले लिया। आचार्यश्री की सहज प्रेरणा से बहुसंख्य लोग द्वारा व्रत-नियम-संयम लेने से त्याग-मार्ग की ओर प्रवृत्ति बढ़ी। आपके असी स्नेहाशीष एवं वात्सल्य से चम्पापुर और भागलपुर की दूरी सिमट गयी। यदा कदा चम्पापुर जाने वाले आपके सान्निध्य की सुवास से सदैव खिंचे चले आ थे। अचल तीर्थक्षेत्र चम्पापुर पर चल तीर्थ आचार्य भरतसागरजी महाराज व सान्निध्य, अद्भुत मणिकांचन संयोग था। ११ जून १९९६ से १६ जनवरी १९९ तक आचार्यश्री ने सद्सान्निध्य प्रदान कर जिनधर्म की अजस्र गंगा बहायी भागलपुर वाले आपके द्वारा किये गये कृपापूर्वक महान् उपकार के लिए सदै

ऋणी रहेंगे। इस अवधि में आपके प्रबल पुरुषार्थ से अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं एवं धर्मप्रभावना के अनेक आयोजन सम्पन्न हुए।

१६ जनवरी १९९७ को आचार्यश्री ने संघ सहित चम्पापुर से मंगल विहार किया। विहार के समय आबाल-वृद्ध नर-नारी अश्रुपूरित नेत्रों से जीवन्त बने अचल तीर्थ में से निकल कर जा रही भव्यात्माओं-चलतीर्थों को स्तब्ध से खड़े निहार रहे थे। चलतीर्थ चले जा रहे थे अपनी चरण-रज छोड़कर। वीतरागी गुरु के वियोग से रागी श्रावकों के हृदय दुख से भीग गये थे।

मार्ग में सुल्तानगंज, खड्गपुर, नवादा आदि में प्रभावना करते हुए २७ जनवरी १९९७ को आचार्यश्री गौतम स्वामी की निर्वाण भूमि गुणावाजी पहुँचे। वहाँ आपकी प्रेरणा एवं सान्निध्य में श्री एस.पी. जैन, धनबाद के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री जगत् जैन द्वारा त्यागी-व्रतियों के निवास के लिए 'श्री विमल भरत त्यागी निवास' का शिलान्यास किया गया।

गुणावाजी से मंगल विहार कर संघ का भगवान महावीर की निर्वाण-भूमि पावापुरी में मंगल आगमन हुआ। पावापुरी में ३० जनवरी १९९७ को आचार्यश्री के सान्निध्य में मानस्तम्भ का शिलान्यास हुआ और नींव भरी गई। इसी दिन आचार्यप्रवर श्री महावीरकीर्ति जी महाराज की पुण्यतिथि मनायी गयी।

विहार के समय मार्ग में भीषण शीत के कारण उत्पन्न वेदना आचार्यश्री के असातावेदनीय कर्म के उदय से तीव्र से तीव्रतर हो गयी। पैरों को हिलाने-डुलाने मात्र से ही होने वाली असहनीय वेदना से आचार्यश्री को आवश्यक क्रियायें करने तक में पराश्रित होना पड़ा। आचार्यश्री की यह स्थिति देखकर संघ के त्यागी चिन्तातुर थे तो श्रावकों में गहरा विषाद व्याप्त था। इस स्थिति में भी, कलिकाल होते हुए भी आचार्यश्री की संहनन शक्ति देखने लायक थी। लेपादि, औषधियों एवं वैयावृत्ति से दो सप्ताह से ज्यादा पीड़ित रहे आचार्यश्री को उत्तरोत्तर लाभ हुआ। अपने प्रबल पुण्य प्रताप एवं भक्तों की प्रार्थना से आचार्यश्री ने रोगपरीषह जय किया।

अपने जीवन में अनेक जानलेवा उपसर्गों एवं परीषहों पर विजय प्राप्त

कर आचार्यश्री ने हर बार नया निखार ही पाया है और सही भी यही है कि शुद्ध चैतन्य रत्न की प्राप्ति के लिए परीषह और उपसर्ग की सघन चोट जितना अधिक यह जीव खाता है उतना शीघ्र ही शुद्ध चैतन्य बनकर निखार को प्राप्त होता है।

१४ फरवरी १९९७ को आचार्यश्री एवं त्यागियों का भेदविज्ञान का प्रतीक वैराग्यमूलक केशलोंच व अगले दिन वृहत् शांतिधारा हुई। १६ फरवरी १९९७ माघ सुदी दशमी को आचार्यश्री का तृतीय आचार्य-पद प्रतिष्ठापना दिवस मनाया गया। इस अवसर पर आचार्यश्री की पूजा, पादप्रक्षालन एवं मंगल आरती हुई। श्री मानमल जी महावीर प्रसाद जी झांझरी, कोडरमा वालों की तरफ से श्रीकल्याण मन्दिर मण्डल विधान भी करवाया गया। आगत-अतिथियों के लिए समुचित भोजन व्यवस्था भी उनके सौजन्य से की गई थी। इस अवसर पर कोडरमा, गया, रफीगंज, पटना व भागलपुर से काफी लोग पधारे।

२७ फरवरी १९९७ को आचार्यश्री ने स्वास्थ्य लाभ करने के पश्चात् पावापुरी से विहार किया। मार्ग में कुण्डलपुर में दर्शन करते हुए संघ ने १ मार्च १९९७ को राजगृही में अपूर्व प्रभावना के साथ मंगल प्रवेश किया। आचार्यश्री के मंगल प्रवेश करते ही वीरायतन से पधार कर सती चन्दनाजी ने आचार्यश्री के चरणों में विनयपूर्वक नमन करते हुए वीरायतन पधारने का अनुरोध किया।

६ मार्च १९९७ वृहस्पतिवार फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को भगवान मुनिसुव्रतनाथ का निर्वाणकल्याणक उनकी गर्भ, जन्म, तप और ज्ञानकल्याणक भूमि राजगृही पर आचार्यश्री के सान्निध्य में श्रद्धापूर्वक मनाया गया।

राजगृही स्थित पंच पहाड़ी में क्रम से चतुर्थ स्वर्णगिरि सुरक्षा कारणों से प्रशासन द्वारा विगत १५ वर्षों से यात्रियों के दर्शन-वन्दन हेतु बन्द था। आचार्यश्री ने अधीक्षक महोदय को दर्शनार्थ आने पर आशीर्वाद देते हुए वस्तुस्थिति से अवगत करवाया। अधीक्षक महोदय ने कहा–शासकीय कारणों से यात्रियों द्वारा तीर्थ अभिवन्दना नहीं कर पाना प्रशासन के लिए शर्म और कलंक की बात है। उत्साही अधीक्षक महोदय ने अपने सद्प्रयासों से पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध करवाकर चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि को वन्दना-अर्चना हेतु खोलकर कलंक धोया। आचार्यश्री ने अनेक श्रद्धालुओं के साथ स्वर्णगिरि की

वन्दना का श्रीगणेश किया। इस पहाड़ पर विराजमान भगवान शांतिनाथ की प्राचीन प्रतिमा चोरी चले जाने से रिक्त स्थान पर आचार्यश्री ने शांतिप्रभु के चरण प्रतिष्ठापित करवाये। आचार्यश्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से प्राप्त यह उल्लेखनीय उपलब्धि समाज एवं देश के लिए गौरवपूर्ण है।

११ मार्च १९९७ को आचार्यश्री ने संघ सहित राजगृही से 'गया' के लिए मंगल विहार किया। गया प्रवास में आचार्यश्री का ४९वाँ जन्मदिवस १६ अप्रैल १९९७ चैत्र सुदी नवमी को "त्रिदिवसीय आराधना महोत्सव" के रूप में धूमधाम से मनाया गया। गया से मगल विहार करते हुए आचार्यश्री हजारीबाग पहुँचे। सात दिवसीय ध्यान शिक्षण-शिविर आपके सान्निध्य में लगाया गया। सभी युवक-युवतियों, नर-नारियों ने इस शिविर में भाग लेकर अध्यात्म ध्यान कला का शिक्षण आचार्यश्री से प्राप्त किया। यहाँ से मंगल विहार करते हुए आचार्यश्री ने धर्मनगरी कोडरमा मे मंगल प्रवेश किया। आपके तत्त्वावधान में पं. रतनलालजी हजारीबाग वालों के मधुर कंठ से तीस-चौबीसी विधान निर्विघ्न सम्पन्न हुआ, यहाँ भी आचार्यश्री ने ध्यान शिविर के द्वारा जन-मानस को धर्मध्यान की अनूठी कला का शिक्षण दिया।

संयमकलश की तैयारी के लिए गुरु की प्रतीक्षा

सुप्रतिष्ठित धर्मानुरागी श्री जयचन्दजी बगड़ा सम्मेद-शिखर तीर्थराज पर पलक-पाँवड़े बिछाते हुए मानों चातक पक्षी की तरह आचार्यश्री के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जैनेश्वरी दीक्षा लेने की तैयारी तत्पर 'यम-सल्लेखना' के प्यासे बगड़ाजी की असीम प्रतीक्षा के बाद आचार्यश्री का पुन: तीर्थराज सम्मेद-शिखरजी पर आगमन हुआ। चारों ओर हरियाली थी, मानों उजड़ा बाग पुन: हरा-भरा हो लहलहा रहा था। बगडाजी तो मानों स्वाति नक्षत्र की बूंद का अमृत पीकर आज तृषित हृदय व नेत्रों को तृप्त कर रहे थे।

पारखी गुरु ने शिष्य के हृदय को एक दृष्टि में टटोल लिया।

नम्र शिष्य ने चरणों में आने की प्रार्थना सुनाई।

ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी १९९७ ठीक एक बजे गुरु के चरणों में शिष्य ने अपना सब कुछ समर्पण कर दिया। 'अब मेरी सारी चिंता मिट गई।' क्षपक ने

निर्यापकाचार्य का चयन कर आचार्यश्री के चरणों में जीवन के पापों की पूर्ण आलोचना कर अपने को निर्दोष बना लिया।

आचार्यश्री ने कहा–अभी समय है, जल्दी नहीं करें, धीरे से सब कार्य होगा। समर्पण में गुरु का दीपक जलता है, शिष्य गुरु के दीपक के साथ दमकता है। बस यही हुआ। गुरु आज्ञा शिरोधार्य हुई। जयचन्दजी बगड़ा को आचार्यश्री ने शुभ मुहूर्त्त में वर्णी दीक्षा देकर उनके उत्साह, साधना की परीक्षा की। सफलता के बढते हुए कदमों को देखकर श्रावण शुक्ला पंचमी सन् १९९६ को वर्णी बगडाजी की आचार्यश्री के मंगल सस्कारों द्वारा मुनि दीक्षा हुई। नामकरण अन्तरात्मा सागरजी रखा गया।

आचार्यश्री के निर्यापकाचार्यत्व में यम सल्लेखनाधारी क्षपक अन्तरात्मा सागरजी का 'मंगल मरण महोत्सव' क्रमशः त्याग की अपूर्व साधना के बल पर तथा मुनि श्री अमितसागरजी की निस्पृह वैय्यावृति से निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

इसी के बाद क्षुल्लिका विजयश्री ने आचार्यश्री से आर्यिका व्रत धारण कर आपको निर्यापकाचार्य चुना व अपने संयम-साधना के कठोर जीवन रूपी मंदिर पर यम सल्लेखना का कलश चढाया। ये थीं आर्यिका निर्विकल्पमती जी, जिन्हे अपना नाम सुनते ही आनन्द की मुस्कराहट आ गई थी।

सघ में इन दिनों मानों सल्लेखना का शिविर ही चल रहा था। तीसरी यम सल्लेखना की तैयारी। देव-शास्त्र-गुरुभक्त आचार्य गुरुदेव विमलसागरजी की अन्तिम शिष्या आर्यिका सल्लेखनामती माताजी का यम-सल्लेखना की ओर 'बढ़ता कदम'–

काय और कषाय को कृश करते हुए तीन-तीन उपवास कर यम सल्लेखना धारण करने वाली वीर नारी ने जिनेन्द्रदेव का अभिषेक देखते-देखते गुरुदेव आचार्यश्री भरतसागरजी के चरणों में अपने प्राणों का विसर्जन कर हँसते-हँसते मृत्यु का आह्वान किया।

कुछ माह ही बीते होंगे कि गुरुओं की सेविका संघ-संचालिका ब्र. चित्राबाईजी 'भरतेश-वैभव' ग्रन्थ का स्वाध्याय सुनते-सुनते वैराग्य को प्राप्त

हुई–''भरत व बाहुबलीजी की माताएँ वृद्धावस्था में आर्यिका व्रत धारण कर समाधि को प्राप्त हुईं'' इसी प्रकरण ने इन्हें झकझोर दिया। सन् १९९८ श्रावण शुक्ला सप्तमी को आर्यिकाव्रत धारण कर समाधि की साधना में लग गईं। नाम था श्री 'आर्यिका विचित्रमतीजी'।

'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'' की उक्ति को आपने चरितार्थ किया। ११ दिन की यम सल्लेखना के पश्चात् मंगल बेला में लगभग ५० मुनि, आर्यिकाओं के बीच प्राणों का विसर्जन किया।

इसी क्रम में सुप्रतिष्ठित धर्मानुरागी कोडरमा निवासी 'श्री मानमलजी झांझरी' 'घर में वैरागी' ने आचार्यश्री के चरणों में आकर जीवन डोरी समर्पित कर दी। क्षुल्लक दीक्षा पश्चात् मुनि दीक्षा और पूर्ण शान्त भावों से आत्मचिन्तन करते हुए निर्यापकाचार्य आचार्यश्री के कर-कमलों से यम-सल्लेखना ग्रहण कर तीन उपवासों के पश्चात् नश्वर देह का हँसते-हँसते त्याग कर दिया।

स्वर्ण-जयन्ती

जीवन मानव मन्दिर में विराजमान चैतन्य प्रभु की आराधना, सेवा भावना रूपी यम सल्लेखना का एक दौर पूर्ण हुआ तभी आचार्यश्री का मंगल विहार 'धनबाद' नगरी की ओर हुआ। यहाँ आचार्यश्री का 'स्वर्णजयन्ती' (५० वाँ जन्म-जयन्ती महोत्सव) पर्व विशेष आयोजनों के साथ मनाया गया। इस जयन्ती की विशेष उपलब्धि थी आचार्य प्रणीत ५० ग्रन्थों का प्रकाशन व लोकार्पण। आर्यिका स्याद्वादमती माताजी के मंगल निर्देशन व ब्र. प्रभाजी पाटनी के संयोजन में यह एक प्रशंसनीय, वन्दनीय कार्य हुआ। पूर्व में इसी संघ से आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी महाराज की 'हीरक जयन्ती' पर आचार्य प्रणीत ७५ ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ था, जिसमें आचार्यश्री का आशीर्वाद व आचार्य भरतसागरजी का निर्देशन व संकल्प आर्यिका स्याद्वादमतीजी का था। इस संघ का यह कार्य समाज के लिए अत्यन्त स्तुत्य है। वर्तमान में आचार्य प्रणीत लगभग १५० ग्रन्थों का प्रकाशन, पुन: पुन: प्रकाशन इस संघ की अनुपम ज्ञान दान की व धर्मप्रभावना की भावना से ही हुआ है। यह कार्य स्तुत्य व पुन: पुन: प्रशंसा के योग्य है।

धनबाद में आचार्यश्री की स्वर्ण-जयन्ती पर 'ज्ञानरथ' चलाया गया जिसमें ५० ग्रन्थों को विराजमान कर रथ-यात्रा निकाली गई। अनोखा अपूर्व दृश्य, मनमोहक रथ-यात्रा ने सभी धर्म-बन्धुओं के हृदय का हरण किया। 'गुरु के अधूरे स्वप्नों के साकार रूप' इस उत्सव में हजारों नर-नारियों ने भाग लिया।

गुरुदेव आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज के अधूरे स्वप्नों को मूर्त रूप देने के लिए आचार्यश्री का पुन: सम्मेद-शिखर जी की ओर प्रस्थान हुआ। तीस-चौबीसी जिनालय निर्माण के अन्तिम चरण की ओर था। पचकल्याणक प्रतिष्ठा के लिये भक्तों में होड लगी हुई थी। पंचकल्याणक की तैयारियाँ जोर-शोर से प्रारंभ हो चुकीं। सम्पूर्ण भाग्त के नर-नाग्यिो की दृष्टि इस महोत्सव के स्वागत में लगी थी।

इसी बीच आसोज शुक्ला द्वितीया को संघस्थ क्षु. स्याद्वाद सागरजी की मुनि दीक्षा आचार्यश्री के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। नामकरण मुनि श्री म्याद्वादसागरजी हुआ। पश्चात् मगशिर शु. दसमी को संघस्थ ब्रह्मचारिणी कमलाबाई की आर्यिका दीक्षा हुई। नामकरण श्री आर्यिका पावापुरीमतीजी ग्खा गया।

प्रतीक्षा की घडियाँ पूर्ण हुईं, सन् १९९९ में वैशाख शुक्ला तृतीया से तीस चौबीसी का भव्य पञ्चकल्याणक प्रारंभ, सूर्यमंत्र व मोक्षकल्याणक विधिपूर्वक पूर्ण हुआ।

यहाँ ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा को आर्यिका नन्दामती की समाधि व भाद्रपद शु. अष्टमी को क्षु. विवेकमती जी की समाधि आपके सान्निध्य में हुई।

सन् १९९९ का चातुर्मास तीर्थराज पर ही स्थापित किया। चातुर्मास-कलश-स्थापना संघपति श्री शिखरचन्द पाँचूलाल पहाडिया के द्वारा हुई। चातुर्मास के दौरान अधूरे कार्य पूर्ण होते रहे।

मानव जीवन का कलश और गुरु कृपा

अचानक एक हृष्ट-पुष्ट महिला ऊँचा कद लम्बा-चौडा शरीर, सरल सौम्य मुद्रा की धारक, आचार्यश्री के चरणों में आई और नतमस्तक हो यम-

सल्लेखना मांगने लगी। आई कहाँ से-कलकत्ता से । नाम क्या? कंचन देवी सेठी। आचार्यश्री ने कहा—यम सल्लेखना बच्चों का खेल नहीं है। यहाँ तो सब कार्य क्रम से करना होगा। साधक की समर्पण भावना ने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य किया। प्रथम आर्यिका दीक्षा दी गई; नामकरण आर्यिका मन्दारगिरि जी रखा गया। साधना के बढ़ते चरण गुरुचरणों में लक्ष्य पर पहुँचने लगे। २२ दिन की दीक्षा में कुल ५ आहार ग्रहण कर ११ दिन की यम-सल्लेखना पूर्वक प्राणों का विसर्जन किया। महायज्ञ पूरा हुआ ही था कि कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को क्षु. अकम्पन सागरजी ने यम सल्लेखना की तैयारी शुरू कर दी। मुनिदीक्षा ले, माघकृष्णा तृतीया को यम-सल्लेखना पूर्ण की।

वेदी प्रतिष्ठा के लिए

आचार्यश्री का मंगल विहार गोमिया वेदी प्रतिष्ठा के लिए हुआ। मार्ग में फुसरो व साढम में शान्ति विधान व धर्मामृत की वर्षा करते हुए आचार्य संघ का गोमिया में पदार्पण हुआ।

यहाँ पहुँचते ही प्रथमत: वेदी शुद्धि आदि के साथ लघु पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा आपके सान्निध्य में सम्पन्न हुई। मंगल बेला में वीतराग भ. पार्श्वनाथ की शतफणा प्रतिमाजी वेदी में विराजमान की गई। विशाल रथयात्रा जुलूस से नगर मे आनन्द का वातावरण बन गया था, कारण नगर मे पहली रथयात्रा थी।

उपसर्गों का दौर व अदम्य साहस

वेदी प्रतिष्ठा के दूसरे ही दिन से आचार्यश्री को उपसर्गो ने आ घेरा। भोजन एकदम कम हो गया, श्वास का उठाव। अब प्रार्थना की गई "विहार रोका जावे"। पर अपने साहस को बटोरते पीछी-कमण्डलु कर-कमलों में ले विहार कर गये। लगभग बीस किलोमीटर ईसरी आ पहुँचे। रात में बेचैनी। प्रात: काल नाड़ी में कमजोरी, क्या करें। आहार पर निकल पडे। आहार की स्थिति गंभीर। कुछ ले नहीं पाये। श्वास का उठाव। आहार छोड़ बैठ गये। प्रार्थना की गई—आचार्यश्री दो दिन यहाँ विश्राम कर लीजिये। उत्तर मिला—मैं बिल्कुल ठीक हूँ। यहाँ कुछ कर्मों की मन्दता हुई। शरीररूपी गाड़ी सुधार पर आई।

आचार्य गुरुदेव श्री विमलसागरजी का पंचम समाधि दिवस धूमधाम से मनाया। स्वास्थ्य की पूर्ण अनुकूलता नहीं थी पर आत्मा में निर्मलता सदा रही।

पंचकल्याणक की ओर

"विहार हो गया"। एक पडाव ठीक, दूसरा पड़ाव चिन्ता, तीसरे पड़ाव ने चिन्तित कर दिया संघ व समाज को। दिगम्बर साधु वीरता से पैदल विहार करता रहा। देखने वालों के चेहरे पर मायूसी, पर सन्त शान्ति के झूले में झूल रहे थे।

आ गया धनबाद 'शान्तिनाथ भगवान' की प्रशान्त मूर्ति के पञ्चकल्याणक की तैयारियाँ शुरू। झंडारोहण से मोक्षकल्याणक तक सभी कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुए पर पुन: जकड़े गये कर्मों से आचार्यश्री। आपकी वेदना ने सम्पूर्ण भारत को हिला दिया पर आपकी वही चर्या, वही स्वाध्याय, वही षट्कर्म विधि। सभी हतप्रभ थे पर आप कष्ट में भी अपूर्व शान्ति में मग्न रहे। धन्य है आपकी वीरता, आपकी गौरव गाथा चिरस्मरणीय रहेगी।

धनबाद से विहार कर 'धैय्या धनबाद' में आचार्यश्री लगभग ४ माह विराजमान रहे। यहाँ भी आपके कर-कमलों से वेदी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। शान्ति का वातावरण शान्तिनाथ जिनालय में था। पर क्रूर कर्मों को शान्ति कहाँ। असाता वेदनीय ने बहुत नाटक दिखाये, विकट स्थितियों का सामना करना पड़ा, फिर भी धैर्य नही छोडा। सिद्धचक्र की आराधना द्वारा स्वास्थ्य लाभ मिला। आचार्यश्री का ५२वॉं जयन्ती महोत्सव व महावीर जयन्ती पर्व धूमधाम से संस्कृति की रक्षा करते हुए मनाया।

तभी पुन: कर्मो ने रग जमाया। स्थिति ने पलटा खाया। गिरता ही गया आचार्यश्री का शरीर, पर आत्मबल वही अनुपम। "मैं ठीक हूँ" एक ही शब्द।

ज्येष्ठ सुदी पंचमी श्रुतपंचमी पर्व यहाँ उत्साह के साथ मनाया गया। माँ जिनवाणी की आराधना के इस पावन पर्व पर अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने जिनवाणी की रथयात्रा में भाग लिया। श्रुतस्कन्ध यन्त्र का अभिषेक, जिनवाणी पूजा, श्रुतविधान पूजा के साथ ही धवला, जय धवला व महाबंध महाग्रन्थों की पूजा आदि अनुष्ठान आचार्यश्री के सान्निध्य में बहुत उत्साह के साथ सम्पन्न हुए।

संघ की परम्परानुसार भिन्न-भिन्न नगरों से पधारे श्रावकों ने चातुर्मास हेतु श्रीफल भेंट किए। आचार्यदेव का श्रुत-परम्परा व श्रुतपंचमी पर्व की महत्ता पर विशेष प्रवचन हुआ। विशेष रूप से आचार्यश्री ने स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने स्वाध्याय करने का नियम लिया। आचार्यश्री के मुखारविन्द से चातुर्मास स्थल की घोषणा की गई "गिरिडीह"। बस, गिरिडीह निवासी श्रावक-श्राविका आनन्द से झूम उठे-किसी चातुर्मास का मौका, यहाँ के श्रावकों को वर्षों बाद मिला था; कारण, तीर्थराज सम्मेद-शिखर को छोड़कर कोई साधु यहाँ चातुर्मास करना चाहते ही नहीं हैं। चारों ओर आनन्द की लहर।

अष्टाह्निका महापर्व सामने आया। सिद्धचक्र विधान कराने का सकल्प लिया। विशेष भक्ति, आराधना के साथ सिद्धचक्र विधान पूजा चल रही थी। आषाढ सुदी चतुर्दशी को मंगलमय बेला में श्री संघपति सेठ शिखरचन्दजी पाँचूलालजी पहाड़िया व जैनाग्रवाल परिवार की ओर से चातुर्मास कलश-स्थापना उत्साह पूर्वक की गई। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने चातुर्मास में नाना नियम ग्रहण किये। किसी ने चार माह हरी पत्ती के सेवन का त्याग किया, किसी ने चार माह रात्रिजलसेवन का त्याग किया। किसी ने चार माह में णमोकार मन्त्र के सवा लाख जाप करने का, किसी ने चार माह में 'ॐ ह्रीं नम:' मन्त्र के सवा लाख जाप करने का नियम लिया। बहुत उत्साह के साथ चातुर्मास की स्थापना के बाद शान्ति हवन पूर्वक विधान पूर्ण हुआ।

आचार्यश्री का स्वास्थ्य बीच-बीच में असाता का रूप दिखाते हुए ऊँचा-नीचा होता रहा तथापि प्रति रविवार को आचार्यश्री के विभिन्न विषयों पर प्रवचन हुआ करते थे। प्रतिदिन की प्रवचन माला में 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' ग्रन्थ पर स्वाध्याय शिक्षण चल रहे थे। महिला वर्ग व बालिकाओं को 'तत्त्वार्थसूत्र' का विशेष शिक्षण दिया गया। प्रत्येक अध्याय की परीक्षा ली गई। बहुत रुचि, उत्साह के साथ यहाँ ज्ञान की गंगा में भव्यात्माओं ने डुबकी लगाई।

एक दिवस अचानक आचार्यश्री को चक्कर आने लगे। आहार के लिए बैठने की प्रार्थना की गई। बैठते ही गर्दन लटक जाती थी। चारों ओर उदासी का वातावरण छा गया। प्रात: से सायं, सायं से प्रात: यही स्थिति, आहार नहीं हो

पाया। अचानक एक यात्री जयपुर से दर्शनार्थ आया, चमत्कार ऐसा हुआ उसने भक्तिपूर्वक एक नस बैठाई। आचार्यश्री आनंद से मुस्कराते हुए बैठ गए। दूसरे दिन निर्विघ्न आहार हुआ।

ऐसी कठोर परिस्थितियों में भी आचार्यश्री के चेहरे पर वही मुस्कान, वही प्रसन्नता नजर आती थी। प्रति रविवार को युवकों को प्रथम-द्वितीय भाग का शिक्षण देते थे। अपने चारित्र में दृढनिष्ठ आचार्यश्री ने जब से दीक्षा ली थी तब से आजतक २ माह में ही उत्कृष्ट केशलोच क्रिया करते थे। वैद्यजी सुशील जी जयपुर वालों ने आचार्यश्री से बहुत प्रार्थना की, "गुरुदेव ! अभी केशलोच में जल्दी मत कीजिए, केशलोच के योग्य शरीर अभी नहीं है। आप अभी उपवास नहीं करिये।"

आचार्यश्री ने एक ही बात कही–"वैद्यजी ! लगभग ३० वर्ष हो चुके, मैं तो गुरुदेव के साथ ही प्रति २ माह मे उत्कृष्ट केशलोच करता आया हूँ। मैं २ माह में ही करूंगा।" आचार्यश्री ने केशलोच किया ही। ऐसे दृढ़ चारित्रनिष्ठ गुरु की महिमा इस युग में चतुर्थ काल का स्मरण दिलाती है।

अति धार्मिक प्रभावना के साथ श्रावण मास पूर्ण हुआ। भाद्रपद मास में आचार्यश्री का स्वास्थ्य क्रमश: सुधार की ओर बढता रहा। विशेष प्रभावना रही। पूर्ण भाद्रपद मास व पर्यूषण पर्व मे तो अपूर्व धर्म प्रभावना रही। 'तत्त्वार्थ सूत्र' का अर्थ, दस धर्मो पर प्रवचन, बहुत ही सरल, सुबोध शैली में आचार्यश्री के मुखारविन्द से हुए जिन्हें सुनकर श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते थे।

प. पू. आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज का जन्म-जयन्ती-महोत्सव भी यहाँ उत्साह के साथ मनाया गया। इस मंगल अवसर पर पूज्य गुरुदेव की विशेषता बताते हुए आचार्यश्री भरतसागरजी ने कहा......"आचार्यश्री मार्दव धर्म से ओतप्रोत थे, उनके तन मन दोनों ही कोमल थे।" एक व्यक्ति सुपारी की तरह अन्दर बाहर दोनों ओर से कठोर होता है, दूसरा व्यक्ति नारियल की तरह बाहर से कठोर अन्दर से कोमल होता है किन्तु मार्दव धर्म का धारक किसमिस की तरह अन्दर बाहर कोमल होता है, ऐसे थे प.पू. गुरुदेव आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज।

भरतसागरजी महाराज ने कहा था, "गुरुदेव को वचनसिद्धि प्राप्त थी। मैं क्षुल्लक अवस्था में कभी पूरा भोजन नहीं कर पाता था। आधा भोजन करते ही वमन हो जाया करता था। मुँह में छाले बने रहते थे। आचार्यश्री कहते-मुनि दीक्षा ले लो, दीक्षा लेते ही सब बीमारियाँ भाग जाएंगी। सच में, वैसा ही हुआ, मैंने जैसे ही दीक्षा ली, मुँह के छाले व वमन का रोग समाप्त हो गया, आज तक नहीं हुआ।"

ऐतिहासिक चातुर्मास पूर्णता की ओर था, अष्टाह्निका पर्व में चारित्रशुद्धि विधान श्री सूरजमलजी जयकुमार जी गंगवाल की तरफ से करवाया गया। चारित्रशुद्धि विधान के बाद आचार्यश्री को असाता वेदनीय ने घेरा। अनेक उपसर्ग, परीषहों से पार हो संघ का विहार शिखरजी की ओर हुआ। पौष माह में क्षुल्लक चम्पापुरसागरजी की मुनिदीक्षा होकर ३ घंटे की यम सल्लेखना निर्मल परिणामों से हुई।

शिखरजी में २९ दिसम्बर के दिन गुरुदेव आचार्यश्री विमलसागर जी का स्मृति दिवस हजारों गुरुभक्तों ने आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज के सान्निध्य में उत्साह पूर्वक मनाया। शिखरजी मे आचार्य विरागसागरजी महाराज का संघ विराजमान था। दोनों आचार्यों का विनीत मिलाप हुआ। विरागसारगजी का वर्षों बाद शिक्षागुरु से प्रथम मिलाप गिरिडीह में हुआ, पुनः शिखरजी सिद्धक्षेत्र पर लगभग ६०-७० साधुओं का अनूठा मिलाप हुआ। अनेक चर्चाएँ दोनों के बीच हुई। अनुपम दृश्य था। पूज्य आचार्य विरागसागरजी की अपने शिक्षागुरु के प्रति विनय, भक्ति दर्शनीय थी। दोनों संघों का सामूहिक स्वाध्याय होता था। एक साथ दोनों संघों की आहारचर्या, स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा सभी दृश्य सुहावने लगते थे। दोनों संघ पर्वतराज के दर्शन के लिए एक साथ निकले, चतुर्दशी का प्रतिक्रमण पर्वत पर ही हुआ। ६०-७० साधुओं को आचार्यश्री ने प्रायश्चित्त दिया। आनंद के साथ, "ॐ ह्रीं श्रीअनन्तानन्तपरमसिद्धेभ्यो नमो नमः" मन्त्रोच्चारण के साथ यात्रा पूर्ण हुई। चोपडा कुण्ड पर आहार का सुन्दर दृश्य अवर्णनीय रहा।

माघ सुदी दसमी को आचार्यश्री का **आचार्य पदारोहण दिवस**

पू. आचार्यश्री संभवसागरजी व आ.श्री. विरागसागरजी महाराज के सान्निध्य व निर्देशन में विशेष उत्साह के साथ मनाया गया। चारों ओर शान्ति का वातावरण था। इसी बीच मधुवन बीसपंथी कोठी के मंत्री श्री महावीरप्रसादजी सेठी ने आचार्यश्री को श्रीफल भेंट कर सरिया पंचकल्याणक के लिए प्रार्थना की। आचार्यश्री ने स्वीकृति दी।

सरिया पंचकल्याणक

फाल्गुन की अष्टाह्निका में सरिया पंचकल्याणक के लिए आचार्यश्री का निर्विघ्न विहार हुआ। वहाँ मात्र १०-१२ घर जैनों के हैं। परन्तु पंच कल्याणक उत्सव का उत्साह इतने जोर-शोर पर था मानों हजारों घर हो। प्रतिष्ठाचार्य श्री धर्मचन्दजी शास्त्री के नेतृत्व तथा आचार्यश्री के सान्निध्य में २ मार्च से ९ मार्च २००१ तक पच-कल्याणक प्रतिष्ठा का यह महाकार्य निर्विघ्न पूर्ण हुआ। इस समय सौधर्म इन्द्र का पद श्री कन्हैयालालजी सेठी औरंगाबाद (बिहार) ने निभाकर उत्सव की शोभा बढाई।

अष्टाह्निका पर्व में पंचकल्याणक पूर्ण होते ही महावीर जी सेठी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि महावीर भ. का २६००वॉं जन्म कल्याणक धूमधाम से यहॉं सरिया में मनाना चाहते हैं। श्रीफल भेंट हुए। अब तो महावीर जी का पुण्य मानों छप्पर फाडकर सामने आया। रामनवमी व महावीर जयन्ती दो अमूल्य क्षण, दोनों का उत्सव एक साथ मनाने का अपूर्व अवसर हाथ में आया।

आचार्यश्री की ५३वीं जन्म-जयन्ती व वीरप्रभु का २६००वॉं जन्म कल्याणक महोत्सव वीर-भरत उपासना महोत्सव के रूप में १ अप्रेल से ६ अप्रेल २००१ तक सम्पन्न हुआ। छोटे से ग्राम में चारों ओर से धर्मात्माओं की भीड़ उमड पड़ी। उत्साह के साथ आचार्य श्री भरतसागरजी महाराज की जन्म-जयन्ती हजारों नर-नारियों ने भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आकर मनाई। सबकी एक ही कामना थी "जीओ हजारों साल"। इसी कामना की विनयाञ्जलि समर्पित करते हुए भक्तों की भीड उमड पडी थी। मृत्युञ्जय विधान, पंच परमेष्ठी विधान, शान्तिविधान के पश्चात् राम-नवमी के मंगल दिन प्रात: ४ बजे से ही

दीर्घायु की कामना से आकाश गूंज उठा था। हजारों व्यक्तियों ने सामूहिक विनयाञ्जलि अर्पण की। रामनवमी की पावन बेला में भक्तों ने भरत नवमी मनाई तथा आचार्यश्री ने राम-नवमी मनाई।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में कहा–''राम अयोध्या छोड़ वन को गए पर अयोध्या उनके साथ थी। राम से लोगों ने कहा–आपके पिता भी अन्यायी हैं, आपको राज्य न देकर भरत को राज्य दे दिया। तब राम ने कहा–मेरे पिताश्री को ऐसा मत कहो वे पूर्ण न्यायवन्त हैं। उन्होंने भरत को अयोध्या का छोटा सा राज्य और मुझे विशाल वन का राज्य दिया है। महानुभावो! राम के आदर्श का पालन करो।''

भगवान महावीर का २६००वाँ जन्मकल्याणक पर्व भी इस छोटे से ग्राम में उत्साहपूर्ण वातावरण में मनाया गया। सामूहिक पूजा, जिनाभिषेक व अनेक ज्ञानवर्धक कार्यक्रमों के साथ यह पर्व मनाया गया। आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में कहा–''आज घर-घर में भगवान महावीर के सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता है। आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और जीवन में अपरिग्रह ये महावीर प्रभु के मूल सिद्धान्त हैं। इन्हें अपनाने वाला शान्ति से जीवन बिताता है। अन्यथा जो शान्ति से जी नहीं सकता वह शान्ति से मर भी नहीं सकता। जोश में नहीं होश में जीओ, ढोंग से नहीं ढंग से जीओ, पापी से नहीं पाप से घृणा करो।

(**विशेष–**यहाँ जैन रामायण और महावीर नृत्य नाटिका जैन समाज के बालक-बालिकाओं के द्वारा सुन्दर ढंग से अभिनीत हुई।)

कोडरमा की ओर

२१ अप्रेल के शुभ दिन यहाँ से आचार्यश्री का विहार धर्मनगरी कोडरमा की ओर हुआ। भक्तों की उमडती भीड के साथ निर्बाध विहार चलता रहा। कोडरमा नगरी दुल्हन की तरह सजी थी। आचार्यदेव की अगवानी में धर्मात्मा नर-नारी, आबाल वृद्ध सभी पलक-पावँड़े बिछा इन्तजार कर रहे थे।

शुभ वेला में आचार्यश्री का मंगल प्रवेश हुआ। नगर में द्वार-द्वार पर तोरण बँधे थे। कन्याएँ आरती का थाल ले, देवांगना बन आरती उतार रही थीं।

घर-घर में पाद-प्रक्षालन, अर्घ उतारण हो रहा था। नगरी ऐसी शोभायमान हो रही थी मानों, गुरुभक्ति से स्वर्गपुरी ही उतरकर आई हो। आचार्यश्री के जयकारों से आकाश गूंज उठा था। सभी नर-नारी धर्मगंगा में डुबकी लगाने के लिए आतुर नजर आ रहे थे।

ज्येष्ठ मास की भीषण गर्मी, आचार्यश्री के शरीर ने करवट ली। असाता वेदनीय ने झकझोरा। आधा आहार भी नहीं होता कि वमन होने लगा। कभी तो ३-४ दिन के बाद एक आहार होता। सिलसिला ऐसे ही चलता रहा। बच्चों की धार्मिक शिक्षण रुचि देख आचार्यश्री की आज्ञा से संघस्थ त्यागियों द्वारा बच्चों को १ से ४ भाग, छहढाला, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र आदि का शिक्षण दिया गया।

ज्येष्ठ सुदी पंचमी श्रुत पंचमी पर्व उत्साह के साथ मनाया गया। संघपति श्री शिखरचन्दजी पहाड़िया-धर्मपत्नी प्रेमलता देवी ने श्रुतस्कन्ध विधान व षट्खण्डागम ग्रन्थराज की पूजा आचार्यश्री के चरण-सान्निध्य में की। चातुर्मास हेतु श्रीफल समर्पित किया गया। निर्णय सुनने के लिए भक्तगण आतुर थे। आपके उपदेश से अनेक भव्यात्माओं ने प्रतिदिन स्वाध्याय करने का नियम लिया। आचार्यश्री ने चातुर्मास कोडरमा में करने की घोषणा की। सुनते ही भक्तों का मन मयूर नाच उठा। अनोखा अवसर। वासना से उपासना की ओर बढ़ने का अपूर्व अवसर कोडरमा को मिला।

शाश्वत पर्वराज अष्टाह्निका पर्व सिद्धचक्र विधान के ध्वजारोहण के साथ प्रारंभ हुआ। विशेष उत्साह से आचार्यश्री के सान्निध्य में प्रतिष्ठाचार्य धर्मचन्दजी शास्त्री ने सिद्धचक्र विधान की पूजा कराई। आषाढ़ सुदी चतुर्दशी सन् २००१ मगल वेला में संघपति श्री शिखरचन्दजी पहाडिया, प्रदीप कुमार छाबडा आदि ने मंगल कलश स्थापित किए। आचार्यश्री ने मंगल प्रवचन देते हुए कहा–"साधु और समाज धर्म के दो तट हैं। इनका सिन्धुबिन्दु की तरह संबंध है। अत: मात्र साधु को बाँधने से चातुर्मास पूर्ण नहीं होगा। साधना के इस उत्सव में साधनों से बचो। इन्द्रिय दमन कर वासनाओं पर विजय प्राप्त करो। शक्य हो तो ४ माह अथवा २ माह श्रावण, भादों में ब्रह्मचर्यव्रत धारण करो।

शक्ति अनुसार नियमों का संकल्प कर साधना-उत्सव चातुर्मास को सफल करो।''

इस चातुर्मास में बडे-बड़े ग्रन्थों का स्वाध्याय सतत जारी रहा। धवला पु. ११, महाबन्ध पु. २ संघ में तथा ज्ञानार्णव, सागार धर्मामृत, भक्तामर सार्थ के साथ तत्त्वार्थसूत्र, जीवकाण्ड ग्रन्थों का सामूहिक अध्ययन व अध्यापन विशेष रीत्या चला। बालक-बालिकाओं में धर्म की विशेष प्रभावना रही। सभी ने धर्म शिक्षण प्राप्त किया।

संघस्थ ९ त्यागियों से संघ शोभायमान था। निरन्तर अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की धारा में शान्ति का स्रोत बह रहा था। ९ त्यागी थे–१ आचार्यश्री २. मुनिश्री श्रवणसागरजी ३. मुनिश्री अनेकान्त सागरजी ४. मुनिश्री स्वयम्भू सागरजी ५. आर्यिका स्याद्वादमतीजी ६. आ. मोक्षमतीजी ७. आ. पावापुरीमतीजी ८. क्षुल्लिका श्रीमतीजी ९. क्षुल्लिका चेतनमतीजी।

श्रावण माह में धर्म की बहार! स्वाध्याय में तत्परता!! भादव में भद्रता का सुन्दर वातावरण। आचार्यश्री के मुखारविन्द से धर्मामृत का पान कर समाज एक अनुपम शान्ति का अनुभव कर रहा था। श्रावण वदी प्रतिपदा को सुन्दर समवसरण झाँकी में विराजित आचार्यदेव के श्रीमुख से भक्तो ने अपने प्रश्नों के उत्तर पाए। श्रावण सुदी सप्तमी मोक्षकल्याणक के पावन दिन सम्मेद-शिखर की सुन्दर रचना कर पार्श्वनाथ जी का निर्वाण लाडू चढ़ाया गया। भाद्रपद की छटा निराली थी। गुरुभक्त सुरेशजी झांझरी की श्रीमती प्रेमलता देवी सहित लगभग १०-१५ श्रावकों ने दस उपवास किए। छोटे-छोटे लगभग ४० बच्चों ने तेला किए। विशेष त्याग तपस्या के दौर मे भाद्र पद विशेष प्रभावना से पूर्ण हुआ। सोलह कारण, रत्नत्रय की माल प्रदीपजी छाबडा ने ली।

आसोज माह शुक्ल पक्ष में १६ दिन का शान्ति विधान पूज्य आचार्यश्री के सान्निध्य में धर्मनिष्ठ गुरुभक्त महावीरप्रसाद सुरेशजी झांझरी परिवार द्वारा कराया गया। पश्चात् हवन आदि कर पूर्णाहुति की गई। मंगलमय अवसरों पर मंगल कार्य कर लेना महापुरुषों का कर्तव्य है। तदनुसार शान्ति विधान की उत्तम विधि ही यह है कि शुक्ल पक्ष में १६ दिन के पखवाड़े में जाप्य आदि अनुष्ठान

पूर्वक यह विधान पूर्ण करना सातिशय कर्मक्षय का हेतु है। सुरेशजी ने अवसर का पूर्ण लाभ उठाया।

कार्तिक मास में अष्टाह्निका पर्व के पुनीत अवसर पर श्री महावीरप्रसादजी सेठी (सरिया वाले) व प्रदीप जी छाबडा की ओर से ११ दिनों का विशाल सर्वतोभद्र विधान विशेष उत्साह और उदारता पूर्वक कराया गया। आचार्यश्री का पावन सान्निध्य पाकर सब के आनन्द का ठिकाना न था। विशाल पांडाल में मण्डल की रचना ठोस चबूतरे पर की गई। बड़े-बड़े पाँच मेरु, मंडप पर लगभग ५२७ मूर्तियों के भव्य दर्शन सहज ही आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे। ऐसी मंगल बेला में संघस्थ ब्र. प्रभाजी ने अष्टाह्निका के आठ उपवास किए। सारा वातावरण आनन्दमय था पर रंग में भंग हो गया।

विधान के छठे दिन २८ नवम्बर को प्रात: ३.४५ पर आचार्यश्री की आवाज चली गई। चारों ओर तहलका मच गया। अनेक डॉक्टर, वैद्य आए किन्तु निदान नहीं हो पाया। विधान की पूर्णता खट्टे-मीठे अनुभवों के साथ हुई।

अब संघ बडे मन्दिर में आकर विराजमान हुआ। जाप्य, अनुष्ठान आदि निरन्तर प्रारंभ हुए। आचार्यश्री के मुख पर वही मुस्कान, कर्मोदय की विचित्रता से भक्तों के चेहरों पर मायूसी थी पर वीर पुरुष आचार्यश्री अपने आत्मानन्द में मग्न थे।

आचार्यश्री की दिव्यवाणी सुनने के लिए जनता तडफ उठी। ऋषिमंडल विधान, पंच-परमेष्ठी विधान, भक्तामर विधान, कल्याण मंदिर विधान किए गए। भक्तों ने एक-एक दिन में सवा लाख जाप णमोकार मन्त्र के किए। किन्तु भव्यों के पापोदय से वाणी नहीं खिरी। सच ही है "भवि भागन वश जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय"। भव्यों के पुण्योदय से अरहंत देव व गुरुओं की वाणी को सुनने का लाभ मिलता है। अत: सच तो यही मानना होगा कि आचार्यश्री की वाणी हम साधु संघ व भव्यों के पापोदय से गई थी, उनके पापोदय से नहीं, हमारे अपने पापोदय से ऐसा दुष्काल आया था। मैं कई बार पूछती गुरुदेव! वाणी के बिना अब क्या होगा? हमें व सभी को अत्यंत पीड़ा

होती थी। पर आचार्यश्री अपनी मुस्कराहट के साथ एक ही बात इशारे से कहते थे-"सब ठीक होगा, घबराओ नहीं।" जीवनभर उनके धैर्य की अपूर्व परीक्षाएँ हुई हैं।

रोती-बिलखती धर्मप्राण जनता अपने आप में सिमट कर रह गई, क्या हुआ? मंगल बेला में आचार्यश्री का विहार हो गया। बनारस की ओर विहार कर गए निर्भीक सन्त। सब ऑख मलते रह गए। कोई उपाय नहीं, "पानी बहता भला, साधु रमता भला"।

मार्ग में सैनी गाँव में प.पू. १०८ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी विदुषी आर्यिका रत्न ज्ञानमती माताजी संघ का मिलाप हुआ। माताजी ने संघ सहित एक किलोमीटर दूर आकर आचार्यश्री की अगवानी की। लगभग २४ घंटे दोनों संघ सथ रहे। मौन में भी आचार्यश्री के चरणों में बैठकर माताजी ने अनेक चर्चाएँ करते हुए, उनकी शारीरिक स्थिति को देख वेदना प्रकट की तथा माताजी ने मुझे श्री मृत्युञ्जय यन्त्र दिया और कहा, इसका पानी महाराजश्री को पिलाते रहना। पूज्या माताजी ने आचार्यश्री की शारीरिक स्थिति को देखकर मुझे व प्रभा को अनेक निर्देश दिए जिनका हमने यथायोग्य पालन किया।

प्रकरण के अनुसार पाठकों को सूचित कर देना चाहूँगी कि "आचार्यश्री की वैय्यावृत्ति या औषध उपचार वैद्य श्री सुशीलजी, जयपुर, कलकत्ता के वैद्य श्री विश्वनाथजी शर्मा व डॉ. डी.सी. जैन, दिल्ली के निर्देशानुसार हुआ। इसमें अन्य किसी ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। भ्रमित लोगों ने अनेक भ्रम फैलाकर वातावरण दूषित कर दिया था जो वृथा ही पापलेप का भार बना। पूज्य आचार्यश्री के स्वास्थ्यलाभार्थ जो भी जाप, मन्त्र आदि जपे गए, पूज्य आचार्यश्री कुन्थुसागर जी, पू. आचार्यश्री विद्यानन्दजी, पू. गणिनी आर्यिकाश्री ज्ञानमती माताजी, पू. गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी व पू. गणिनी आर्यिकाश्री विजयमती माताजी के निर्देश व उनकी आज्ञा से ही अनुष्ठान रूप में किए गए। ऋषिमंडल यंत्र जल, णमोकार मन्त्र मन्त्रित जल, भक्तामर स्तोत्र व मन्त्र से मन्त्रित जल आदि गुरु व अनुभवी पूर्वोक्त आर्यिका माताजी की आज्ञा से दिए गए। साथ ही निरन्तर शान्ति मन्त्र, दिन में तीन बार सहस्रनाम का पाठ

(पं. नीरज जी सतना के परामर्श से) भी किया गया। संघ के किसी भी त्यागी ने स्वैच्छिक मन्त्रों का जाप कभी नहीं किया। किन्तु आचार्यश्री के असातावेदनीय काल में कतिपय अज्ञानी व्यक्तियों ने जैन धर्म के साधक, समर्पित व्रतियों का जो अवर्णवाद किया, वास्तव में वह अशोभनीय है और दर्शनमोहनीय कर्म का तीव्र बंध कराने वाला है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि दया के पात्र उन भ्रमित जीवों को सद्बुद्धि प्राप्त हो।

कर्मोदय की विचित्रता

आचार्यश्री संघ सहित विहार करते हुए कानपुर आ पहुँचे। दोनों पैरों में, घुटनों में सूजन, एक-एक कदम चलना भी कठिन सा हो गया था, ऐसी गभीर स्थिति में, ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप, कहाँ व कैसे विहार हो? संघपतिजी व कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने एक जैननगरी के अध्यक्ष से प्रार्थना की......आचार्यश्री अब इस गर्मी में आगे विहार करने में समर्थ नहीं हैं अत: आप लोग आचार्यश्री से चातुर्मास करने की प्रार्थना कीजिये। अध्यक्ष महोदय का उत्तर कैसा दर्दनाक था.....''आपके महाराज तो हमेशा बीमार रहते हैं, यहाँ कुछ हो गया तो हमें लोग क्या कहेंगे। अत: हम तो यहाँ चातुर्मास नहीं करायेंगे''। उत्तर सुनकर सारा सघ मानों मूर्च्छित-सा हो गया। श्रावक का कर्त्तव्य है कि ऐसे समय साधु की वैय्यावृत्ति करे, पर अपना पापोदय है जो ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पडा।

थोड़ी सी शारीरिक अनुकूलता मिलते ही आचार्यश्री का विहार बाराबंकी की ओर हो गया। बाराबंकी की जैन समाज ने आचार्यसंघ का भावभीना अभिवन्दन किया। शुभ दिन में नगर प्रवेश हुआ। १८ जुलाई २००२ को भगवान चन्द्रप्रभ के पावन चरणों में नमन कर आचार्यश्री व सर्वसंघ को अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। पहुँचते ही ऐसा अनुभव में आया कि प्रभु कृपा से अब आचार्यश्री शीघ्र ही दिव्यवाणी को प्राप्त होंगे।

बाराबंकी पहुँचते ही आबालवृद्ध गुरुभक्तों ने निर्णय लिया कि हम सब मिलकर प्रतिदिन ४० बार चन्द्रप्रभ चालीसा का पाठ करें। बच्चे-बच्चे जिनभक्ति से गुरु के उपसर्गो को दूर भगाने की भावना में डूबे हुए थे। परन्तु निकाचित कर्म भोगे बिना छूटते ही नहीं। यही स्थिति बनी ''दुबली गाय, दो आषाढ़'' उपसर्ग

पर उपसर्ग। सुबह आचार्यश्री को चक्कर आया। हाथों में कम्पन आदि विपत्तियाँ उभर कर सामने आ गईं। स्थिति गंभीर हो चली। एक ओर गर्मी की भीषणता दूसरी ओर मध्याह्न ४ बजे तक आहार नहीं हो पाया। बहुत प्रयत्न करने पर आचार्यश्री आहार के लिए उठे भी पर कण्ठ से जल उतरना भी कठिन हो गया। लगभग एक गागर पानी अंजुलि में दिया गया तब कहीं आधा गिलास पानी उदर में पहुँच पाया था। वैद्यजी सुशील जी जयपुर से पधारे, डॉ. डी.सी. जैन दिल्ली से पधारे। बहुत उपक्रम के बाद सातवें दिन आचार्यश्री के पेट में थोड़ा पानी गया। पुन: ८ दिन तक यही स्थिति रही अर्थात् एक दिन मध्य को छोड़ १६ दिन तक आचार्यश्री का आहार नहीं हो पाया। गर्मी बहुत बढ़ गई। पं. श्रेयांसजी दिवाकर सिवनी, महासभाध्यक्ष निर्मलजी सेठी वहीं विराजमान थे। भादवा सुदी पंचमी को आचार्यश्री को गर्मी का प्रकोप होने से असाता वेदनीय ने तीव्रता से घेरा। बहुत बड़ा कष्ट मात्र गंधोदक से दूर हुआ। गंधोदक छिडका गया। प्रकोप शान्त हुआ। मध्याह्न आहार होने पर कुछ पानी पेट में गया। कलकत्ता से वैद्यजी पधारे, उन्होंने दवा दी और कहा आहार में सबसे पहले दवा देना, बाद में पानी देना। पुण्योदय से आहार में कुछ शान्ति हुई। लगभग २० दिनों के बाद आचार्यश्री का आहार पूर्ववत् निर्बाध होने लगा। परन्तु अभी तक भी वाणी के बिना संघस्थ साधुगण तो चिन्तित ही थे। आचार्यश्री निश्चिन्त नजर आते थे। धर्मध्यान, स्वाध्याय आदि सब कार्य संघ में चल रहे थे। दिव्यवाणी का इन्तजार तो सभी भव्यात्माओं को बना ही हुआ था। कार्तिक कृष्णा एकादशी रात्रि में निद्रा में आ. स्याद्वादमती जी को एक आवाज आई–"आचार्यश्री की आवाज आएगी। ४८ पाठ भक्तामर स्तोत्र के करो।" स्याद्वादमती जी ने आचार्यश्री से अपनी बात कही और पाठ करने की आज्ञा मांगी। पंडितजी श्रेयांसजी ने कहा– "आचार्यश्री! माताजी को आज्ञा दीजिए।" बात ऐसी थी कि जीव के पापोदय में कोई पास में आकर नहीं बैठता है। तदनुसार लोग कहते थे "महाराज तो बोलते नहीं, वहाँ जाकर, वहाँ बैठकर क्या करेंगे।"। ऐसी स्थिति में आचार्यश्री ने कहा (इशारे में) पंडितजी! मैं अकेला रह जाऊंगा, यहाँ मुझे जिनवाणी के शब्द कौन सुनायेगा, पाठ कौन सुनाएगा। पंडितजी ने कहा–आचार्यश्री! माताजी को पाठ करने की आज्ञा दीजिए, मैं ६-७ घंटे आपके चरणों में बैठूंगा। पंडितजी

ने स्वाध्याय, स्तुति पाठ सुनाए। माताजी ने लगातार ८ घंटे तक ४८ पाठ भक्तामर स्तोत्र के किये और शान्ति का अनुभव किया।

पुण्योदय : असाता का शमन

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को ४-५ त्यागियों सहित आचार्यश्री ने प्रसन्नमुद्रा में केशलोच पूर्ण किया और उनके हाव-भाव, प्रसन्न मुद्रा से ऐसा प्रतीत हुआ कि अब हमारे पुण्य का उदय आने वाला ही है। शीघ्र ही दिव्यवाणी सुनने को मिलेगी, ऐसी अनुभूति हो रही थी। कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रात: चार बजे आचार्यश्री के सामने कार्यकर्त्ताओं ने सहजता से माइक रख दिया कि शायद आज भ.महावीर के निर्वाणोत्सव पर हमारे पापों का क्षय हो, दिव्य देशना मिल जाए। भावनाओं ने सत्य रूप धारण किया, आचार्यश्री से प्रार्थना की गई "गुरुदेव बोलिए, बोलिए"। भक्तों की भावना को बल मिला- ११ माह ९ दिन के बाद २४ नवम्बर को आचार्यश्री की दिव्य वाणी पुन: आई। ब्र. प्रभाजी संघस्थ ने नियम लिया था कि "जिस दिन आचार्यश्री की वाणी खिरेगी उसी दिन मैं सप्तम प्रतिमा धारण करूंगी।" तदनुसार उसी दिन सप्तम प्रतिमा के संस्कार कर आचार्यश्री ने ब्र. प्रभाजी पाटनी को धन्य किया। अब तो चारों ओर से भीड़ उमड़ पड़ी। हजारों की संख्या में लोग आचार्यश्री के दर्शनार्थ आने लगे। आचार्यश्री की वाणी लौट आई, इतना सुनते ही भारत के कोने-कोने में शान्ति, सन्तोष और आनन्द की लहर दौड़ पड़ी थी। देश की जैन समाज ने आज चैन की सांस ली।

संघ का स्वाध्याय, अध्ययन, शिक्षण-प्रशिक्षण आदि सुचारु रूप से प्रारंभ हो गया। प्रतिदिन आचार्यश्री के प्रवचनों का लाभ जन-मानस को मिला। बाराबंकी जेल में बन्दियों को संबोधनार्थ आचार्यश्री से प्रार्थना की गई। आचार्यश्री ने स्वीकृति दी। ससंघ आचार्यश्री ने जेल में जाकर मानवता का उपदेश दिया। आचार्यश्री ने संबोधन देते हुए कहा....."महानुभावो! यह मानव जीवन अमूल्य है। इसे प्राप्त कर आपने जो पाप किए हैं, उनसे पतन हुआ है। ऐसे पापों का त्याग करो। आपकी बुरी आदतों से पीड़ित माँ, बहन, बेटी, दुखी हैं, उनके दुखों का चिन्तन करो, यदि तुम अपने माता-पिता को ही सुख नहीं

दे सके तो सोचो तुम कैसे सुखी रह पाओगे। मानवता को अपनाओ। अपने व्यवहार को सुधारो।''

कार्तिक अष्टाह्निका में भव्य **जिन सहस्रनाम विधान** उत्साह के साथ किया गया। इसी मंगल अवसर पर विशाल मानस्तंभ का अभिषेक आचार्यश्री के सान्निध्य में हुआ। बाराबंकी में तो सत्य ही चतुर्थकाल का दृश्य देखने को मिल रहा था। इसी मध्य मुनि श्री सौरभसागरजी आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधारे। यहाँ आचार्यश्री को **चारित्ररत्न** की उपाधि से विभूषित किया गया।

इन्हीं दिनों वयोवृद्ध (९९ वर्ष के) मुनिराज श्री स्वयंभू सागरजी महाराज की शारीरिक स्थिति बिगड़ गई। रात्रि लगभग ९ बजे डॉ., वैद्य आए, सबने जवाब दे दिया। आचार्यश्री ने मुनिश्री को संबोधित किया। मुनिश्री ने आचार्यश्री से यम सल्लेखना मांगी। आचार्यश्री ने उनकी प्रसन्न मुद्रा और निर्मल भावना देख 'यम सल्लेखना' दे दी। उस प्रान्त में सल्लेखना जैसी तपोभावना को देखने का सौभाग्य नहीं मिला था, अत: चारों ओर जैन-अजैनों में तहलका मच गया। अखबार वाले आ-आकर उल्टे सीधे विचार प्रस्तुत करने लगे। आचार्यश्री ने दृढ़ता के साथ उनसे कहा-''आप लोग क्षपक से चर्चा कीजिए तथा पूछिये कि ''हम इन्हें मारना चाहते हैं या ये बाबा अमर होना चाहते हैं?'' प्रेस रिपोर्टरों ने आकर मुनिश्री से अनेक प्रश्न किये, ३ दिन की यम सल्लेखना के बाद भी मुनिश्री ने मुस्कराते हुए कहा-''हम तो कबहु न निज घर आए''। ''अब हम अमर भये न मरेंगे''।

सुनते ही सबके मन सन्तोष को प्राप्त हुए। चारों ओर सन्तोष की लहर दौड़ पड़ी। जैन-अजैन हजारों नर-नारियों ने समाधिस्थ मुनिराज के दर्शन किए। बहुत उत्साह के साथ मुनिश्री ने निर्विघ्न समाधि पूर्ण की। हजारों जैन-अजैन बन्धुओं ने अन्तिम शोभा यात्रा में भाग लेकर अपने आपको धन्य किया।

आचार्यश्री ने अब मन्दिर का वास्तु देखा और कहा-''मन्दिर में बाहुबली भगवान की मूर्ति गलत स्थान पर विराजमान है, उचित स्थान पर विराजमान करिए।'' समाज के मंत्री व अध्यक्ष ने सहर्ष स्वीकार किया।

आचार्यश्री के सान्निध्य में नई वेदी का शिलान्यास कराया गया। आज भगवान बाहुबली की प्रतिमा बाराबंकी में उचित स्थान पर विराजमान हो चुकी है।

३० नवम्बर २००२ अगहन कृष्णा एकादशी को आचार्यश्री के कर-कमलों द्वारा ब्र.अभय सेठी, औरंगाबाद को दीक्षा प्रदान की गई, नाम क्षु. ओमसागर दिया गया। संघ का विहार लखनऊ की ओर हुआ।

लखनऊ में धर्मप्रभावना

लखनऊ में आर्यिका चन्द्रमती जी व दक्षमती जी विराजमान थीं। यहाँ आचार्यश्री का मंगल प्रवेश उत्साह व भक्तिपूर्वक कराया गया। आचार्यश्री ने सभी मन्दिरों के दर्शन किये। महासभा कार्यालय में भी निर्मलजी सेठी व बाबूलाल जी छाबड़ा आचार्यश्री को लेकर गए। सभी मशीनरी, कार्य आदि देख आचार्यश्री ने महासभा को मंगल आशीर्वाद दिया। आर्यिका चन्द्रमतीजी, दक्षमतीजी आचार्यश्री के दर्शनार्थ बड़े मन्दिर में पधारे। सामूहिक प्रवचन हुए, आपस में अनेक चर्चा-समाधान हुए। सेठी जी ने अपने चैत्यालय में आचार्यश्री के सान्निध्य में शान्ति-विधान पूजा की।

अगहन शुक्ला एकादशी १५ दिसम्बर २००२ को लखनऊ की एक ब्रह्मचारिणी बाई की क्षुल्लिका दीक्षा आचार्यश्री के कर-कमलों द्वारा हुई। नामकरण क्षु. अयोध्यामती जी हुआ। विविध नगरों में विहार करते हुए आचार्यश्री कानपुर पधारे। कानपुर में विशेष धर्म प्रभावना हुई। विविध विषयों पर आचार्यश्री व संघस्थ त्यागियों के प्रवचन हुए.... सप्त तत्त्व की भूल, अनेकान्त, स्याद्वाद आदि विषयों पर गहन प्रवचन व चर्चाएँ हुईं। यहाँ परम पूज्य आचार्यश्री गुरुदेव विमलसागरजी महाराज की पुण्य तिथि पौष कृष्णा द्वादशी को आचार्यश्री के सान्निध्य में मनाई गई। लक्ष्मीपुत्रों व सरस्वती पुत्रों ने इसमें भाग लिया। पं. नीरजजी सतना भी पधारे। आपने अपने वक्तव्य में कहा–आचार्यश्री विमलसागरजी कितने ज्ञानी ध्यानी थे, यह तो मैं कुछ नहीं जानता, मात्र इतना जानता हूँ कि आचार्यश्री के समान परोपकारी, वात्सल्य का धनी इस युग में अन्य कोई सन्त नहीं हुआ। आपने यह भी कहा कि जैसे परोपकार में आचार्य श्री विमलसागरजी का नाम इतिहास में अमर रहेगा वैसे ही उपसर्गविजेताओं में आ. भरतसागरजी महाराज का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

आचार्यश्री ने अपने वक्तव्य में कहा, वि याने रहित, मल याने राग-द्वेष अर्थात् जो राग द्वेष रूपी मल से रहित थे, प्राणी मात्र में साम्यभाव ऐसे समता रस के आस्वादी थे गुरुवर आचार्य श्री विमलसागरजी। मेरे जीवन में जो कुछ मैंने पाया है वह सब कुछ गुरुवर का आशीर्वाद है। आचार्यश्री की महिमा बताते हुए आ. भरतसागरजी महाराज ने कहा—क्षत्र चूड़ामणि में आचार्यश्री वादीभसिंहजी ने लिखा है—

रत्नत्रयविशुद्धःसन् पात्रस्नेही परार्थकृत्।
परिपालितधर्मो हि भवाब्धेस्तारको गुरु॥

आचार्यश्री रत्नत्रय से विशुद्ध, पात्रों में स्नेह करने वाले थे। पात्रों के प्रति वे सदा सजग रहते थे। भरतसागरजी महाराज ने बताया— पूज्य आचार्यश्री ने मेरे अध्ययन की पूरी व्यवस्था की। मेरे अध्ययन के लिए आचार्यश्री ने पंडितों को रखा, मेरे अध्ययन की सभी सुविधाएँ हर क्षेत्र पर गुरुदेव ने जुटाईं। मैं गुरुदेव के ऋण को कभी चुका नहीं सकता।

संघ यहाँ से विहार करता हुआ, शीत लहरों के थपेड़ों को झेलता हुआ अतिशय क्षेत्र करगुवा पहुँचा। यहाँ प.पू. आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी का समाधि दिवस माघ कृष्णा षष्ठी को मनाया गया। पश्चात् आचार्यसंघ विहार करता हुआ सिद्धक्षेत्र सोनागिरि पर जा पहुँचा।

पुराने इतिहास को दोहराता हुआ पर्वत मानों आचार्यदेव को पुकार रहा था। वर्षों का सूनापन आज दूर हुआ। चारों ओर आज आनन्द का वातावरण था। पुरानी हरियाली आज पुनः झूम उठी। आचार्यश्री का आचार्यपदारोहण दिवस माघ सुदी दसमी को उत्साह के साथ मनाया गया। श्री अजितनाथ भगवान का जन्म कल्याणक उत्साह से मनाया गया, रथयात्रा आदि पावन कार्य उत्साह से हुए।

आचार्यश्री के सान्निध्य में पर्वत पर स्थित मानस्तंभ का महामस्तकाभिषेक हुआ। माघ सुदी पंचमी ६ फरवरी २००३ को क्षुल्लक ओमसागरजी की मुनि दीक्षा हुई।

धर्मनगरी इन्दौर

सोनागिरि से बजरंगगढ़, गुना, शिवपुरी आदि क्षेत्रों के दर्शन व नगरों में धर्म प्रभावना करते हुए आचार्यसंघ इन्दौर आ पहुँचा। इन्दौर में आचार्यश्री का मंगल प्रवेश विशेष प्रभावना के साथ हुआ। साथ ही आचार्यश्री का जन्म-जयन्ती समारोह भी मनाया गया। आचार्यश्री ने इन्दौर के सभी मन्दिरों के दर्शन किये तथा वैशाख कृष्णा चतुर्थी २० अप्रेल २००३ को इन्दौर गोम्मटगिरि पर आर्यिका स्याद्वादमती जी को गणिनी पद से संस्कारित किया। वहाँ बनेड़ियाजी अतिशय क्षेत्र, मक्सी पार्श्वनाथ के दर्शन करते हुए आचार्यश्री गनोड़ा (राजस्थान) पहुँचे। गनोड़ा में ज्येष्ठ सुदी पंचमी से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आपके संघ सान्निध्य में निर्विघ्न सम्पन्न हुई।

१८ वर्षों के बाद अब आचार्यश्री का मंगल पदार्पण लोहारिया नगरी में हुआ। अठारह वर्ष पूर्व गुरु के साथ पहुँचे थे, ऐसे आचार्यश्री आज स्वयं संघ नायक बनकर जन्म-स्थली में पधारे थे। नगरी दुल्हन की तरह सजी हुई अपने स्वामी का स्वागत कर रही थी।

सन् २००३ का चातुर्मास लोहारिया में करना तय हो गया। आषाढ़ सुदी अष्टमी को सप्त दीक्षाओं की घोषणा से सारा समाज उत्साहित हो तैयारियों में जुट गया। लोहारिया गाँव की दो बा.ब्र. बेटियाँ दीक्षित होने जा रही हैं, ब्र. कुसुम व ब्र. उर्मिला। नाम सुनते ही गाँव में आनन्द का वातावरण छा गया। जोर-शोर से विन्दौरी की तैयारियों में जुट गया समाज। घर-घर में दीक्षार्थियों का निमन्त्रण, घर-घर से जुलूस सुबह शाम वादित्रों की गूंज से गाँव गूंज उठता था। आषाढ़ सुदी षष्ठी, सप्तमी को गणधर वलय विधान, शान्ति विधान हुए। अष्टमी को भगवान नेमिनाथ का अभिषेक हुआ। पश्चात् निर्वाण लड्डू चढ़ाया गया। पश्चात् मंगलमय वेला में सप्त आर्यिका दीक्षाएँ आचार्यश्री के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुईं।

प्रथम – आचार्य श्री विमलसागरजी की शिष्या क्षुल्लिका सिद्धान्तमती जी आर्यिकाश्री १०५ सिद्धान्तमती जी हुई।

द्वितीय – आचार्यश्री विमलसागरजी की शिष्या क्षुल्लिका उद्धारमती जी आर्यिकाश्री १०५ उद्धारमती जी हुई।

तृतीय – संघस्थ ब्रह्मचारिणी कुसुम नायक लोहारिया, आर्यिका श्री १०५ भरतेश्वरमती जी हुई।

चतुर्थ – संघस्थ ब्रह्मचारिणी मालती सोलापुर, आर्यिका श्री १०५ गोम्मटेश्वरमतीजी हुई।

पंचम – संघस्थ ब्रह्मचारिणी उर्मिला नायक लोहारिया आर्यिका श्री १०५ नन्दीश्वरमतीजी हुई।

षष्ठ – ब्रह्मचारिणी रूपारी बाई बाँसवाड़ा आर्यिका श्री १०५ अन्देश्वरमती माताजी हुई।

सप्तम – ब्रह्मचारिणी कंकु बाई लोहारिया, आर्यिका श्री १०५ पंचमेरुमती माताजी हुई।

हजारों की संख्या में जनता ने इस वैराग्यमयी दृश्य को देखा। विद्वानों ने अपने सारगर्भित विचारों को व्यक्त किया। छह सात कविगण पधारे थे, सभी ने अपनी वैराग्यपूर्ण कविताएँ पढ़ीं। मंगलमय वातावरण में गोम्मट-गिरि लोहारिया में सात दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं। अब संघ में साधुओं की संख्या २२ हो गई थी। लोहारिया ग्राम के आसपास एकलबिहारी, वयोवृद्ध जो भी साधु थे सबको आचार्यश्री की छत्रछाया प्राप्त हुई। सुखद वातावरण में अष्टाह्निका पर्व में सहस्रनाम विधान हुआ। आषाढ सुदी चतुर्दशी को मध्याह्न में जिनाभिषेक, कलश शुद्धि व गुरु पूजा के कार्यक्रम हुए। रात्रि ८ बजे चातुर्मास-कलशस्थापना में प्रथम कलश संघपति श्री शिखरचन्द जी पहाड़िया ने, द्वितीय कलश महावीरप्रसाद सुरेशकुमार झांझरी, कोडरमा ने तथा तृतीय कलश.....बाँसवाड़ा निवासी ने विराजमान किया। पश्चात् चातुर्मासिक क्रिया की गई। आचार्यश्री ने अपने मंगल उपदेश में कहा—संयम ही देश की शान है। संयमियों की साधना संयमी ही करा सकते हैं। सभी भव्यात्माओं को चातुर्मास के मंगल अवसर पर कुछ-न-कुछ संयम अवश्य धारण करना चाहिए।

आषाढ़ सुदी चतुर्दशी को आचार्यश्री सहित ७ त्यागियों का केशलोच हुआ। केशलोच का वैराग्यमयी दृश्य वैरागियों को लुभावना लगा पर रागियों के मन में अनेक आशंकाएँ पैदा कर गया। इस दृश्य को देखने अनेक आदिवासी, अजैन लोग पधारे थे अत: उनकी अनेक शंकाएँ थीं जिनका समाधान आचार्यश्री ने दोपहर में किया।

केशलोच के सन्दर्भ में आचार्यश्री ने अपने वचनामृतों में कहा– ''केशलोच भेदविज्ञान की कसौटी है। सहिष्णुता का आधार है, अहिंसा का सम्बल है, अयाचक वृत्ति का प्रेरक है, मोह की ध्वजा को गिराने वाला एक अद्वितीय अस्त्र है। केशलोच मुक्ति रमा से मिलान कराने वाला शुल्क है। आज तक जितने भी सिद्ध हुए हैं सबने केशलोच किया है। बिना केशलोच किए आज तक कोई मुक्ति को प्राप्त नहीं हुआ।''

चातुर्मास में 'रत्नकरंड श्रावकाचार' का शिक्षण दिया गया। विभिन्न विषयों पर प्रति रविवार उपदेश होते थे। 'मेरी भावना' 'साधुओं की नवधा भक्ति व दाता के गुण' आदि विषयों पर उपदेश हुए। आचार्यश्री व संघस्थ त्यागियों के क्रम-क्रम से प्रवचन होते थे। आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज की जन्म-जयन्ती पर गिरिडीह निवासी श्री सूरजमलजी जयकुमारजी ने आचार्यश्री के सान्निध्य में शान्तिनाथ विधान कराकर पुण्यार्जन किया।

संघस्थ त्यागियों का 'अष्टपाहुड' व 'स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा' का सामूहिक स्वाध्याय आचार्यश्री के सान्निध्य में प्रात: व मध्याह्न होता था। अपराह्न में महाबंध ग्रंथ तीसरी पुस्तक का स्वाध्याय भी कतिपय साधुओं के मध्य चलता था।

दीपावली पर्व पर आचार्यश्री ने बच्चों को पटाखे छोड़ने का त्याग कराया। इस संकल्प से गाँव में अहिंसा का बिगुल बज गया। गाँव के महाराज हैं, ऐसा ज्ञान लोगों में भरा होने से श्रद्धा जम गई थी अत: जैनों के अलावा अनेक भील, आदिवासियों ने भी पटाखे नहीं फोड़े। चारों ओर अहिंसामय शान्ति का वातावरण बना रहा।

दीपावली के बाद कार्तिक सुदी प्रतिपदा को आचार्यश्री का दीक्षा दिवस

'संयम साधना दिवस के रूप में मनाया गया। आचार्यश्री ने मुनिदीक्षा की घटना बताते हुए कहा—सन् १९७२ की बात है। आचार्यश्री गुरुदेव संघ सहित सम्मेद-शिखरजी में विराजमान थे। मैं क्षुल्लक था। मुझे भयानक मलेरिया हो गया। इतना पसीना आता था कि बड़े-बड़े रूमाल गीले हो जाते थे। आहार नहीं हो पाता था, आधा आहार करते ही उल्टी हो जाती थी। बड़ी माताजी उस समय सिद्धमतीजी थीं। उन्होंने कहा—''क्षुल्लकजी! अब जीवन खतरे में नजर आता है। मुनि बन जाओ सब रोग मिट जाएंगे।'' तब मैंने सोचा, ''मरना तो है ही अब मुनि बनकर समाधि करना ही श्रेयस्कर है।'' मैंने कहा—''माताजी! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।'' माताजी ने तुरन्त ही आचार्यश्री गुरुदेव को बुलाया और मैंने गुरुजी को ऐसी जीर्ण शीर्ण स्थिति में मुनिदीक्षा की स्वीकृति दे दी। दीक्षा की स्वीकृति देते ही मेरा रोग धीरे-धीरे समाप्त हो गया। मैंने पूर्ण स्वस्थ अवस्था में गुरुदेव के कर-कमलों से मुनि दीक्षा प्राप्त की। मेरे साथ क्षुल्लक सुमति सागर जी की भी दीक्षा हुई। मैं मुनि भरतसागर बना व क्षुल्लक सुमतिसागरजी मुनि बाहुबली सागरजी बने। हम भरत-बाहुबली की जोडी लोकप्रिय थी।

हम दोनों का समझौता

बाहुबली महाराज ने मुझसे कहा—''मैं प्रवचन नहीं दे सकूंगा तब दीक्षा लेकर क्या करूँ।'' मैंने कहा—''आप मेरा केशलोच कर देना, मैं प्रवचन दे दिया करूंगा। हम दोनों भाई की तरह एक दूसरे के पूरक बनकर रहे।''

सच है—मेरी ऑखों देखी बात है-बाहुबली महाराज तपस्वी थे। नाम जैसे गुणधारक और भरतसागरजी महाराज ज्ञानी थे, दोनों की अनोखी जोड़ी थी। जैसा नाम वैसा काम।

कार्तिक अष्टाह्निका में वृहद्सिद्धचक्र विधान (संस्कृतमय) भक्तिपूर्ण वातावरण में निर्विघ्न पूर्ण हुआ। मंगलमय बेला में आचार्यश्री ने संघसहित आसपास के क्षेत्रों अन्देश्वर, कलिंजरा, बागीदौरा, अर्थूना, आनन्दपुरी, नागफणी पार्श्वनाथ आदि की वन्दनार्थ विहार किया। इधर लोहारिया में मुनि श्री अनेकान्त सागरजी महाराज क्षपक रूप में विराजमान थे। उनकी देख-रेख, स्वाध्याय, संबोधनार्थ आचार्यश्री ने आर्यिका स्याद्वादमतीजी को आज्ञा दी।

माताजी क्षपक की वैयावृत्ति में लोहारिया ही रहीं। पश्चात् आचार्यश्री विहार कर पुन: पधारे। क्षपक की समाधि निकट जान आसपास विराजमान सभी साधुओं को आमन्त्रण दिया गया। क्षपक महाराज के फाल्गुन सुदी अष्टमी को बारह वर्ष पूर्ण हो रहे थे। तदनुसार बहुत प्रभावना के साथ लगभग हजारों श्रावकों के मध्य मुनिश्री का फाल्गुन सुदी सप्तमी को अन्तिम आहार व्रतियों के हाथों निरन्तराय पूर्ण हुआ।

मुनि श्री अनेकान्तसागरजी ने मृत्यु का आह्वान करते हुए गुरु सान्निध्य में चारों प्रकार के आहार का आजीवन त्याग करते हुए वीर मरण का संकल्प किया। चारों ओर तालियों की गड़गड़ाहट से आंगन गूंज उठा। पूज्य आचार्यश्री ने कहा-- आज मुनिश्री के पाँच महाव्रत के साथ छठा अणुव्रत रात्रि भुक्ति त्याग भी महाव्रत रूप हो गया है। आज मुनिश्री हम सबसे बड़े हो गए हैं। आचार्यश्री निर्यापकाचार्य थे।

भव्य यम सल्लेखना के इस पावन अवसर पर लगभग ५२ पिच्छीधारियों का अपूर्व संगम था। मुनिश्री अमितसागरजी संघसहित इस महायज्ञ के अनुभवी निर्यापक थे। साथ ही, सुकुमालनन्दीजी संघ सहित, योगीन्द्रसागरजी संघ सहित, आचार्य रयणसागरजी संघ सहित, आज्ञासागरजी, आचार्य विपुलसागरजी, आर्यिका सुप्रकाशमतीजी आदि सन्त संघसहित विराजमान थे। साक्षात् चतुर्थ काल का नजारा था। फाल्गुन सुदी अष्टमी से पूर्णिमा तक दर्शनार्थियों का तांता लगा रहा। हजारों लोगों ने क्षपक के दर्शन कर पापों का प्रक्षालन किया। फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को प्रात: ८ बजे ॐ का उच्चारण करते हुए मुनिश्री की पवित्र आत्मा महाप्रयाण कर गई।

मुनिश्री अमितसागरजी का मंगलविहार समाधि के तीसरे दिन ही हो गया। लोहारिया में विराजमान विशाल त्यागी संघ के बीच पूज्य आचार्यश्री का जन्म-जयन्ती समारोह रामनवमी के पावन दिन विविध धार्मिक अनुष्ठानों के साथ मनाया गया।

यहाँ संघपति श्री शिखरचंदजी ने आचार्यश्री से कुचामन की ओर विहार की विशेष प्रार्थना की। पहाड़ियाजी को मौन स्वीकृति मिली। आचार्यश्री संघ

सहित विहार करते हुए पारसोला पहुँचे। यहाँ पूज्य सुपार्श्वमतीजी माताजी संघ सहित विराजमान थीं। यहाँ सुप्रभामती माताजी की समाधि चल रही थी। इस अवसर पर पूज्य आ.श्री वर्द्धमानसागरजी महाराज संघ, पू. आचार्यश्री भरतसागरजी संघ, पू. आ. श्री रयणसागरजी संघ सभी का अपूर्व समागम मिला। आचार्यश्री ने माताजी को समाधि के लिए मंगल आशीर्वाद दिया। तीनों आचार्य संघ व पूज्य सुपार्श्वमतीजी माताजी के मध्य अनेक विषयों पर चर्चा हुई। चारों तरफ मुनि ही मुनि नजर आते थे। अपूर्व संगम था।

यहाँ से आचार्यश्री संघ सहित धरियावाद पहुँचे। यहाँ पं. हँसमुखजी को विद्यालय के शिलान्यास के लिए मंगल आशीर्वाद देकर आचार्य संघ आगे अणिन्दा पार्श्वनाथ पहुँचा। अणिन्दा में एक भद्र श्रावक को क्षुल्लक दीक्षा के व्रत आचार्यश्री ने दिये। नामकरण क्षुल्लक अणिन्दासागर हुआ।

अणिन्दा से विहार करता हुआ संघ भीलवाड़ा, नसीराबाद होते हुए धर्मनमरी अजमेर पहुँचा। अजमेर आचार्यश्री की क्षुल्लक दीक्षास्थली है। यहाँ की जैन समाज ने ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को शान्तिनाथ भगवान के जन्म, तप व निर्वाण कल्याणक के साथ-साथ क्षुल्लक दीक्षा दिवस बहुत उत्साह के साथ मनाया। यहाँ सभी जिनमन्दिरों के दर्शन व जिनधर्म प्रभावना करते हुए आचार्यश्री संघसहित धर्मनगरी किशनगढ़ पहुँचे।

किशनगढ़ में आचार्यश्री के सान्निध्य में श्रुतपंचमी पर्व मनाया गया तथा इसी पावन दिन एक आर्यिका दीक्षा आचार्यश्री के कर-कमलों द्वारा हुई। नामकरण आर्यिका श्री १०५ श्रुतपंचमीमतीजी हुआ। संघ यहाँ लम्बे काल तक रहा। धर्मप्रभावना भी विशेष हुई।

किशनगढ़ से संघ ने रूपनगढ़ की ओर विहार किया। रूपनगढ़ में प्राचीन मूर्तियों के दर्शनकर सबके मन लहलहा उठे। सबकी ज्येष्ठ की गर्मी की लू ही मानों उतर गई, प्रभु की शीतल छाया को पाकर सबको एक आनन्दानुभूति हुई। यहाँ संघ लगभग ३ दिवस रुका। आगे कुचामन सिटी चातुर्मास के लिए विहार हो गया।

संघपतिजी शिखरचन्दजी पहाड़िया समाज के साथ स्वागतातुर हो

आचार्यश्री के पदार्पण के लिए पलक पाँवड़े बिछाए इन्तजार कर रहे थे। सैकड़ों की संख्या में युवक-युवतियाँ आचार्य संघ के साथ पैदल चल रहे थे। चतुर्थकालीन दृश्य लगता था। मंगलमय वेला में ८ जून २००४ को कुचामन सिटी में प्रवेश हुआ। आचार्यश्री का हजारों की संख्या में श्रावकों ने भाव भीना अभिवन्दन किया। प्रत्येक चौराहे पर मंगल तोरण द्वार बने थे। नगरी इन्द्रपुरी की तरह सजी हुई थी। धर्मनेता के आगमन पर सरस्वतीपुत्र डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी जोधपुर, राजनेता कुमावतजी, दानवीर नेता सुमेरजी पांड्या, आर.के. जैन मुम्बई, पन्नालाल सेठी आदि अनेक महानुभावों ने पधारकर आचार्यश्री का भावभीना अभिवन्दन किया। ब्र. प्रभा ने मंगलाचरण कर सभा का प्रारंभ किया। कुमावत जी ने आचार्यश्री के मंगल उपदेश से प्रभावित हो रात्रिभोजन का आजीवन त्याग किया था।

अष्टाह्निका पर्व में जिनसहस्रनाम विधान बहुत उत्साह से हुआ। इस विधान में विशेषता रही कि पूजक जागरूक और व्युत्पन्नमति थे। बालिकाएँ व महिलाएँ एक-एक नाम का अर्थ पूछती थीं। आचार्यश्री स्वयं अर्थ बताते थे, फिर आगे पूजा चलती थी। पूजा में ज्ञानवर्धक प्रश्नोत्तर भी होते थे। आचार्यश्री बच्चों को पारितोषिक देते थे। ज्ञानवर्धक पूजा से भव्यात्माओं को बहुत लाभ मिला। चातुर्मास स्थापना आषाढ़ सुदी १४ को हुई। इस वर्ष दो श्रावण थे अर्थात् ५ माह का चातुर्मास स्थापित हुआ। चातुर्मास का प्रथम कलश संघपति श्री शिखरचन्दजी पहाड़िया ने, द्वितीय कलश मूलचन्दजी रोहिण्डी वालों ने तथा तृतीय कलश माणकचन्द गंगवाल, पुत्रश्री विनोदकुमार अशोककुमार, कमल कुमार गंगवाल ने विराजमान किया।

१८ जुलाई से ३१ जुलाई २००४ तक आचार्यश्री शान्तिसागर जी की १३१वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में एक शिक्षण प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ। इस शिविर में सांगानेर विद्यालय, मोरैना विद्यालय, बनारस विद्यालय, साथ ही जबलपुर, टीकमगढ़ ललितपुर के बालकों तथा नावा, मेरठ, कुचामन के स्थानीय बालक-बालिकाओं लगभग २५० विद्यार्थियों ने भाग लिया। शिविर के निर्देशक ब्र. प्रभा पाटनी, पं. धर्मचन्द शास्त्री व पं. कुमुद सोनी थे। अर्थ-

सहयोगी संघपति शिखरचन्द जी थे तथा मंगल आशीर्वाद आचार्यश्री का था। शिखरचन्द जी ने सब बालक-बालिकाओं की एक ड्रेस बनवाई थी, पूर्ण उत्साह के साथ ज्ञान यज्ञ में सहयोग दिया था।

शिविर के उद्‌घाटन अवसर पर मूर्धन्य धर्मनिष्ठ श्रेष्ठीवर्ग ने पधारकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। सर्वश्री निर्मलजी सेठी, चैनरूपजी बाकलीवाल, अशोक जी पाटनी किशनगढ़, मदनलालजी बैनाड़ा, धर्मचन्द पहाड़िया आदि ने ध्वजारोहण, दीप प्रज्वलन, कलश स्थापना, जिनवाणी स्थापन आदि शुभ कार्य सम्पन्न किये। यह शिविर अद्वितीय था। शिक्षण-प्रशिक्षण के सुन्दर सुनियत कार्यक्रमों में ५ बजे प्रार्थना, योग व ध्यान का शिक्षण, करीब ६.३० बजे अभिषेक-पूजा, ८ बजे से ९.३० बजे तक तत्त्वार्थ सूत्र का शिक्षण। मध्याह्न ठीक २ से ३.३० तत्त्वार्थसूत्र, ३.३० से ३.४५ तक नाश्ता, ३.५० से शंका समाधान, रात्रि सात बजे से आरती, ७.३० बजे से ८.३० तक द्रव्यसंग्रह का शिक्षण, पश्चात् प्रवचन कला, प्रतिष्ठा विधि, व वास्तु कला पर विविध शिक्षण दिया जाता था। यह शिविर बेजोड़ रहा। आज भी इस शिविर का व्यक्ति स्मरण करता है।

चातुर्मास में प्रतिदिन प्रात: सात से आठ बजे तक नागौरी मंदिर में 'सागार धर्मामृत' का शिक्षण संघस्थ त्यागियों के द्वारा, पश्चात् ८.३० तक विमल-भरत-स्याद्वाद हॉल में भक्तामर स्तोत्र का शिक्षण और ८.३० से आचार्यश्री के प्रवचन होते थे। रविवार को आचार्यश्री व माताजी के विभिन्न विषयों पर विशेष प्रवचन होते थे। प्रात: मध्याह्न व रात्रि तीनों काल का स्वाध्याय, शिक्षण बराबर चलता रहा। राजस्थान में ऐसा ऐतिहासिक भव्य चातुर्मास आचार्य संघ का कई वर्षों बाद और कुचामन में तो शायद आचार्य परमेष्ठी का प्रथम ही चातुर्मास था। अनेक भव्यात्माओं ने अपना मार्ग प्रशस्त किया। प्रतिदिन गाँव-गाँव, नगर-नगर से सैकड़ों, हजारों की संख्या में श्रावक दर्शनार्थ पधारते रहे। ५ माह तक मेला ही लगा था।

ज्ञानार्जन के साथ-साथ विधानों की धूम मची हुई थी। शान्ति विधान, भक्तामर विधान, पंच-परमेष्ठी विधान आदि के साथ ही ३-४ बार मृत्युञ्जय

विधान भी भक्तों ने आचार्यश्री के सान्निध्य में करवाये। धर्मनगरी बनी हुई थी कुचामन नगरी। लोगों ने कहा–कुचामन पूर्वजों की आन से पहले भी प्रसिद्ध ही रहा है। ऐसा लगता था कि गुरुभक्तों का हृदय कुचामन वालों के पुण्य से ईर्ष्या कर रहा है कि ऐसा दिन हमारे यहाँ क्यों नहीं आया।"।

बालकों में ज्ञानार्जन की होड़ देखी जा रही थी। चार भाग, छहढाला, द्रव्यसंग्रह आदि ग्रंथों के शिक्षण के साथ रात्रि में प्रथमानुयोग ग्रन्थों के स्वाध्याय में लगभग ८०-९० बालक-बालिकाएँ प्रतिदिन सम्मिलित होते थे। बालक-बालिकाओं का उत्साह, संगठन देखकर आनन्द होता था। चौबीस ठाणा जैसे ग्रन्थ को बच्चों ने कंठस्थ किया।

कार्तिक अष्टाह्निका में माणकचन्दजी गंगवाल के पुत्र श्री विनोदकुमारजी अशोककुमार जी, कमलकुमार जी गंगवाल की ओर से संस्कृत का वृहद् सिद्धचक्र विधान हुआ। ऐसी उदारता से पूजा विधान किया गया कि पर्वत के पर्वत खड़े हो गए। हजारों की संख्या में फल-फूल नैवेद्य प्रतिदिन चढता था। पूर्णिमा को तो पाँच हजार फल, ५ हजार लड्डू, इतना ही अर्घ आदि। निर्लोभ वृत्ति से की गई आराधना का दृश्य भरत चक्रवर्ती द्वारा कैलाश पर्वत पर की गई पूजा की स्मृति दिला रहा था व चारों ओर से दर्शनार्थीगण पूजा के दृश्य को देखने के लिए उमड़ पड़े थे। धन्य है पूजक की उदारता।

कुचामन से विहार कर आचार्यश्री संघ सहित जयपुर पहुँचे। जयपुर नगरी में आचार्यश्री की भावभीनी अगवानी की गई। हजारों भक्तों ने आचार्यश्री से आशीर्वाद पाने की होड़ में पंक्तिबद्ध हो, करबद्ध अवनत हो, गुरुदेव की अभिवन्दना की। भगवान पार्श्वनाथ व चन्द्रप्रभ का जन्म व तप कल्याणक यहाँ जोर शोर से मनाया गया। हाथी, घोड़े व बाजों की धुन में ऐसा सुन्दर दृश्य था, मानों जन्म कल्याणक महोत्सव का साक्षात् ही उपस्थित हो गया है। यहाँ आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में लगभग ३०-३५ त्यागीवृन्द की उपस्थिति में **आचार्य गुरुदेव श्री विमलसागर जी महाराज** का **समाधि दिवस** पौष कृष्णा द्वादशी को मनाया गया। जिसमें साधु-सन्तों के साथ-साथ हजारों गुरुभक्तों ने आचार्यश्री को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

यहाँ दो-तीन कॉलोनियों में वेदी प्रतिष्ठा, विधान आदि शुभ अनुष्ठानों का आयोजन आचार्यश्री के सान्निध्य में निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। धर्मप्रभावना करते हुए आचार्यश्री विहार करते हुए धर्मनिष्ठ गुरुभक्त श्री प्रेमचन्द जी नगर वाले किशनगढ़ प्रवासी के ग्राम 'नगर' पहुँचे।

इस छोटे से गाँव में भी हजारों व्यक्ति आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधारे यहाँ आचार्यश्री के सान्निध्य में शान्ति विधान उत्साह से पूर्ण हुआ। 'नगर' में जैन-जैनेतर समाज सभी में अच्छी धर्म-प्रभावना हुई।

गाँव 'नगर' से विहार करते हुए आचार्यश्री माघसुदी में केकड़ी पहुँचे। केकड़ी में आचार्यश्री का १०वाँ आचार्य पदारोहण दिवस आनन्द के साथ मनाया गया। यहाँ आचार्यश्री का स्वास्थ्य कुछ नरम-गरम रहा।

आगे अनेक नगर-ग्रामों में धर्म की प्रभावना करते हुए आचार्यश्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के लिए **लोहारिया** पहुँचे। लोहारिया में आचार्यश्री के मंगल आशीर्वाद से भगवान बाहुबली की २१ फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान की गई है, साथ ही २४ तीर्थंकरों की खड्गासन मूर्तियाँ भी, एक पंच-परमेष्ठी व एक पंचबालयति मंदिर की स्थापना भी हुई। इनका पंचकल्याणक प.पू. आचार्यश्री के निर्देशन व सान्निध्य में प्रतिष्ठाचार्य श्री धर्मचन्दजी शास्त्री के कर-कमलों द्वारा श्री सकल दिगम्बर जैन समाज, लोहारिया ने करवाया। प्रतिष्ठा सन् २००५ में वैशाख सुदी तृतीया से दसमी तक हुई। सर्वकार्य निर्विघ्न पूर्ण हुए। पूरे देश से श्रेष्ठियों ने आकर इस प्रतिष्ठा को सफल बनाने में महायोग दिया। दीक्षा कल्याणक के समय मुनि पंचकल्याणकसागर जी, मुनि तपसागरजी, मुनि गिरनारसागरजी व आर्यिका गिरनारमती की, ऐसे ४ दीक्षाएँ निर्विघ्न पूर्ण हुईं। पंचकल्याणक महोत्सव निर्विघ्न पूर्ण हुआ। भ. बाहुबली मूर्ति की स्थापना करने वाले धर्मनिष्ठ गुरुभक्त सतीश जैसवाल इस महोत्सव के सौधर्म इन्द्र थे। प्रतिष्ठा के समय आचार्यश्री ने डोली में बैठने का आजीवन त्याग कर दिया था।

लोहारिया महोत्सव के बाद आचार्यश्री का विहार आस-पास छोटे-छोटे गाँवों में हुआ। मुनि श्री उदयकीर्तिजी की समाधि गनोड़ा में हुई। गनोड़ा में आपके श्रीसान्निध्य में सहस्रनाम महामण्डल विधान कराया गया। गनोड़ा से

आचार्यश्री अन्देश्वर पार्श्वनाथ के दर्शन करते हुए बाँसवाड़ा की ओर विहार कर गए। सन् २००५ का चातुर्मास आचार्यश्री की शिक्षा नगरी बाँसवाड़ा में हुआ। बाँसवाड़ा में आचार्यश्री के चातुर्मास में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। आचार्यश्री ने नवयुवकों को शिक्षण दिया। युवाओं में धर्म के प्रति जागृति आई। श्री गुरुदेव से प्रभावित हो उत्सवलालजी के सुपुत्र रिपेश (सन्मति) कुमार ने अखंड ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। बाँसवाड़ा चातुर्मास के बाद आचार्यश्री का विहार उदयपुर की ओर हुआ।

उदयपुर की जनता में आचार्यश्री के पधारने से नई चेतना, नई जागृति आई थी। प.पू. आचार्यश्री का ५८ वाँ जन्म-जयन्ती महोत्सव यहाँ बहुत उत्साह से मनाने हेतु एक नई उमंग थी पर विधि का विधान! रामनवमी के दिन आचार्यश्री को तीव्र असाता वेदनीय कर्म ने आ घेरा। चारों ओर उदासी का वातावरण बना हुआ था। आचार्यश्री एक ही बात कहते रहे...मेरे अपने पापकर्म का उदय है। किसी का कोई दोष नहीं। उदासीन वातावरण में–आचार्यश्री का पाद-प्रक्षालन, पूजा, आरती करके भक्तों ने आचार्यश्री के दीर्घायु होने की, नीरोगता की भावना करते हुए अपनी विनयाञ्जलि अर्पित की। चारों ओर एक ही आवाज थी, आचार्य संघ का आगामी चातुर्मास उदयपुर में ही होगा। आचार्यश्री का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधार की ओर था। सब गुरुभक्तों की भावना थी कि चातुर्मास उदयपुर में ही हो। प्रतिदिन श्रीफल चढ़ाकर भक्तगण अपनी भावना समर्पित करते रहे। आश्वासन मिलते रहे। एक दिवस आचार्यश्री ने उदयपुर के सज्जनों से कहा....मेरे संघ में वृद्ध-वृद्ध साधु हैं। यहाँ समाधिस्थल कहाँ है? लोगों ने कहा–महाराजजी! यहाँ समाधिस्थल के लिए कोई स्थान नहीं है। एक ही स्थान पर साधु के संस्कार होते हैं। आचार्यश्री ने कहा.....बस, अब तो चातुर्मास यहाँ होना कठिन है। मुझे तो संघ के वृद्ध साधुओं को देखकर चलना है। सच तो यही कहना होगा कि वृद्ध साधुओं का तो बहाना मात्र ही था, आचार्यश्री का लक्ष्य कहाँ था, पाठक आगे स्वयं ही निर्णय करें।

उदयपुर से विहार करते हुए आचार्यश्री कानपुर गाँव (राज.) होते हुए अणिन्दा अतिशय क्षेत्र आ पहुँचे। अणिन्दा में ज्येष्ठ सुदी पंचमी को श्रुतपंचमी

पर्व के पावन दिन श्रुतस्कन्ध पूजा, षट्खंडागम पूजा (धवल, जयधवल, महाबन्ध) संघपतिजी श्री शिखरचन्दजी पहाड़िया ने की। पूजा सानन्द सम्पन्न हुई। आचार्यश्री से संघपतिजी ने पूछा–आचार्यश्री चातुर्मास ? आचार्यश्री ने मौन पूर्वक **'अणिन्दा'** अतिशय क्षेत्र की स्वीकृति दी।

यहाँ आते ही आचार्यश्री का स्वास्थ्य पुन: बिगड़ गया रहा पर वे अपनेआप में दृढ़ निश्चय कर चुके थे। जब लोगों ने बहुत प्रार्थना की-"गुरुदेव ! आपका शरीर किसी भी समय असाता से घिर जाता है। यहाँ जंगल में कोई साधन नहीं है, आप बाँसवाडा, अथवा पास ही किसी शहर में चलिए।" उत्तर में आचार्यश्री ने कहा था–"मेरे गुरु ने जंगलों में चातुर्मास किए हैं, मेरे गुरुदेव ने अधिकांश चातुर्मास शिखरजी, सोनागिरिजी जैसे क्षेत्रों पर किए हैं। मैं अब शहरों में न जाकर अतिशय क्षेत्र अणिन्दा मे ही चातुर्मास करूंगा।" अब किसकी ताकत थी जो आगे बोल पाता।

वैसे भी आचार्यश्री अपने प्रवचनों में कहा करते थे. .."वन में रहोगे तो बन जाओगे, शहरो मे रहोगे तो सड जाओगे"। उनके सूत्र थे–"जोश में नहीं, होश में जीओ।" "ढोंग से नहीं, ढंग से जीओ"।

अनेक उपसर्गो, परीषहों की लम्बी कतार के बावजूद भी आचार्यश्री अपने आप में सदैव ही सजग थे। वैसे भी मैंने तो २५ वर्ष के सत्संग में पाया कि उन्हें मलेरिया तो प्रतिवर्ष ही होता था। साथ ही पथरी, दाह रोग, गठिया, बी.पी., ह्रदय रोग, नेत्रों में तकलीफ आदि ऐसे-ऐसे रोगों ने घेरा जो हमने पहले कभी देखे भी नहीं थे। तथापि वे हिम्मत नहीं हारते थे, एक ही बात कहते थे–"किया है वह भोगना ही पडेगा।" दीक्षा लेने के बाद अन्तरायों का तांता लगभग १५ वर्ष तक भयानक बना रहा। ऐसे समय में जब ३, ४, ५, ६ दिनों तक अन्तराय होते रहते तो आचार्यश्री कहते थे– "मैंने दिया नहीं तो लेने का क्या अधिकार है। मैंने मुनियों को कभी आहार दिया नहीं तो मिलेगा कैसे ?" उनका चिन्तन प्रत्येक परिस्थिति में बना ही रहता था। उनके जाप की अंगुलियाँ सदैव चलती ही रहती थीं। वे कभी अपने समय को व्यर्थ खोते नहीं थे। एक-एक मिनिट की कीमत करते हुए उनकी दिनचर्या शुभोपयोगनिष्ठ थी।

अणिन्दा में आचार्यश्री की चातुर्मास स्थापना २४ त्यागियों के साथ हुई। ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी से उपसर्गों का दौर चल रहा था। सावन माह में आचार्यश्री के दो बार ६, ६ उपवास और एक बार आठ उपवास लगातार हो गए। आहार को जाते थे पर भोजन पर रुचि ही नहीं हो पाती थी। मात्र हाथ धोकर आ जाते थे। भाद्रपद मास में कभी दूध लेते तो अनाज नहीं, अनाज लिया तो दूध नहीं। अनिच्छा से थोड़ा बहुत आहार लेकर तुष्टि करते थे। आश्विन माह में आहार की मात्रा बहुत कम हो गई थी। तथापि वे अपने षट्कार्यों में सदा सावधान रहे। रात्रि २ बजे उठकर जाप, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, सामायिक आदि क्रियाओं में उनको कठिन परिस्थितियों में भी प्रमाद नहीं आया। स्वयं के स्वाध्याय-अध्ययन में वे सदा सजग रहे।

आचार्यश्री की गृहस्थावस्था में एक मित्र थे उत्सवलाल जी। वे बचपन से वैरागी थे। आचार्यश्री के साथ ही दीक्षा लेना चाहते थे। दोनों साथ-साथ घर से निकले थे पर पापोदय से उत्सवलालजी को घर वाले जबरन ले आए। शादी रचाई, संसार बढ गया। इन दिनों छह माह से उन्हें गले का कैंसर हो गया। वे समाधिमरण करना चाहते थे। अत: आचार्यश्री के पास पहुँचे। आचार्यश्री ने कहा–''अभी कुछ समय रुको, मैं कुछ ठीक हो जाऊँ तब तुम्हारी दीक्षा कराकर अच्छे से समाधि कराऊंगा।'' उत्सवजी बोले, गुरुदेव! अब मैं घर नहीं जाना चाहता हूँ। घर का मैंने त्याग कर दिया है। आचार्यश्री ने कहा – आप आर्यिका स्याद्वादमतीजी के दर्शन करने जाओ। फिर अपन जैसा होगा, करेंगे।

उत्सवजी मेरे पास आए तो कहने लगे–''आचार्यश्री का स्वास्थ्य ठीक नहीं अत: समाधि आप कराइए। वहाँ और कोई मुझे नजर नहीं आ रहे हैं।'' मैंने कहा–''मैं दीक्षा तो दे नहीं सकती अत: गुरुजी से दीक्षा लेकर आ जाओ, आगे का बाद में सोचेंगे।'' उत्सवजी ने कहा, ''मुझे क्षुल्लक दीक्षा का मुहूर्त दे दीजिए।'' मैंने मुहूर्त निकाल दिया।

उत्सवजी पत्नी और पुत्र सहित अणिन्दा पहुँच गए। आचार्यश्री को सब समाचार कहे। तीन दिन वहाँ रुके। आचार्यश्री ने कोई जवाब नहीं दिया। कार्तिक कृष्णा द्वादशी रात्रि २ बजे आचार्यश्री ने उत्सवजी को बुलाया और

कहा–माताजी ने कौन सा मुहूर्त दिया है? उन्होंने बता दिया। स्वयं ने पंचांग देखा और इशारे में कहा, मुहूर्त बहुत अच्छा है। इसमें दीक्षा आपकी निश्चित होगी। उत्सवजी ने कहा–गुरुदेव! दीक्षा आप से ही लूँगा। मुझे दीक्षा देकर कृतार्थ करिये। आचार्यश्री ने कहा, सुबह बात करेंगे।

प्रात:काल आचार्यश्री ने तीनों को बुलाकर कहा–''तुम लोग नीमाज जाओ। माताजी क्षुल्लक दीक्षा देकर अच्छी तरह समाधि करा देंगे।'' उत्सवजी ने कहा–''गुरुदेव! आप दीक्षा दीजिए।'' आचार्यश्री ने कहा–''यहाँ आपकी व्यवस्था नहीं बैठ पाएगी। यहाँ कोई समाधि कराने वाला समझदार साधु नहीं है।'' आप लोग स्याद्वादमती माताजी के पास जाओ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है।'' उत्सवजी ने कहा–''माताजी ने दीक्षा देने के लिए इन्कार कर दिया है।'' आचार्यश्री बोले–''माताजी क्षुल्लक दीक्षा तो दे ही सकती हैं। खैर, कोई बात नहीं, यदि वे दीक्षा नहीं देवें तो नीमाज में रयणसागरजी से दीक्षा लेकर माताजी के पास रहना। उन्हीं के पास समाधि करना। वे समझदार हैं सब काम अच्छे से करा देंगी।'' इसी बीच सघस्थ आर्यिका भरतेश्वरमती वहाँ जा पहुँची। उन्होंने आचार्यश्री से बहुत प्रार्थना की, ''गुरुदेव! इन्हें मत भेजो। हम पर भी विश्वास करिए। हम इन्हें सम्हालेंगे।''

आचार्यश्री ने उत्सवजी को स्पष्ट शब्दों में कहा–''मैं कह रहा हूँ, आप शीघ्र नीमाज स्याद्वादमतीजी के पास जाओ। यहाँ कोई सम्हालने वाला नहीं है।'' नेत्रों में अश्रु समेटे उत्सवजी ने गुरुदेव का आशीर्वाद लिया और तीनों नीमाज आ गए।

उधर धन तेरस को आचार्यश्री ने संघ के व्रतियों को आदेश दिया कि अब मेरे पैर कोई नहीं छूएगा। मैं ध्यान में बैठता हूँ तब कोई किसी प्रकार का शब्द नहीं करेगा। मुझे तीन दिन जाप करने हैं। त्रयोदशी को मंगलगोचर प्रत्याख्यान के समय ही सब साधुओं को आज्ञा दे दी...चतुर्दशी व अमावस्या को मध्याह्न की सामायिक सबको एक साथ हमारे समक्ष बैठकर करना है। सब अपनी-अपनी 'विमल भक्ति' दोनों दिन साथ में लावें।

चतुर्दशी को सामूहिक सामायिक के बाद, पाक्षिक प्रतिक्रमण हुआ।

प्रतिक्रमण के बाद ४ बजे ध्यान की कक्षा ली गई। ध्यान की कक्षा में आचार्यश्री ने शिष्यों से कहा.....अभिजित नक्षत्र में समाधि बहुत अच्छी होती है। आओ, बाबा लोगों, आपको किसी को करनी हो तो मेरे पास आओ। दो दिन तक आचार्यश्री सामान्य पाटे पर बैठे। आचार्य पद के सिंहासन व पाटे पर बहुत प्रार्थना करने पर भी नहीं बैठे। मन से आचार्यश्री एकदम प्रसन्न रहे। आचार्यश्री ने त्रयोदशी, चतुर्दशी का समय ध्यान में व्यतीत किया। रात-दिन ध्यान में रहते। जाप करते रहे। अमावस्या को रात्रि बारह बजे से ध्यान करने बैठ गए। ४ बजे के लगभग चातुर्मास निष्ठापना क्रिया की। प्रात: ध्यान करते समय किसी ब्रह्मचारी ने आचार्यश्री के चरण स्पर्श कर लिये, आचार्यश्री ने तत्काल थोडा सा 'हुँकारा' कर विरोध प्रकट किया। पश्चात् मंदिरजी में अणिन्दा के मूल नायक से लेकर ऊपर तक सभी जगह दर्शन किये, अभिषेक देखे, निर्वाण लाडू देखा। दर्शन करके लगभग नौ बजे आकर आधा घंटे ध्यान में बैठ गए। निर्विकल्प हो साधना मे तत्पर रहे। साढे नौ बजे आचार्यश्री आहारचर्या को गए। अल्पाहार लेकर आ गए। प्रतिदिन आहार के बाद थोडा सा विश्राम करते थे। आज तो विश्राम का नाम ही नहीं। आहार से आकर ध्यान में लीन हो गए। आचार्यश्री ने आधा घंटे ध्यान किया। मंदिर के बाहर द्वार पर ही बैठे। ११ बजकर २० मिनट पर साधुगण गुरुआज्ञा के अनुसार गुरुचरणों में उपस्थित हो गए। कुछ साधु 'विमलभक्ति पुस्तक' नहीं ले गए थे। उन्हें आचार्यश्री ने कहा–''देखो आप साधुओं को अपनी क्रियाओं को निर्दोष पालना चाहिए। अपनी चर्या में प्रमाद नहीं करना चाहिए। आप लोग अपनी पुस्तकें लेकर आइये।'' पश्चात् आचार्यश्री ने सभी साधुओं को प्रत्याख्यान विधि कराई, सिद्ध भक्ति और योग भक्ति पश्चात् ईर्यापथ भक्ति पूर्ण हुई। आचार्यश्री ने सुबह जिस ब्रह्मचारी के द्वारा चरण छू लेने पर विरोध प्रकट किया था उससे क्षमा मांगी, कहा ''भैया! सुबह मैंने तुम पर क्रोध किया था, मुझे क्षमा करो।'' पश्चात् साधुओं से कहा–''आप लोग उदास रहते हो, अब सब उदासी छोड़ो, प्रेम के साथ रहा करो। अपने लिये हुए व्रतों का दृढता से पालन करो और यह भी कहा–आप लोग जल्दी करिए, मेरे पास समय नहीं है। फिर कहा–अब कल तक सबको आहार का प्रत्याख्यान है। पुन: कहा-सबने त्याग कर दिया। उत्तर मिला-जी, हाँ। पश्चात्

गोचरी वृत्ति का प्रतिक्रमण हुआ। उसके पश्चात् आचार्य भक्ति का क्रम था सो आचार्य भक्ति के पूर्व ही आचार्यश्री ने कहा—आज आचार्य भक्ति नहीं होगी। अब समय हो गया है, आप लोग सब सामायिक के लिए कायोत्सर्ग करिए।

सभी ने कायोत्सर्ग प्रारंभ कर दिया। आचार्यश्री ने कायोत्सर्ग करते-करते गर्दन टेक दी। जगमगाता सूर्य देखते-देखते अस्त हो गया।

अद्भुत समाधि। अनोखी समाधि। पूर्ण जागृति के साथ सबको सत्य का पाठ पढाते-पढ़ाते चले गए। वे सन्त जो बालपन से वैरागी थे। गुरुचरणों के भ्रमर बन २७ वर्षों तक गुरु के निकट रहे। वर्षों गुरु के शिष्यों का पालन किया। गुरु के अधूरे कामों को पूरा कराया। वे सन्त, महासन्त बन गए जो सामायिक में बैठे सबको सामायिक में बैठाकर स्वात्मा में लीन हो गए। यही जीवनभर की तपस्या की सच्ची कमाई है। जिसे अन्त में हस्तगत कर महान् हो गए। ब्रह्मचारी जी से भी क्षमा मांगने वाले उन महापुरुष के अन्तिम समय की विशुद्धता का वर्णन लेखनी से बाहर है। सत्यता स्वीकार कर भ्रम दूर करें। मिथ्यावादियों के अवर्णवाद से बचते रहिए।

अन्तिम श्वास तक षट्कर्मों में निरत, प्रत्याख्यान करने में अत्यन्त सावधान, सामायिक करते-करते प्राणों का विसर्जन करने वाले भावलिंगी सन्त के परम-पावन चरणों में शत-शत नमोस्तु।

यहाँ पिछले दिनों सुजानगढ में उदयपुर से गुरुभक्त अशोक जी गोधा पधारे थे। उन्होंने बताया कि "धनतेरस के दिन वे गुरुदेव के पास पहुँचे थे और उन्होंने आचार्यश्री से कहा कि गुरुदेव! चातुर्मास पूरा निकल गया। संघ में सभी वृद्ध साधुओं का स्वास्थ्य ठीक नजर आ रहा है, आप तो साधुओं की समाधि के लिए व्यर्थ ही विहार करके इधर आ गए। हमारा उदयपुर तो सूना ही रह गया।" आचार्यश्री ने कहा—"गोधाजी! अभी तो चातुर्मास के दो दिन शेष हैं, पता नहीं दो दिन में क्या हो? हो सकता है मेरी ही समाधि हो जाय"। अशोक जी ने कहा "मैं नहीं समझ पाया कि ये वाक्य सत्य हो जायेंगे, वैसे ही विनोद समझ चुप रह गया। आचार्यश्री ने यह भी कहा– तुम एक बार हमारे संघ की बड़ी माताजी स्याद्वादमती जी के दर्शन जरूर करना, आदि मैं अच्छी तरह नि:शंक हो घर पहुँचा। अमावस्या को आचार्यश्री की समाधि का

समाचार सुनते ही हतप्रभ रह गया, यह क्या हुआ?"

उन्होंने अपनी मृत्यु को पहले ही जान लिया था, तभी मन से एकदम स्वस्थ हो उसका आह्वान भाद्रमास से ही प्रारंभ कर दिया था। आचार्यश्री कितने ज्ञानी, कितने ध्यानी, कितने चिंतक थे, यह लिखना तो लेखनी के बाहर की बात है। हाँ! इतना तो अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि आचार्यश्री भरतसागरजी जैसा शिष्य इस युग में मिलना अत्यन्त कठिन है। उनकी गुरुभक्ति इस युग में अलभ्य ही है। २७ वर्षों तक गुरुचरणों में रहकर जिसने कभी किसी पद की इच्छा नहीं की। गुरु के कदम से कभी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया। गुरु के साथ विहार करते हुए कभी किसी से वार्तालाप नहीं किया, गुरु के साथ सदा मौन से विहार किया। गुरु के शिष्यों के पालने की इच्छा की, अपने शिष्य बनाने की तो कभी कल्पना भी नहीं की। महानुभावो! संसार में अपनी सन्तान को तो प्रत्येक प्राणी पालता है पर पिता की सन्तान को पालने वाला कोई बिरला होता है। ठीक यही बात यहाँ थी.....आपने अपने शिष्य बनाने में दौड़ नहीं लगाई, गुरु के २५-२५ शिष्यों की पालना की।

विचारणीय विषय था कि जिस समय आप आचार्यपद पर आसीन हुए सब ही आपके गुरुभाई थे, गुरु बहनें थीं। स्वशिष्य एक भी नहीं था। अनुशासन किस पर किया जाए। कैसी जटिल समस्या थी। पुत्र पर अनुशासन तो पिता करता ही है पर भाई पर नहीं कर सकता है। आचार्यश्री के सामने कई परिस्थितियाँ थीं, फिर भी गुरु भाइयों पर भी शासन करते हुए सबके चारित्र की रक्षा की। सबका निर्वाह किया। सच, सौ पलने वाले चले जाएँ तो चिन्ता नहीं किन्तु सौ का पालक कभी नहीं जाना चाहिए।

समर्पण में गुरु का दीपक जला
चिराग बुझ गया............
दीपावली के दिन
अन्धेरा छा गया
श्रमणाकाश का जगमगाता सूर्य
अस्त हो गया, अनन्त तक.........

आचार्य की भक्ति के प्रसाद से मंत्र-विद्याएँ स्वत: सिद्ध हो जाती हैं। आचार्य की सेवा-वैय्यावृत्ति के प्रसाद से मन्त्र विद्याएँ सिद्ध हो जाती हैं। तदनुसार आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज सत्ताईस वर्षों तक गुरुचरणों के भ्रमर बनकर रहे। उनमें वचनसिद्धि, मन्त्रसिद्धि सहज ही पाई जाती थीं। उनके पास भी दुखी, रोगी, तन दुखी-मन दुखी-धनदुखी आते थे। रोते-रोते आते थे और हँसते-हँसते जाते थे। आचार्यश्री उन्हें कहते.....भक्तामर स्तोत्र का पाठ करो, गुरुवार को आदिनाथ प्रभु की पूजा-अभिषेक करो और रात्रिभोजन त्याग करो सब संकट दूर होंगे। आचार्यदेव विमलसागरजी महाराज सबको णमोकार मन्त्र जपने को कहते थे और भरतसागरजी महाराज भक्तों को, दुखीजनों को सदा भक्तामर स्तोत्र का पाठ करने की प्रेरणा दिया करते थे।

आचार्यश्री के आशीर्वाद से अनेक भव्यात्माओं को जीवनदान, अभयदान मिला है। उनके उपकार को भूला नहीं जा सकता। इन्दौर शहर में आचार्यश्री सन् २००३ में गए थे। एक चैत्यालय में जो फतेचन्द मूलचन्द पाटनी परिवार का है, आचार्यश्री दर्शनार्थ पहुँचे। माणकचन्द पाटनी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की, "आचार्यश्री कुआ सूख जाने से अभिषेक के जल की व्यवस्था नहीं हो पा रही है, कोई उपाय बताइये।" आचार्यश्री ने एक मन्त्र दिया और कहा कि कुए में मन्त्र पढ़ते हुए २१ दिन तक जल डालना तथा बीच में एक पत्थर आड़ा आया हुआ है, खुदाई करवाकर उसे निकलवा देना, बस पानी की कभी कमी ना होगी। आज उस मन्दिर के कुए में भरपूर पानी है। ऐसा था आचार्यश्री भरतसागरजी का आशीर्वाद।

एक और घटना इन्दौर की ही है। दिनेशकुमार हेमन्तकुमार पाटनी के घर में बोरिंग सूख गया था। आचार्यश्री ने उन्हें सरसों मंत्रित कर दी और कहा इसे णमोकार मंत्र पढ़कर डालना तथा एक सफेद कपड़े से बोरिंग को ढक देना, २४ घंटे बाद कपड़ा हटाना। चौबीस घंटे के बाद क्या हुआ? बोरिंग खोलते ही पानी-ही-पानी हो गया, धन्य है ऐसे उपकारी सन्तों की महिमा को।

एक व्यक्ति मुझसे पूछने लगे–भरतसागरजी कैसी वैय्यावृत्ति करते थे? आचार्यश्री के पैर दबाते थे या शास्त्र सुनाते थे? आखिर उनकी वैय्यावृत्ति की विशेषता क्या थी?

मैंने कहा– भरतसागरजी महाराज की वैय्यावृत्ति अनोखी थी। उन्होंने आचार्यश्री के पैर दबाएँ हों या तेल मालिश की हो ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। हाँ, उनकी सबसे बडी वैय्यावृत्ति थी "गुरु के अनुकूल चलना", "गुरु के प्रति समर्पण" गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना। आचार्यश्री कहा करते थे–मच्छर गुनगुन करता हुआ मीठे-मीठे गीत सुनाता है और अन्त में काट लेता है, ऐसी वैय्यावृत्ति हानिकारक होती है। कभी-कभी शिष्यगण गुरु की सेवा, पाद मर्दन, मालिश आदि करते देखे तो जाते हैं पर गुरु की आज्ञा नहीं मानते हैं, गुरु के अनुकूल प्रवृत्ति नहीं करते हैं, ऐसे शिष्यों की वैय्यावृत्ति को निरर्थक ही जानो। आचार्यश्री इस युग में इकलौते ऐसे सन्त रहे जिन्होंने कभी अपने ख्याति-पूजा-लाभ की चाह न करते हुए मात्र गुरु की ख्याति-पूजा में ही अपना कल्याण समझा।

गुरुदेव के समीप रहते हुए उन्होंने कभी मन्त्रआदि का स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया। मात्र उपाध्याय पद का आगम परिप्रेक्ष्य में इतना सुन्दर निर्वाह किया कि स्वयं का शिष्य न बनाकर गुरु के शिष्यों को ही अध्ययन कराया। आचार्यश्री गुरुदेव विमलसागरजी महाराज दीक्षा देते रहे, उपाध्याय गुरु के शिष्यों को शिक्षा मात्र देते रहे। अपने उपाध्याय व मुनिपद के काल में अपना न कोई शिष्य बनाया ना कोई भक्त। जो कुछ है उसमें गुरु ही प्रमाण है।

आचार्यश्री की अनेक विशेषताओं के साथ एक बड़ी विशेषता थी वह यह कि निरक्षर साधु को भी अक्षर ज्ञान देना। जो बिना पढा-लिखा या कम पढा-लिखा साधु है उनसे भी स्वाध्याय कराते, उनसे भी प्रश्न पूछा करते। टूटी-फूटी लाइन पढते-पढते वह सुपाठक बन जाता था। टूटा-फूटा उत्तर देते-देते वह एक योग्य साधक बन जाता था। लिखने का तात्पर्य यह है कि पढे-लिखे को पढाना तो बहुत सरल है किन्तु अनपढ़ों को, निरक्षरों को अक्षर ज्ञान कराना कठिन है।

जब णमोकार मन्त्र का जाप करने वाले आचार्यश्री से कहते, "गुरुदेव! जाप करते-करते मन भाग जाता है" तब आचार्यश्री जाप की विधि बताया करते थे–

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

इस उपर्युक्त यथातथ्यानुपूर्वी विधि से जाप करने की प्रेरणा आचार्यश्री प्राय: सभी को दिया करते थे। वे कहा करते थे कि जाप कितना किया, इसकी कीमत नहीं, जाप में एकाग्रता कितनी आई, कीमत इस बात की है। वाचन से पाचन महान् है। लगभग सैकड़ों, हजारों व्यक्तियों को आचार्यश्री ने उपर्युक्त मन्त्र देकर शुभोपयोग से कर्मक्षय की विधि का निरूपण कर, पापों से बचाया है।

मुझ पर तो उनके अनेक उपकार हैं। मैंने जब दीक्षा ली थी तो संघ के वातावरण से एकदम ही अनभिज्ञ थी। ऐसे विकट समय में पग-पग पर मार्गदर्शन आप से ही प्राप्त हुआ। आचार्यश्री मेरे जीवन के प्रतिपल प्रेरणास्रोत रहे। कभी भी मुझे हताश नहीं होने दिया। दोनों गुरुओं की असीम कृपा से आज भी मंगल है, पहले भी था।

सन् १९८३ में आचार्य संघ का चातुर्मास औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में हुआ। यहाँ धर्म की पाठशाला चल रही थी। शिक्षिका के पास कोई पुस्तक नहीं। बच्चों को मुखाग्र ही २४ भगवान के व पाप, कषाय आदि के नाम सिखा रही थी। मैंने परिस्थितियाँ समझकर बालकों के लिए १०० प्रश्न बनाकर भरतसागरजी महाराज को दिखाए। वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरुदेव विमलसागरजी को बता दिए। दोनों ने एक ही बात की कि जल्दी प्रकाशन कराकर बच्चों के लिए पुस्तकों की व्यवस्था की जावे। आचार्यश्री के आशीर्वाद से पुस्तक का प्रकाशन व वितरण बच्चों में हो गया। भरतसागरजी महाराज ने मुझ से कहा—यह तो जैन धर्म का

पहला भाग हुआ, अब आप चार भाग लिखिए। मैंने आचार्य श्री भरतसागरजी (उपाध्याय पद की घटना है) से कहा– गुरुदेव! आपकी आज्ञा व आशीर्वाद से मैं लेखन तो कर दूंगी पर आगे प्रकाशनार्थ पैसे मांगने का समय आएगा तो मैं तो किसी से एक पैसा भी नहीं मांगूंगी। इसलिए न तो लिखना है न पैसों की याचना करना है। आचार्यश्री भरतसागरजी ने उस समय कहा था–"आप सिर्फ लेखन करिए, पैसे मांगने का भार अपने दिमाग में नहीं रखो। प्रकाशन का भार मैं लेता हूँ।" इतना सुनते ही हृदय आनन्दाश्रुओं से छलछला उठा। आज तक जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं मुझे कभी किसी से प्रकाशनार्थ याचना नहीं करनी पड़ी। आचार्यश्री ने उपाध्याय पद में ही समस्त प्रकाशन का भार अपने ऊपर ले लिया था। मुझे तत्सम्बन्धी किसी चिन्ता ने आज तक कभी चिन्तित नहीं किया। आज जो कुछ भी मेरी लेखनी है उसके पीछे पूज्य आचार्य गुरुदेव का आशीर्वाद तो है ही उससे भी अधिक पूज्य आचार्यश्री भरतसागरजी का सम्बल व अमूल्य प्रेरणा ही मेरे जीवन का आधार है। मैं आचार्यश्री की चिरऋणी हूँ। उनके उदारचरित्र की महिमा लेखनी से बाहर है।

लोहारिया

कहावत है कि 'घर का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध' परन्तु आचार्यश्री भरतसागरजी ने इस कहावत को मिथ्या सिद्ध कर दिया। वे घर और बाहर समान रूप से 'सिद्ध योगी' के रूप मे समादृत हुए। तभी तो उनके माध्यम से उनकी जन्मभूमि ग्राम लोहारिया में अनेक अनुष्ठान सम्पन्न हुए।

आपके सान्निध्य में दिनाङ्क ६.६.२००३ को अनेकान्त गोम्मट गिरि अतिशय क्षेत्र में १००८ भगवान आदिनाथ जिनालय का शुभारम्भ हुआ और जिनबिम्ब स्थापित हुए।

१६.६.२००३ को भरत विद्यापीठ उच्च प्राथमिक विद्यालय भवन का शिलान्यास सम्पन्न हुआ।

दिनाङ्क १६.५.२००५ से २२.५.२००५ तक बड़ी भव्यता से आपके संघ-सान्निध्य में भगवान आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित हुआ। प्रतिष्ठाचार्य पं. धर्मचन्दजी शास्त्री थे।

भगवान बाहुबली की २५ फुट ऊँची प्रतिमाजी का प्रतिष्ठापना समारोह सम्पन्न हुआ। प्रतिष्ठा में ५ आचार्यों सहित १०० त्यागियों का विशाल संघ विराजमान था।

दिनाङ्क ३.६.२००५ को भरत विद्यापीठ उच्च प्राथमिक विद्यालय, लोहारिया नवीन भवन का लोकार्पण समारोह सम्पन्न हुआ।

दिनाङ्क ८.१२.२००५ को आदिनाथ दि. जैन मन्दिर का लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित हुआ। भगवान आदिनाथ, शान्तिनाथ और पार्श्वनाथ के बिम्ब ९/१२/२००५ को जिनालय में स्थापित हुए।

२४.१.२००६ को भगवान बाहुबली की विशाल प्रतिमा का अभिषेक निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

५.३.२००६ को लघुपंचकल्याणक आयोजित हुआ।

जिला मुख्यालय बाँसवाड़ा की हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी में ११.७.२००५ को श्री महावीर जिनालय का शिलान्यास आपके सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

बाँसवाड़ा के वासुपूज्य जिनालय में ५ से ७ दिसम्बर २००५ तक वेदी प्रतिष्ठा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

दिल्ली के निकट ६५ किलोमीटर पूर्व विलासपुर चौक पोस्ट धारूहेडा, हरियाणा में २५ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा के निर्माण का शुभारम्भ आपके श्रीसान्निध्य में सम्पन्न हुआ। यहाँ अष्टापद क्षेत्र में सभी कार्य पण्डित धर्मचन्दजी शास्त्री के मार्गदर्शन में सम्पन्न हो रहा है।

करुणाशील

आचार्यश्री के हृदय में करुणा का अजस्र स्रोत था, वात्सल्य भावना कूट-कूट कर भरी थी, उसी का परिणाम था कि दीन-दुखी प्राणी उनके पास आकर अपनी व्यथा सुना दिया करते थे। उनके हृदय में करुणा उमड़ पड़ती थी और वे दुखियों की वेदना को दूर करने में तत्पर हो जाते थे। सन् २००३ में आचार्यश्री बाँसवाड़ा पधार रहे थे। मार्ग में बौरूबाग में जैन जनता की भावनाओं को देखकर विधान करवाया। गाँव में लोग चेचक, पीलिया आदि रोगों से पीड़ित

होते ही मिथ्या देवी-देवताओं की आराधना करने लगते थे। ऐसे दुखी जीवों को, बीमारियों से पीडित जीवों को दवाइयाँ व णमोकार मंत्र का जाप आदि देकर मिथ्या देवी-देवताओं के चंगुल से निकालकर जैन शासन के प्रति विश्वास जगाया।

बाँसवाड़ा से आचार्यश्री संघ सहित चिड़ियवासा पधारे। यहाँ अनेक आदिवासियों को आपने शराब, मांस एवं अन्य नशीली वस्तुओं का त्याग करवाकर उपकार किया। यहाँ से संघ ने गनोडा की ओर विहार किया। गनोड़ा में अनेक वर्षों से निर्माणाधीन जिन मन्दिर को आपने पूर्ण करवाकर ऐतिहासिक पञ्चकल्याणक करवाया। अच्छी धर्म प्रभावना हुई। प्रतिष्ठाचार्य पं. धर्मचन्दशास्त्री थे।

लोहारिया गोम्मटगिरि का कार्य वर्षों से अधूरा था। श्रावकों को प्रतिष्ठा का कार्य पहाड़ की तरह लग रहा था। ऐसी परिस्थिति में लोहारिया पहुँचते ही आचार्यश्री ने श्रावकों से कहा–"जब तक यहाँ एक प्रतिष्ठित जिनप्रतिमा विराजमान न होगी तब तक यहाँ कार्य सुचारु रूप से नहीं हो सकेगा।" आचार्यश्री ने सर्वप्रथम आदिनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान करवाई।

अतिशय ऐसा हुआ कि आचार्यश्री की प्रेरणा और प्रोत्साहन ने श्रावकों को उत्साह व जोश से भर दिया। युद्ध स्तर पर काम चल पड़ा, महाकार्य में आने वाली बाधाएँ गुरुदेव के आशीर्वाद से सहज ही टलती गईं। गोम्मटगिरि की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में भी अनेक जिह्वाएँ अनेक आशकाओं से भरी वार्तालाप करती नजर आती थीं। गोम्मटगिरि पंचकल्याणक के संबंध में कुछ ज्योतिषियों ने पचकल्याणक में भारी विघ्न की चेतावनी दी थी लेकिन आचार्यश्री का जिनेन्द्रदेव के प्रति अटूट विश्वास था अत: आपने डंके की चोट कहा–"आप लोग नि:शक होकर पंचकल्याणक कीजिए। किसी को खरोंच भी आने वाली नहीं है। जहाँ बाहुबली भगवान खडे हैं वहाँ विघ्न क्या कर सकते हैं।" हुआ भी ऐसा ही, उम्मीद से ज्यादा लोगों की भीड़ उमड पड़ी थी; बिजली, पानी, आवास, भोजन की व्यवस्था, जुलूस, सुरक्षा की उत्तम व्यवस्था थी। सभी भक्त आचार्यश्री का जयकारा लगाते हुए अपने आप को धन्य मान रहे थे।

प्रतिष्ठा के पश्चात् आचार्यश्री से बहुत प्रार्थना की गई...गुरुदेव! अभी कुछ दिनों यहीं विराजमान रहिए, परन्तु आप न माने। भरत चक्रवर्ती की तरह मानों अपने दल-बल के साथ निकल पड़े। बागड, मेवाड़ प्रान्त में तथा डूंगरपुर जिले में...जहाँ-जहाँ जैन मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में आ गए थे ऐसे मन्दिरों का आचार्यश्री ने जीर्णोद्धार करवाया। छोटे-छोटे ग्राम-नगरों में जिस किसी भी स्थान पर जैन मंदिरों में जहाँ जो कमी थी वास्तु से उन्हें दूर करवाया। दुखी जैनियों का उद्धार किया। जहॉ जैन पाठशालाएँ नहीं थीं या बन्द थीं, उन्हें चालू करवाया। ज्ञान का प्रकाश हो, यह भावना तो आपकी प्रारंभ से ही थी। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी पर आपकी अपूर्व करुणा थी। आपने मूक पशुओं की रक्षा के लिए श्रावकों को प्रेरित किया, अनेक गोशालाएँ खुलवाई जहॉ हजारों मूक प्राणियों का आज भी संरक्षण हो रहा है।

चातुर्मास के लिए कुचामन सिटी की ओर विहार करते समय मार्ग में आचार्यश्री ने जहॉ भी अपने चरण रखे वहीं मंगल की वर्षा होने लगी। धरियावद के समीप ग्राम पारेल में जैनमंदिर जीर्णशीर्ण हो गया था। आचार्यश्री ने जैन-अजैन समाज से विचार-विमर्श किया। जैनों की संख्या यहॉ अत्यल्प है अत: अजैन समाज जैनों पर हावी रहता है। आचार्यश्री ने दूरदर्शिता से काम लिया, गाँव के ठाकुर को बुलाया, प्रधान को बुलाया और एक कमेटी का निर्माण करवाया। कमेटी में ठाकुर व प्रधान को सर्वोच्चपद दे दिया। अतिशीघ्र ही मन्दिर का जीर्णोद्धार हो गया।

भुगड़ाग्राम के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराते हुए आचार्यश्री धर्मप्रभावना करते घाटोल अहिंसा मन्दिर होते हुए "बामनपाड़ा" पधारे। यहाँ मात्र दो ही घर जैनों के है। आचार्यश्री के पधारते ही जैन अजैन भक्तों की भीड़ उमड़ी, पैर रखने को जगह नहीं थी। जंगल में मंगल हो गया। सत्य है आचार्यश्री का पुण्य कुछ विशेष ही था जिससे जंगल में भी मंगल हो जाता था, दुर्गम वनों में रास्ता बन जाता था। जैसे आगम में लिखा है–भरत चक्रवर्ती दिग्विजय को निकले तब जंगल में मंगल होता रहा, वही स्थिति आचार्यश्री के विशाल संघ के विहार को देखकर लगती थी। इनके वात्सल्य की कहानी को लिखना आसान नहीं है। इनमें वात्सल्य इतना था कि जहाँ भी संघ सहित विराजते थे उस गाँव

या शहर में कोई आचार्य, उपाध्याय, साधु आते थे तो ये स्वयं उनकी अगवानी करते थे।

आचार्यदेव से किसी श्रावक ने पूछा-गुरुदेव! आप तो आचार्य हैं। आप मुनियों की अगवानी करने क्यों जा रहे हैं?

आचार्यश्री ने उत्तर दिया था....."आचार्य, उपाध्याय पद मात्र पदवियाँ हैं, उपाधियॉ हैं। इनके छोडे बिना समाधिमरण नहीं हो सकता, उत्तम मार्ग मुनिमार्ग ही है।" मुनि श्री अनेकान्त सागर जी की यमसल्लेखना लगभग ५० त्यागियों के बीच हुई। सल्लेखना समय में सभी आगत मुनियों की आपने अगवानी की। साथ ही पंचकल्याणकप्रतिष्ठा के समय में भी छोटे-बड़े सभी साधुओं की अगवानी कर वात्सल्य की गंगा में डुबकी लगाई।

सच तो यह है कि आचार्यश्री के अमित गुणों को शब्दों में गूंथने का साहस करना अपनी अल्पज्ञता का ही परिचय देना है। भक्तिवशात् यह गूँथी गई गुरु-गुणमाला भव्य जीवों को पग-पग पर अदम्य उत्साह, जिनभक्ति, गुरुभक्ति की भावना से भरेगी, यही भावना करती हुई विराम लेती हूँ।

सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति पूर्वक त्रिकाल नमोस्तु।

प्रश्न : द्रव्य जैसा आपका, मेरा भी वैसा है सही।
फिर भी मुझको आप जैसा बना लेते क्यों नहीं?

उत्तर : तू चेतन है मेरे जैसा।
मैंने किया, कर काम तू वैसा।

वात्सल्य रत्नाकर

परम पूज्य आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के पट्ट शिष्य

मर्यादा शिष्योत्तम

आचार्य १०८ श्री भरतसागर जी महाराज

जीवन झाँकी

जन्म स्थान	–	लोहारिया-बाँसवाडा (राजस्थान)
जन्म दिवस	–	गुरुवार, ७ अप्रेल १९४९ (रामनवमी)
जन्म नाम	–	छोटेलाल
पिताश्री	–	श्री किशनलाल जी
मातुश्री	–	श्रीमती गुलाबी बाई जी
जाति	–	नरसिंगपुरा जैन
शिक्षा	–	मैट्रिक
ब्रह्मचर्य व्रत	–	१९६८ में बाँसवाड़ा में
दो प्रतिमा व्रत	–	१९६८ में भवानीमण्डी में
क्षुल्लकदीक्षा	–	अजमेर में २५ मई १९६८, ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी
नामकरण	–	क्षुल्लक १०५ श्री शांतिसागर जी
उपसर्ग	–	लुटेरों द्वारा कुए में डाले गए। ७ घण्टे तक कुए में।
मुनिदीक्षा	–	कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा ६ नवम्बर १९७२, सम्मेदशिखर जी
उपाध्याय पद	–	आसोज कृष्णा सप्तमी सन् १९७९ सोनागिरि सिद्धक्षेत्र

आचार्य पद	–	माघ शुक्ला दशमी, १० फरवरी १९९५
व्रत	–	चारित्रशुद्धि, भक्तामर, कर्मदहन, सम्मेदशिखर, सहस्रनाम, पंच परमेष्ठी व्रत
उपाधि	–	ज्ञान दिवाकर (नीरा, १९८०), प्रशान्तमूर्ति (हस्तिनापुर १९८७) मर्यादा शिष्योत्तम (शिखरजी १९९५) भुवन भास्कर (चम्पापुर, १९९७) चारित्र रत्न (बाराबंकी २००२)
निर्माण	–	• तीस चौबीसी मंदिर, शिखर जी। • मन्दारगिरि पर भगवान वासुपूज्य प्रतिमा विराजमान। • लोहारिया में गोम्मटगिरि रचना। • जिनालयों का जीर्णोद्धार, जैन पाठशालाएँ एवं गौशालाएँ।
समाधि	–	अणिन्दा अतिशय क्षेत्र, कार्तिक कृष्णा अमावस्या वि. सं. २०६३

❋❋❋

नास्ति ध्यानसमो बन्धुः,
नास्ति ध्यानसमो गुरुः।
नास्ति ध्यानसमं मित्रं,
नास्ति ध्यानसमं तपः॥

प.पू. आचार्य श्री भरतसागरजी द्वारा दीक्षित त्यागी गण

१. मुनि श्री १०८ स्वयम्भू सागरजी
२. मुनि श्री १०८ अन्तरात्मा सागरजी
३. मुनि श्री १०८ निर्विकल्प सागरजी
४. मुनि श्री १०८ स्याद्वाद सागरजी
५. मुनि श्री १०८ अकम्पन सागरजी
६. मुनि श्री १०८ ओम् सागरजी
७. मुनि श्री १०८ शरदपूर्णिमा सागरजी
८. मुनि श्री १०८ अणिंदा सागरजी
९. मुनि श्री १०८ पञ्चकल्याण सागरजी
१०. मुनि श्री १०८ तपसागरजी
११. मुनि श्री १०८ गिरनार सागरजी

विशेष– प. पू. आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी की शिष्या आर्यिका श्री १०५ स्याद्वादमतीजी को गोम्मटगिरि इन्दौर में गणिनी पद से संस्कारित किया।

१. आर्यिका श्री १०५ निर्विकल्पमतीजी
२. आर्यिका श्री १०५ विचित्रमतीजी
३ आर्यिका श्री १०५ पावापुरीमतीजी
४. आर्यिका श्री १०५ मन्दारगिरिमतीजी
५. आर्यिका श्री १०५ अन्तिममतीजी
६. आर्यिका श्री १०५ अयोध्यामतीजी
७ आर्यिका श्री १०५ सिद्धान्तमतीजी
८. आर्यिका श्री १०५ उद्धारमतीजी
९. आर्यिका श्री १०५ भरतेश्वरमतीजी
१०. आर्यिका श्री १०५ गोम्मटेश्वरमतीजी
११. आर्यिका श्री १०५ नन्दीश्वरमतीजी
१२. आर्यिका श्री १०५ अन्देश्वरमतीजी
१३. आर्यिका श्री १०५ पचमेरुमतीजी
१४. आर्यिका श्री १०५ श्रीमतीजी
१५ आर्यिका श्री १०५ आनन्दमतीजी
१६ आर्यिका श्री १०५ शरदपूर्णिमामतीजी
१७. आर्यिका श्री १०५ श्रुतपंचमीमतीजी
१८ आर्यिका श्री १०५ गिरनारमतीजी
१९ क्षुल्लिका श्री १०५ अन्तिममतीजी

ऐलक दीक्षा

१. ऐलक श्री १०५ पवित्रसागरजी

आचार्यश्री के चातुर्मास स्थल

(क्षुल्लक, मुनि, उपाध्याय पद व आचार्यपद में)

१.	सुजानगढ़	१९६८	क्षुल्लक
२.	दिल्ली (पहाडी धीरज)	१९६९	क्षुल्लक
३.	सम्मेद-शिखर	१९७०	क्षुल्लक
४.	राजगृही	१९७१	क्षुल्लक

५.	सम्मेदशिखर	१९७२	क्षुल्लक
६.	सम्मेदशिखर	१९७३	मुनि
७.	सम्मेदशिखर	१९७४	मुनि
८.	राजगृही	१९७५	मुनि
९.	सम्मेदशिखर	१९७६	मुनि
१०.	टिकैतनगर	१९७७	मुनि
११.	सोनागिरि जी	१९७८	मुनि
१२.	सोनागिरि जी	१९७९	मुनि-उपाध्याय पद
१३.	नीरा	१९८०	उपाध्याय
१४.	श्रवणबेलगोल	१९८१	उपाध्याय
१५.	बम्बई (पोदनपुर बोरीवली)	१९८२	उपाध्याय
१६.	औरंगाबाद (सोनामगल कार्यालय)	१९८३	उपाध्याय
१७	गिरनार	१९८४	उपाध्याय
१८.	लोहारिया	१९८५	उपाध्याय
१९.	फिरोजाबाद	१९८६	उपाध्याय
२०.	जयपुर	१९८७	उपाध्याय
२१.	सोनागिरि	१९८८	उपाध्याय
२२.	सोनागिरि	१९८९	उपाध्याय
२३.	सोनागिरि	१९९०	उपाध्याय
२४.	सोनागिरि	१९९१	उपाध्याय
२५.	सम्मेदशिखर	१९९२	उपाध्याय
२६.	सम्मेदशिखर	१९९३	उपाध्याय
२७.	सम्मेदशिखर	१९९४	आचार्य पद से विभूषित
२८.	सम्मेदशिखर	१९९५	आचार्यपद में
२९.	सम्मेदशिखर	१९९६	आचार्यपद में
३०.	चम्पापुरजी	१९९७	आचार्यपद में (रजतदीक्षा जयन्ती)
३१.	सम्मेद शिखर	१९९८	आचार्यपद में

३२.	सम्मेद शिखर	१९९९	आचार्यपद में
३३.	गिरिडीह	२०००	आचार्यपद में
३४.	कोडरमा	२००१	आचार्यपद में
३५.	बाराबंकी	२००२	आचार्यपद में
३६.	लोहारिया	२००३	आचार्यपद में
३७.	कुचामन	२००४	आचार्यपद में
३८.	बांसवाड़ा	२००५	आचार्यपद में
३९.	अणिंदा पार्श्वनाथ	२००६	आचार्यपद में

कृतित्व

आचार्यपद में मानस्तंभ के अभिषेक आपके श्रीसान्निध्य में

(१) गुणावा (२) चम्पापुरी (३) शिखरजी तेरहपंथी कोठी (४) ईसरी कृष्णाबाई आश्रम (५) बाराबंकी (६) लखनऊ (७) सोनागिरिजी

वेदी प्रतिष्ठा व पंचकल्याणक आचार्यपद में

१. पंचकल्याणक मध्यलोक सम्मेद-शिखरजी २. गिरिडीह वेदी प्रतिष्ठा व पच कल्याणक ३. शीतलनाथ मंदिर सम्मेदशिखर मे पंचकल्याणक ४. धनबाद में पञ्चकल्याणक ५. सरिया पंचकल्याणक ६. गोम्मटगिरि लोहारिया।

जयपुर में २ वेदी प्रतिष्ठा

इसके अलावा अनेक स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा।

विधान–आचार्य पद में

सिद्धचक्र विधान शिखरजी में १० बार

सिद्धचक्र विधान धनबाद में १ बार

सहस्रनाम विधान –	सिद्धचक्र विधान गिरिडीह में १ बार
१. बाराबंकी	सिद्धचक्र विधान कोडरमा में १ बार
२. लोहारिया	सिद्धचक्र विधान चम्पापुर में १ बार
३. कुचामन	सिद्धचक्र विधान लोहारिया में १ बार
४. गनोडा	सिद्धचक्र विधान कुचामन में १ बार
	सिद्धचक्र विधान बाँसवाडा में १ बार

• अनेक बार मृत्युञ्जय विधान • सर्वतोभद्र विधान...कोडरमा में

शेष लघुकाय अनेक विधान आपके सान्निध्य में होते रहे।

रचनाएँ

१. वीरशासन जयन्ती (लघुकाय पुस्तिका)

२. अलौकिक दर्पण (लघुकाय पुस्तिका)

३. धम्म-रसायण (हिन्दी टीका)

४. जिनाभिषेक

५. तिरने की कला

६. प्रशान्तवाणी (प्रवचन संकलन)

卐 卐 卐

आचार्यवचनं प्रमाणं

१. मोक्ष का रास्ता

आचार्यश्री से एक बार किसी ने पूछा—महाराज जी! मोक्ष की प्राप्ति का क्रम बताइये।

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा—क्या आप मोक्ष जाना चाहते हैं?

उस व्यक्ति ने कहा—जी हाँ।

आचार्यश्री कहने लगे—अपनी कॉपी में मोक्ष का रास्ता नोट कर लीजिये—

प्रथम मिथ्यात्व का वमन, कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन, प्रभु का भजन, स्व में मगन, आत्मा में रमण और तब होगा मोक्ष में गमन।

२. मेरा बेटा आ गया

आचार्यश्री संघ सहित पावापुरी से कुंडलपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक बुढिया रोती हुई आई और चरणों में गिर गई।

बोली—बाबा! मेरा बेटा आठ दिनों से कहीं भाग गया। बाबा! कैसे आयेगा? मुझ दुखिया पर कृपा करो। (हाथ जोड़ती है। बार-बार प्रार्थना करती है।) कोई उपाय बताओ बाबा।

आचार्यश्री ने मार्ग में रुककर उसे आशीर्वाद दिया और कहा—माँजी! आ जायेगा। शीघ्र आ जायेगा, चिन्ता न करो। ''ॐ नमः'' इसको जपो।

बुढ़िया माँजी घर पहुँची। चलते-फिरते-उठते-बैठते ''ॐ नमः'' जपने लगी। मात्र ५ दिनों के भीतर बालक सही हालत में घर आ गया। बुढ़िया को आचार्यश्री के वचनों पर अगाध श्रद्धा हुई।

आचार्य संघ के राजगृही पहुँचते ही वह वहाँ आ पहुँची और नतमस्तक हो आचार्यश्री से कहने लगी—बाबा! मेरा बेटा आ गया।

३. स्वयं सुधरोगे तो जग सुधरेगा

एक व्यक्ति ने आचार्यश्री से कहा–गुरुदेव! वर्तमान स्थिति बड़ी विकट है, इस दुनिया का सुधार कैसे हो?

आचार्यश्री–भाई! अपना लोटा तो छान सकते हैं कुए को नहीं छान सकते हैं। भाई! दुनिया की बात करना व्यर्थ है। स्वयं को तो सुधार सकते हैं दुनिया को नहीं। स्वयं सुधरोगे तो दुनिया अपने आप सुधर जायेगी–

अरे सुधारक! जगत की चिन्ता मत कर यार।
तेरा ही मन पापी है पहले इसे सुधार॥

४. बनते देर न लगी

कुछ दिनों पूर्व की घटना है। आचार्यश्री मंदारगिरि की वन्दना करके उतर रहे थे। एक जैन बन्धु जो पटना निवासी थे, आचार्यश्री से रोते बिलखते हुए कहने लगे–महाराज जी! अब पटना में कार्य चलता नहीं। मैं बहुत परेशान हूँ। सारा परिवार दुखी है। चरण पकड़ कर रोने लगा। कहने लगा–पटना छोडना पड़ेगा क्या?

आचार्यश्री के मुख से सहज भाव से निकला–बस! आज कल में ही पटना में ही तुम्हारा कार्य अच्छा चलने लग जायेगा। चिन्ता न करो। अब समय ठीक आ गया है।

वह घर पहुँचा। स्थिति ऐसी बनी कि उसे चन्द दिनों में २५ लाख का लाभ प्राप्त हुआ। धन्य है आचार्यश्री की वचन शक्ति और आशीर्वाद।

५. हाथ छोटे और जीभ बड़ी

एक सज्जन ने पूछा–गुरुजी! आज की परिस्थिति में मनुष्यों की भावना के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

आचार्यश्री–भाई! ज्यादा कहने से लाभ नहीं, संक्षेप में समझ लीजिये–

"आज के मनुष्य के हाथ छोटे और जीभ बडी है।"

"गुरुजी! मैं समझा नहीं, आपका तात्पर्य क्या है?"

आचार्यश्री–"आज का मानव बोलता बहुत है, करता कम है।"

६. सुबह आ जायेगा

झूमरीतिलैया का एक धर्मनिष्ठ परिवार। धर्मात्मा पुत्र। एक दिन माइन्स से आते हुए अपराधियों ने उसका अपहरण कर लिया। चारों ओर शोक की लहर छा गई। जो भी इस घटना को सुनता उसी के नेत्रों से अश्रुधारा छलक उठती।

आचार्यश्री उन दिनों संघ सहित देवघर में विराजमान थे। रात्रि एक बजे का समय था। किसी ने घबराते हुए आचार्यश्री को उठा दिया।

हाथ जोड़कर बोला–आचार्यश्री! नमोस्तु।

आचार्यश्री–आशीर्वाद....

"गुरुदेव! झूमरीतिलैया के श्रेष्ठीपुत्र का अपहरण कर लिया गया है। आचार्यश्री! आप ही रक्षक हैं। उपाय बताइये।"

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए इशारे में कहा–"घबराओ नहीं। सुबह आ जायेगा।"

प्रात: ९ बजे समाचार मिलता है। वे सही-सलामत घर पहुँच चुके हैं। सबके आनंद का ठिकाना न था। तुरन्त ही सबने पूछा–आपने कितना दिया?

धर्मात्मा पुत्र ने कहा–कुछ नहीं।

आश्चर्य भाव से–यह कैसे?

बस, गुरुकृपा।

७. अन्दर वालों की क्या व्यवस्था

मन्त्रीजी की घोषणा के बाद आचार्यश्री का प्रवचन। प्रवचन के मध्य–अभी-अभी मंत्रीजी बोल रहे थे–बाहर से आने वालों के लिए भोजन की व्यवस्था है। मन्त्री जी! हम अन्दर वालों की क्या व्यवस्था है?

हमारे चाय-नाश्ता की व्यवस्था हमारे तीर्थंकरों ने कर दी, हम अपनी व्यवस्था सदा साथ रखते हैं। आइये! आपको हमारे चाय-नाश्ता की सुन्दर व्यवस्था बताता हूँ–

प्रभुनाम की चाय पी लो, आत्मज्ञान का नाश्ता।

ज्ञानामृत का भोजन कर लो, यही मोक्ष का रास्ता॥

८. गन्धोदक छिड़किये

गिरिडीह के एक सज्जन आचार्यश्री के पास पधारे। दुखी थे। बस! चिन्ता से।

आचार्यश्री–क्या बात है?

सज्जन–गुरुदेव! सरकार ने सब फैक्ट्रियाँ बन्द करवा दी हैं। मेरी आजीविका का कोई दूसरा साधन नहीं है। क्या करूँ? आप ही हमें मार्ग बताइये।

आचार्यश्री–फैक्ट्री में प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव का गन्धोदक छिड़किये, सब मंगल होगा।

उन्होंने गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य किया। फल यह हुआ कि पूरे जिले में मात्र उनकी फैक्ट्री को पुन: खोलने का सरकारी आदेश प्राप्त हुआ।

वे आचार्यश्री के चरणों में पुन: पावापुरी पधारे और चरणों में माथा टेककर आशीर्वाद प्राप्त किया।

९. पत्थर में भी भगवान

एक मनचला व्यक्ति आचार्यश्री से बोला–मै इन पत्थरों को नहीं पूजता। दुनिया अधी बनी हुई है, पत्थर को भगवान मान बैठी है, तीर्थों पर निरर्थक घूमती रहती है।

आचार्यश्री का उत्तर बड़ा मार्मिक था–भई!

जिसका हृदय पत्थर है उसको भगवान भी पत्थर दिखते हैं।

जिसका हृदय पवित्र है उसको पत्थर में भी भगवान दिखते हैं॥

भावना पवित्र रखो, भगवान बन जाओगे।

तीर्थ की वन्दना करो, तिर जाओगे।

१०. धर्म की जड़ सदा हरी

एक घटना ऐसी घटी–एक धर्मात्मा भव्यजीव आचार्यश्री से कहने लगा–गुरुदेव! मेरा कार्य बिल्कुल नहीं चल रहा है। फाइनेन्स का कार्य भी रुका हुआ है। मुझे पेमेन्ट करना है। बाजार में साख बिगड़ने की नौबत आ गयी है। कुछ उपाय कीजिये। आशीर्वाद दीजिये।

सिर पर हाथ फेरते हुए आचार्यश्री ने कहा–"धर्म की जड़ सदा हरी है। तुम जाओ, सारा पेमेन्ट चूक जायेगा। कोई तकलीफ नहीं आयेगी।"

हुआ ऐसा ही। उनका कार्य कब, कैसे हुआ, पूछने पर कहता है–कैसे हुआ मैं नहीं जानता। बस, गुरु-आशीर्वाद का फल मानता हूँ।

११. कुटिया में ही रुचता

किसी ने आचार्यश्री से पूछा–आपको शहर में अच्छा लगता है या गाँव में?

आचार्यश्री–भाई! हमें न शहर रुचता है न गाँव।

क्यों?

देखो– "शहर में जायेंगे तो सड़ जायेंगे और गाँव में जायेंगे तो गुम जायेंगे।" तो आपको कहाँ रुचता है?

"वन में जायेंगे तो बन जायेंगे और स्व में जायेंगे तो तिर जायेंगे।"

मुझे तो अपने आत्मानन्द की कुटिया में ही रुचता है।

१२. स्वयं दिख जायेगा

श्रावक–आचार्यश्री! शुभ-अशुभ का उदय कब आयेगा, कैसे जानें?

आचार्यश्री–जन्म का मुहूर्त किसी ने दिखाया नहीं है,

मरण का मुहूर्त किसी ने निकाला नहीं है।

शुभ और अशुभ का उदय कब आ जाये, पता नहीं है,

कैवल्य को प्राप्त करो स्वयं दिख जायेगा।

१३. पर से ममत्व

एक वृद्ध व्यक्ति ने पूछा—गुरुदेव! हम दुख क्यों उठाते हैं?

आचार्यश्री—"हम शव को सजाते हैं, शिव को भुलाते हैं, इसलिए दुख उठाते हैं।" सच ही तो है।

"पर से ममत्व करोगे तो आत्मा से दूर हो जाओगे। शरीर से जुड़ जाओगे तो संसार में फँस मोक्ष को भूल जाओगे। दुख उठाओगे।"

१४. आशुकवि की तकलीफ

सन् १९९६ में आचार्यश्री का चातुर्मास चम्पापुर में हुआ। चातुर्मास के दौरान भागलपुर की जैन-अजैन समाज आचार्यश्री के चरणों की अनन्य भक्त बन चुकी थी। वहाँ एक आशुकवि हैं। वे आचार्यश्री के प्रवचन के पूर्व अपनी कविताएँ, भजन आदि अवश्य पढते थे।

एक दिवस वे आचार्यश्री से करबद्ध प्रार्थना करने लगे—महाराज जी! मुझे पेशाब में तकलीफ होती है, डॉक्टर ने ऑपरेशन कराने को कहा है। अब कैसे क्या होगा?

आचार्यश्री—ऑपरेशन न करावे। प्रतिदिन प्रात: एक सेव फल नियम से खाइये। रोग दूर हो जायेगा।

आचार्यश्री के आशीर्वाद से वे चातुर्मास काल में ही पूर्णतया स्वस्थ हो गये।

१५. रत्नत्रय का नुस्खा

आचार्यश्री! कर्मों का क्षय तथा मोक्ष प्राप्त कैसे किया जाता है?

आचार्यश्री—प्रथमत: धर्म को धारण किया जाता है, व्रतों का पालन किया जाता है, पापों का प्रक्षालन किया जाता है, तपों को तपा जाता है, आत्मा का ध्यान किया जाता है, रत्नत्रय को प्राप्त किया जाता है तब मोक्ष पाया जाता है।

"दुर्लभ को जाना नहीं, सुलभ लिया अपनाय।
सुलभ तो सब जग मिले, दुर्लभ मिले न कोय।"

१६. तबादला हो गया

५ जून १९९५ की वार्ता है। संध्या गोयल ने आचार्यश्री से अपनी समस्या रखते हुए कहा–गुरुदेव! ऑफीसर बहुत परेशान करता है। लगता है नौकरी छोड़नी पड़ेगी। आप ही कोई उपाय बताइये।

आचार्यश्री का उत्तर था–आप घबराइये नहीं, वह आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा। आपकी परेशानी शीघ्र ही दूर हो जायेगी।

संध्या लौट आयी। अगले दिन ऑफिस गयी। मालूम पड़ा कि वह ऑफीसर यहाँ से चला गया, कारण उसका एकाएक तबादला हो गया था। संध्या की, आचार्य के कहे वचन सत्य होने से उनके प्रति श्रद्धा दृढ़ हो गयी।

१७. मिथ्यात्वी का रुदन

गुरुदेव, मिथ्यात्वी की क्या दशा होती है?

आचार्यश्री –

प्रमादी का पतन होता है, पुरुषार्थी का वतन होता है।
समभावी का सदन होता है, पर 'मिथ्यात्वी का रुदन' होता है।

१८. सिद्धप्रभु

गुरुदेव! सिद्ध भगवान को नमस्कार करते समय बोलने के लिए कोई दोहा बता दीजिये।

आचार्यश्री–

सिद्ध प्रभु को नित नमूँ, सिद्धहोन के काज।
सिद्ध होय मम आत्मा, सिद्धालय हो वास॥

१९. जप करते मिलेगी

सन् १९९५ की घटना है। आचार्यश्री का संघ राजगृही से गया होते हुए कोल्हुवा पहाड़ की ओर जा रहा था।

इन्दौर से एक फोन आया। संघस्थ ब्र. प्रभा दीदी को शीघ्र इन्दौर के लिए रवाना कीजिये। कार्यकर्त्ता ने फोन पर पूछा–क्यों?

उत्तर था—जीजी की मातुश्री को ब्रेन हेमरेज हो गया है। वे घबराते हुए आचार्यश्री के पास आये।

प्रभा दीदी को जब समाचार मिला तो वे भी घबरा गईं क्योंकि उनकी माँ धार्मिक महिला है। उनके मन में चिन्ता हुई, कहीं माँ की असमाधि न हो जाये। बेचैन-सी जीजी आचार्यश्री के चरणों में पहुँची।

जीजी नमोस्तु करते हुए बोली—गुरुदेव! माँ की तबीयत का क्या होगा और रोने लगी। कहने लगी—मेरे जाने तक माँ मिलेगी या नहीं? उनके व्रत-नियम छूटेंगे तो नहीं?

आचार्यश्री—तुम घबराओ नहीं। माँ का अभी ढाई वर्ष कुछ भी नहीं बिगडेगा और जब तुम इन्दौर पहुंचोगी तो माँ तुम्हें 'जप' करते हुए मिलेगी।

जीजी को इन्दौर पहुंचने मे लगभग ६० घंटे लग गये। माँ अस्पताल में थी। जीजी जब वहाँ पहुँची तो माँ सचमुच में णमोकार मन्त्र की माला जप रही थी। जीजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सारे परिवार को जीजी ने आचार्यश्री की वाणी से अवगत कराया। सबकी श्रद्धा दृढ़ हुई और धर्म के प्रति सारे परिवार की रुचि और अधिक होने लगी।

२०. दीक्षा

गुरुदेव! दीक्षा किसे कहते हैं?

आचार्यश्री—

दीनता का क्षय करती है, वीरता को जगाती है,

भिक्षा का संकल्प कराती है, समता को साधती है।

तप को तपाती है, संयम का पालन कराती है।

अपने में समाती है, मोक्ष में पहुँचाती है—

वह दीक्षा कहलाती है।

२१. त्यागी ही त्याग-मार्ग दिखा सकता है

२५ फरवरी १९९७ की घटना है—पावापुरी सिद्धक्षेत्र की बात है। मैनेजर जयकुमार जी ने कहा—गुरुदेव! एस. डी. ओ. साहब आये हैं। आपका आशीर्वाद लेना चाहते हैं। उस समय आचार्यश्री ऊपर मंदिरजी की छत पर विराजमान थे। आपने कहा—ले आइये।

एस. डी. ओ. साहब ने आचार्यश्री के चरणों में मस्तक झुकाया और कहा—आचार्यश्री! मुझे आशीर्वाद दीजिये।

आचार्यश्री—आशीर्वाद कैसे दूँ?

एस.डी.ओ. विनयपूर्वक बोले—क्या मेरे से कुछ गलती हो गई है?

आचार्यश्री—जी हाँ, पहले आप शाकाहारी बनिये फिर मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ।

आचार्यश्री के वचनों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने तत्काल मांसाहार का जीवन-भर के लिए त्याग कर शाकाहारी रहने की प्रतिज्ञा की।

यह है आपके वचनों का प्रभाव। सच है, त्यागी ही त्याग का मार्ग दिखा सकता है।

प्रपंचरहितं शास्त्रं,
प्रपंचरहितो गुरुः।
प्रपंचरहितो मोक्षो,
दृश्यते जिनशासने॥

आचार्यश्री की डायरी से

शिक्षाप्रद संकलन

- आप में जब तक कि कोई आपको पाता नहीं।
  मोक्ष की मंजिल तलक हरगिज कदम जाता नहीं॥
- चाहे समझो पलक में चाहे काल अनंत।
  जब समझो तब समझ है, घर में निज भगवन्त॥
- कस्तूरी कुण्डल बसे मृग ढूंढे वन मांहि।
  ऐसे घर में जिन बसे दुनिया जाने नांहि॥
- तेरा साईं तुज्झ में ज्यों पुहुपन में वास।
  कस्तूरी के मिरग ज्यों फिर-फिर सूंघे घास॥
- आत्मा परमात्मा में कर्म का ही भेद है।
  काट दे यदि कर्म को तो न भेद है न खेद है॥
- आतमलीन अनंतगुण, शोभित आतमराम।
  लक्षण दश धारें सदा शीस नवाय प्रणाम॥
- ज्ञाता द्रष्टा आतमा चिदानंद भरपूर।
  पावे पद निर्वाण यह करे कर्म जब दूर॥
- मैं हूँ सिद्ध परमात्मा, मैं हूँ आतमराम।
  मैं ही ज्ञाता ज्ञेय हूँ चेतन मेरा नाम॥
- सुख को कहाँ तू ढूंढ़ता, आप सुख भंडार है।
  तेरे ही सुख आवास को मानता संसार है॥
- तीरथ-तीरथ क्यों फिरे तीरथ तो घटमांहि।
  थिर-थिर भये ते तिर गये अथिर फिरे जगमांहि॥
- कौन कहता है तू अनाथ है तू तो पक्का सनाथ है।
  गर सम्हाले अपनी निधि तो तू ही जगन्नाथ है॥
- देव-शास्त्र-गुरु तत्त्व में श्रद्धा राखन-हार।
  व्यवहारी सम्यक् सुधी, शुभमय सब व्यापार॥

- चेतन चित परिचय बिना जप तप सबै निरत्थ।
  कण बिन तुष जिम फटकतैं कछु न आवे हत्थ॥
- आतम अनुभव नियत नय, तत्त्वारथ व्यौहार।
  देवशास्त्रगुरु मान्य तो सम्यक्दर्शन सार॥
- गहे नहीं पर, तजे न आप, करे निरंतर आतम जाप।
  ताके संवर निर्जर होय, आस्रव बंध विनाशे सोय॥
- **क्षमा** और शांति में सुखी रहे सदैव जीव,
  क्रोध में न एक पल रहे सुख-चैन से।
  आवत ही क्रोध अंग-अंग से पसेव गिरे,
  होठ डसै, दांत घिसै आग झरे नैन से।
  औरन को मारै आपनो शरीर कूटि डारै,
  नाक भौं चढाय खुराफात बकै बैन से।
  ज्ञान ध्यान भूलि जात, आपा-पर करै घात,
  ऐसे रिपु क्रोध को भगावो क्षमा सैन से॥
- **क्रोध** करि मरे और मारे ताहि फाँसी होय,
  किंचित् हू मारे तोहू जाय जेलखाने में।
  जो कहूँ निबल भये हाथ पॉव टूटि गये,
  ठौर-ठौर पट्टी बँधी पडे सफाखाने में।
  पीछे से कुटुम्बी जन हाय-हाय करत फिरे,
  जाय-जाय पैरों पडे तहसील और थाने में।
  किंचित् किये ते क्रोध एते दुःख होत भ्रात,
  होते हैं अनेक गुण जरा गम खाने में॥
- क्षमा धरे वह परम नर, विनयी हो विद्वान्।
  ऋजुता तीर्थ समान है, लोभ रहित भगवान॥
- मित्र क्षमा सम जगत में, नहीं जीव का कोय।
  अरु बैरी नहीं क्रोध सम निश्चय जानो सोय॥
- **मान** सूरज करता है, आकाश पर चढ़ते हुए,
  शाम को देखा उसी को शिर झुका ढलते हुए॥

- मर जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज।
  पर पर-हित के कारने मांगत आवे न लाज॥
- प्रभुता को सब कोई चहै, प्रभु को चाहे न कोई।
  जो तुलसी प्रभु को चहे आप हि प्रभुता होय॥
- गोली से बोली बुरी, जो दिल को लग जाय।
  गोली तो सहले मनुज पर बोली सही न जाय॥
- बड़ी नीठि-नीठि से मिला है नर जन्म तुझे।
  झूठ बोलि के खराब क्यों करे जबान रे॥
  कर्कश कठोर दुष्ट झूठ बैन औरन के,
  हृदै को विदार देत बान के समान रे।
  पुरुष सत्यवादी का आदर जहान करै,
  झूठे पुरुषों का कहीं होता नहीं मान रे।
  मक्खन सा नर्म मिष्ट शिष्ट सत्य बैन बोलि।
  वशीकर्ण मंत्र यही कहै भगवान रे॥
- अन्तर विषय वासना वर्ते बाहर लोक लाज भयभारी।
  यातें परम दिगंबर मुद्रा धर ना सकैं दीन संसारी॥
  ऐसी दुर्द्धर नगन परीषह जीते साधु शीलव्रत धारी।
  निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके चरणों धोक हमारी॥
- जग में दाता दो ही है एक राम एक दाम।
  एक दाता है मोक्ष का एक सुधारे काम॥
- खाओ खर्चो दान दो, विलसो मन हर्षाय।
  संपति नदी प्रवाह ज्यों रोकी कभी न जाय॥
- सांई इतना दीजिये जामें कुटुंब समाय।
  मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय॥
- सहज मिला तो दूध बराबर, मांग लिया सो पानी।
  खींच लिया सो रक्त बराबर गोरख बोला वाणी॥
- लक्ष्मी चपला चंचल कहिये बिजलीवत् उड़ जायेगी।
  दान दिये से चेरी बनकर, भव-भव में संग जायेगी॥

- होय तीन धन की गति दान भोग अरु नाश।
  दान भोग जो नहीं किया, तो निश्चय होवे नाश॥
- जहाँ परिग्रह हो प्रधान, संकट से भरपूर।
  शान्ति वहाँ रहती है, हर मानव से दूर॥
- आत्मशान्ति ही है मानव को वरदान।
  जिस जीवन में शान्ति नहीं वह जीवन श्मशान॥
- देखो शास्त्र छान-छानकर, वैभव किसके साथ गया।
  राव रंक सब ही को देखो अन्त पसारे हाथ गया॥
- परिग्रह मन व्याकुल करे, व्याकुलता दुख ठौर।
  जो परिग्रह में सुख लहे ते मूरख शिर मौर॥
- नारी पूछे सूम की, काहे बदन मलीन।
  कहा तुम्हारो गिर गयो, के काहू को दीन॥
  सूम कहे नारी सुनो, गिरो न कुछ मैं दीन।
  देतन देखो और को तासो बदन मलीन॥
- सोलह सिंगार विलेपन भूषण से निशिवासर तोय सम्हारे।
  पुष्ट करी बहुभोजन पानन, धर्म रु कर्म सबै ही बिसारे॥
  सेये मिथ्यात्व अन्याय किये, बहुते तुझ कारण जीव संहारे॥
  भक्ष्य गिने न अभक्ष्य गिने, अब तो चल संग तू काय हमारे॥
- क्या अनहोनी कहो यह चेतन, भंगखई कि भये मतवारे।
  संग चली न चलूं कबहूं लखि ये ही स्वभाव अनादि हमारे॥
  इन्द्र नरेन्द्र धरेन्द्रन के संग, नांहि गई तुम कौन विचारै।
  कोटि उपाय करो तुम चेतन तोहू चलूं नहिं संग तुम्हारे॥
- मूंड मुंडाय रखाय जटा, सिर राख रमाय बने ब्रह्मचारी।
  धर्म अधर्म को घूंट पिये, ममता मद मोह माया न बिसारी॥
  बैठ रहे पट दे मठ भीतर, साध के मौन लगाय के तारी।
  ऐसे भये तो कहा तुलसी, जिन आसन मार के आश न मारी॥
- गो धन, गज धन, वाजि धन और रतन धन खान।
  जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान॥

- चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काम सरें जिय राजी।
  गेह चिनाय करूं गहना कुछ ब्याह सुतासुत बांटिये भाजी॥
  चिंतत यों दिन जाहिं चले, जम आन अचानक देत दगाजी।
  खेलत खेल खिलारी गये, रह जाय रूपी शतरंज की बाजी॥
- मन चाहे तो मेला करियो, मन चाहे तो चेला।
  कहत कबीर सुनो भाई साधो सब से भला अकेला॥
- ख्याति लाभ संसार वासना, लेकर बना विरागी।
  विषय वासना जगत उर में फिर कैसा तू त्यागी॥
- जो गृह करे तो धर्म कर, नहीं तो कर वैराग।
  वैरागी बंधन करे ताके बड़े अभाग॥
- सुख सदा रहता नहीं तो दु:ख का भी अंत है।
  यह जानकर निज चित्त में विचलित न होता संत है।
- लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
  जो प्रभु होना चाहता लघुता धार जरूर॥
- उपादान अरु निमित्त तो सब जीवन पै वीर।
  जो निजशक्ति संभारही, ते पहुँचे भवतीर॥
- जो गलती छोड़कर बैठा उसे **भगवान** कहते हैं।
  जो गलती कर सुधरता है उसे **इंसान** कहते हैं॥
  समझता जो न गलती को उसे **हैवान** कहते है।
  जो गलती पर करे गलती उसे **शैतान** कहते हैं॥
- जो मानता है स्वार्थ अपना पर के उपकार में।
  वह वीर वर आदर्श नर है, धन्य है संसार में॥
- भाग्यवान हैं वे पुरुष जिनके मन आधीन।
  आत्मध्यान को प्राप्त कर शीघ्र होत स्वाधीन॥
- ग्रैवेयक के श्रेष्ठ सुख भोगे अगणित बार।
  तब क्यों रीझत, अन्य सुख, मनुष होय दुखकार॥
- भाग्यहीन को नहीं मिले, भली वस्तु का भोग।
  दाख पकै तब काग कै होय कंठ में रोग॥

- एक डगर वासना है एक नजर साधना है।
  'सत्य' कहते हैं जिसे हम 'स्व' की आराधना है॥
- लाभ क्या है उन करों से, जो न गिरे को उठाए।
  याकि बन दानी जगत में कीर्ति अपनी को बढ़ाए॥
- कभी किसी को तुम न सताओ, दुखी देखकर करुणा लाओ।
  जीव दया से जग सुख पाता, दया जगत में यश की दाता॥
- हँसी में विषाद बसे, विद्या में विवाद बसे,
  काया में प्राण बसे, बातन में हीनता।
  शुचि में ग्लानि बसे, प्राप्ति में हानि बसे,
  जीत में हार बसे सुन्दरता में छवि-छीनता॥
  रोग बसे भोग, संयोग में वियोग बसे,
  माया में प्रपंच बसे सेवा मांहि दीनता।
  जेती जगरीति तेती गर्भित असाता सेती,
  साताकी सहेली है अकेली उदासीनता॥
- प्रभु वीतराग स्वामिन्, यह प्रार्थना हमारी।
  हम निजस्वरूप पायें, पायें दशा तुम्हारी॥
- जबहिं नाम मन में धर्यो, भयो पाप को नाश।
  जैसे चिनगी आग की परी पुरानी घास॥
- ज्ञान चरण तप शील व्रत उत्तम संयम सार।
  सम्यग्दर्शन के बिना ये हैं कोरे भार॥
- जिसका न पर-उपकार अरु शुभदान में परिणाम है।
  सचमानिये उस अधम नर का जन्म विभव निष्काम है॥
- जगत् गुरु तो बहुत मिले, मन का बिरला कोय।
  जो निज मन का गुरु नहीं जगत गुरु नहीं होय॥
- न सुनो गर बुरा कहे कोई, न करो गर बुरा करे कोई।
  रोक लो गर गलत चले कोई, बक्श दो गर खता करे कोई॥
- सांचो देव सोई जामें दोष को न लेश कोई।
  वहै गुरु जाकै उर काहू की न चाह है।

सही धर्म वही जहाँ करुणा प्रधान कही,
ग्रन्थ जहाँ आदि अन्त एकसो निवाह है।
ये ही जग रत्न चार इनको परख यार,
सांचे लेहु झूठे डार नर भौ को लाह है।
मानुष विवेक बिन पशु के समान गिना,
तातैं याहि बात ठीक पारनी सलाह है।

- दासोऽहं रटता प्रभु, आयो जब तुम पास।
  ददर्शन ही मिट गयो, सोऽहं रह्यो प्रकाश॥
  सोऽहं सोऽहं ध्यावते, रह न सक्यो सकार।
  अहं दीपमय हो गयो, अविनाशी अविकार॥
- मूरत यह जिनराज की, सुखद शांति की ज्योत।
  एक बार दर्शन करे, बार बार सुख होत॥
- जिनदेव-दर्शन करने से निजदेव दर्शन होय।
  जो कर्म फल देकर झरें वे क्षीण क्षण में होय॥
- अरहन्त नाम लड्डू, सिद्ध नाम घी।
  साधु नाम मिश्री, घोल-घोल पी।
- घने बिन्दु जो दीजिये एक अंक नहि होय।
  तैसे निष्फल जानिये, शील बिना सब कोय॥
- दाढी मूंछ मुंडाय के हुआ है घोटम घोट।
  मन को क्यों नहीं मूंडिये, जामें भरियो खोट॥
- माला तेरे काठ की तग्गा लीना पोई।
  मन में कोठी पाप की राम जपै का होई॥
- माला बोली कमाल से तू क्या फिरावे मोय।
  प्रभु से नेहा लगा ले मैं पहुचाऊँ तोय॥
- तन की भूख कितेक है, तीन पाव के सेर।
  मन की भूख इतेक है लीलन चहे सुमेर॥
- माला तो मन की भली, और काठ का भारा।
  माला में गुण होवे तो क्यों बेचे मनिहारा॥

- मन लोभी मन लालची मन चंचल मन चोर।
  मन के मते न चालिये पलक-पलक में और॥
- चलो-चलो सब कोई कहे, बिरला पहुँचे कोय।
  एक कनक अरु कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय॥
- वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
  इस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभौ ताको नाम॥
- अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभौ है रस कूप।
  अनुभौ मारग मोक्ष को, अनुभौ मोक्ष सरूप॥
- जीव जाति सब एक है, इसमें यह विज्ञान।
  चाह सहित चहुँ गति फिरे चाहरहित निर्वाण॥
- चाह घटी चिन्ता घटी, मनुवा बेपरवाह।
  जिन्हें कछु नहीं चाहिए वे शाहन पति शाह॥
- भैया नाटक कर्म का नाचत हैं सब लोग।
  नाटक तज न्यारे भये ते पहुँचे शिव ठौर॥
- पानी का भाव हृदय में था, इससे पानी का जीव हुआ।
  नीचे पानी ऊपर पानी, पानी ही उसे नसीब हुआ॥
  है जैन धर्म में भाव मुख्य, जैसा जो भाता पाता है।
  देखो भावों के कारण ही, मानव मेंढ़क हो जाता है।
- लगा सको तो बाग लगाना, आग लगाना मत सीखो।
  जला सको तो दीप जलाना, दिल जलाना मत सीखो।
  चला सको तो जीवन चलाना, चाकू चलाना मत सीखो।
  बिछा सको तो फूल बिछाना, शूल बिछाना मत सीखो॥
- मन को जितना नमाओगे उतना मान कम होगा।
  मन को जितना बढ़ाओगे उतना मान यम होगा॥
- काय से सेवा कीजिये, मन से भले विचार।
  धन से इस संसार में, करिये पर उपकार॥
- अलि पतंग मृग मीन गज जरत एक ही आँच।
  तुलसी वाकी कौन गति जिन कहँ व्यापत पाँच॥

- कोई मौन धरे कोई योग करे कोई आसन मांड के ध्यान ठरावे।
  कोई तीर्थ फिरे, कोई जाप करे, कोई प्रीतिसु अंग विभूति लगावे।
  कोई राम कहे रहमान कहे कोई गंग-समुद्र के संगम नहावे।
  जो लग तत्त्व-विचार न जानत तौं लग मुक्तिवधू नहीं पावे॥

❋ ❋ ❋

अमृतवचन

- आम के दिव्य रस को पीकर भी कोयल गर्व नहीं करती, लेकिन कीचड-पानी पीकर भी मेंढक टर्राने लगता है।
- विनय से हीन हुए मनुष्य की सम्पूर्ण शिक्षा निरर्थक है। विनय शिक्षा का फल है और विनय का फल सर्व कल्याण है।
- विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम, तप और ज्ञान होता है। विनय के द्वारा आचार्य और सर्वसंघ आराधित होता है।
- जो जितना ज्ञानी होगा वह उतना ही विनम्र भी होगा। पेड पर अधिक फल लगते हैं तो वह झुक जाता है। हे आत्मन्! विनय सहित जीवन अमृत तुल्य है। विनय रहित जीवन विष तुल्य है। इसलिए जीवन में विनय गुण की परम आवश्यकता है। स्वार्थ त्यागो, परोपकार करो। यही मानव का सच्चा आभूषण है।
- विषयचिन्तन से आसक्ति, आसक्ति से कामना, कामना से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रम, स्मृतिभ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से अधोगति होती है॥ गीता॥
- यौवन, संपत्ति-सुख, प्रभुत्व और अविवेक ये प्रत्येक अनर्थ के कारण हैं, जहाँ ये चारों हों वहाँ क्या होगा?-विदुर॥
- जो पुरुष वचन से मुनियों का अनादर-उल्लंघन करते हैं, वे दूसरे भव में गूंगे होते हैं। जो मन से निरादर करते हैं वे स्मरणशक्ति से रहित होते हैं और जो शरीर से निरादर करते हैं उनको शारीरिक ऐसा कोई दुख नहीं

जो प्राप्त नहीं। इसलिए बुद्धिमान पुरुषों को तपस्वियों का कभी अनादर नहीं करना चाहिए।

- एकान्त अच्छी पाठशाला है परन्तु दुनिया सबसे अच्छी रंगशाला है।
- पानी एक जगह ठहरे रहने से बदबूदार हो जाता है और दूज का चन्द्रमा यात्रा के कारण पूर्णचन्द्र बन जाता है।
- जो मुनि अपने स्वभाव को जानता है और पर के भी स्वभाव को जानता है वह परिषह सह सकता है। जब एक मच्छर अपने स्वभाव को या अपने कर्त्तव्य (आचरण) को नहीं छोड़ता है तो फिर मैं अपने स्वभाव को क्यों छोड़ूँ।
- १. खाने के लिए गम २. पीने के लिए क्रोध ३. करने के लिए आत्मचिन्तन ४. धारण करने के लिए संतोष ५. रखने के लिए मौन ६. डालने के लिए संस्कार ७. छोडने के लिए मान ८. प्राप्त करने के लिए ज्ञान ९. तीन बातें-बुरा देखो मत, बुरा सुनो मत, बुरा बोलो मत १०. निंदा करने वाले से निंदा सुनने वाला अधिक पापी होता है।
- क्षमा करने वाला व्यक्ति रात भर सोता है और क्रोध करने वाला व्यक्ति रात भर रोता है।
- ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कषाय को अल्प मान विश्वस्त होकर नहीं बैठ जाना चाहिए, क्योंकि ये थोड़े भी बढ़कर बहुत हो जाते हैं।
- गृहस्थ के घर में अभ्यागत के लिए तीन पदार्थों का होना आवश्यक है- १. मीठी वाणी २. आसन ३. शीतल जल।
- स्त्री, लेखनी, पुस्तक पराये हाथ गई हुई वापिस नहीं आती है।
- दिलदार आदमी का वैभव गाँव के बीचों-बीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।
- सौ में एक शूरवीर, हजार में एक पंडित, दस हजार में एक वक्ता हो सकता है परन्तु योग्य दाता लाखों में कोई एक हो और न भी हो।

❋ ❋ ❋

प्रिय भजन

नवकार मंत्र ही महामंत्र

नवकार मंत्र ही महामंत्र निजपद का ज्ञान कराता है।
नित जपो शुद्ध मन-वच-तन से मनवांछित फल का दाता है।
पहला पद श्री अरहंताणं यह आतम-ज्योति जगाता है।
यह समोसरण की रचना की भव्यों को याद दिलाता है॥२॥
दूजापद श्री सिद्धाण है, यह आतम शक्ति बढाता है।
इससे मन होता है निर्मल, अनुभव का ज्ञान कराता है॥३॥
तीजापद श्री आइरियाणं, दीक्षा का भाव जगाता है।
दुख से छुटकारा शीघ्र मिले, जिनमत का ज्ञान बढ़ाता है॥४॥
चौथापद श्री उवज्झायाणं यह जैन धर्म चमकाता है।
कर्मास्रव को ढीला करता, यह सम्यक् ज्ञान कराता है॥५॥
पंचमपद श्री सव्वसाहूणं यह जैन तत्त्व सिखाता है।
दिलवाता है यह ऊँचा पद संकट से शीघ्र बचाता है॥६॥
तुम जपो भविक जन महामंत्र अनुपम वैराग्य बढाता है।
नित श्रद्धा मन से जपने से मन को यह शान्त बनाता है॥७॥
सम्पूर्ण रोग को शीघ्र हरे, जो मंत्र रुचि से ध्याता है।
जो भव्य सीख नित ग्रहण करे, वह जामन-मरण मिटाता है॥८॥
नवकार मंत्र ही महामंत्र निजपद का ज्ञान कराता है।

ज्ञानी हुए तो क्या हुए

जाना नहीं निज आतमा, ज्ञानी हुए तो क्या हुए।
ध्याया नहीं निज आतमा ध्यानी हुए तो क्या हुए॥१॥
ग्रन्थ (श्रुत) सिद्धान्त पढ़ लिये ज्ञानी शास्त्रज्ञ बन गए।
आतम रहा बहिरातमा पंडित हुए तो क्या हुए॥२॥

पंच महाव्रत आदरै घोर तपस्या भी करे।
मन की कषाय ना मिटी साधु हुए तो क्या हुए॥३॥
गाके, बजाके, नाचके, पूजन भजन करते रहे।
भगवन् हृदय में ना बसे पूजक हुए तो क्या हुए॥४॥
करते न जिनवर दर्श को खाते सदा अभक्ष्य को।
दिल में जरा दया नहीं जैनी हुए तो क्या हुए॥५॥
माला के दाने फेरते मनवा फिरे बाजार में।
मन का न मनका फेरते जपिया हुए तो क्या हुए॥६॥
मान बढ़ाई कारणे, द्रव्य हजारों खर्चते।
घर के भाई भूखों मरे दानी हुए तो क्या हुए॥७॥
औगुन पराये हेरते दृष्टि न अन्तर फेरते।
'शिवराम' एक ही नाम के शायर हुए तो क्या हुए॥८॥

मानव की सम्पत्ति है

दुःख भी मानव की सम्पत्ति है, तू क्यों दुःख में घबराता है।
दुःख आया है तो जावेगा, सुख आया है तो जावेगा॥
सुख जावेगा तो दुःख देकर, दुःख जावेगा तो सुख देकर।
सुख देकर जाने वाले से, रे मानव! क्यों भय खाता है॥१॥
सुख में है व्यसन प्रमाद भरे, दुःख में पुरुषार्थ चमकता है।
दुःख की ज्वाला में पड़कर ही, कुन्दन सम तेज दमकता है॥
सुख में सब भूले रहते हैं, दुख सबकी याद दिलाता है॥२॥
सुख सन्ध्या का वह लाल क्षितिज जिसके पश्चात् अंधेरा है।
दुःख प्रातः का झुटपुटा समय, जिसके पश्चात् सबेरा है॥
दुःख का अभ्यासी मानव ही, सुख पर अधिकार जमाता है॥३॥
दुःख के सम्मुख जो सिहर उठे, उनको इतिहास न जान सका।
जो दुःख में कर्मठ धीर रहे, उनको ही जग पहचान सका।
दुःख एक कसौटी है जिस पर, यह मानव परखा जाता है॥४॥
दुःख मानव की सम्पत्ति है..........

क्या होगा

अन्तर का भाव न बदल सका, नित भेष बदलकर क्या होगा।
पूजन का ठाट बदल न सका नित स्थान बदलकर क्या होगा।
इस तन-मन के मन्दिर में विषयों का रंग है भरा (जमा) हुआ।
जल विवेक से धो न सका, नित रंग बदलकर क्या होगा।
जड भावों की माला को भव-भव में जपता आया है।
आतम गुणमाला गा न सका नित माला बदलकर क्या होगा।
जीवन में शास्त्र अनेक पढ़े, उपदेश दिया मन हर्षाया।
आतम का पाठ न बाँच सका, नित शास्त्र बदलकर क्या होगा।
कहीं पापभाव कहीं पुण्यभाव, भव छोडा अरु पाया है।
निश्चय का भाव न पाय सका, नित भाव बदलकर क्या होगा।
मनुष्यगति कहीं देवगति, कहीं पशुगति कहीं नरकगति।
पंचमगति 'चन्द्र' न पाय सका नित गति बदल कर क्या होगा।
जीवन में पाठ अनेक रचे धन भी मनमाना खरचाया।
अहं भाव तो मिट न सका नित पाठ बदलकर क्या होगा।।

विनय

नीचे तो पानी टिके, ऊँचे टिके न भाई।
नीचे होता भरि पिये, ऊँचा प्यासा जाई।।
लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी ले शक्कर चली हाथी के शिर धूर।।
रुचि तैं प्रकटे ज्ञान सब, रुचि बिन ज्ञान न होय।
सीधा घट बरसत भरे औंधा भरे न कोय।।
ऊँचा-ऊँचा सब कहे नीचा चले न कोई।
एक बार नीचा चले तो सबसे ऊँचा होई।।
नीचे देखे तीन गुण जीव जन्तु बच जाय।
ठोकर भी लागे नहीं पड़ी वस्तु मिल जाय।।

भावना

दिन-रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ॥

शत्रु अगर कोई हो, सन्तुष्ट उसको कर दूँ।
समता का भाव धरकर सबसे क्षमा कराऊँ॥ दिन.॥

त्यागूँ आहार-पानी औषधि विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥ दिन.॥

जागे नहीं कषायें नहीं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ॥ दिन.॥

आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारुँ।
''अरहन्त, सिद्ध, साधु'' रटना यही लगाऊँ॥

धर्मात्मा निकट हो चर्चा धरम सुनावें।
वे सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ॥

जीने की हो न वांछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ॥

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरण,
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ॥

तुम पद हिये में मेरे, मम हृदय तुम पदों में।
तिष्ठें जिनेन्द्र तब तक जब तक न बोध पाऊँ॥

रत्नत्रय का हो पालन, हो अन्त में समाधि।
तन से ममत्व त्यागूँ तन यहीं छोड़ जाऊँ॥

कीर्तन

सम्यक् दर्शन प्राप्त करेंगे, प्रभु का दर्शन नित्य करेंगे।
नित्य करेंगे-२..........

सप्त भयों से नहीं डरेंगे, सप्त तत्त्व का श्रद्धान करेंगे।
स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे। जीव अजीव पहिचान करेंगे।
श्रद्धान करेंगे-२.......

बिना छना जल काम न लेंगे, रात्रिभोजन नहीं करेंगे।
निजानंद का पान करेंगे, पंच प्रभु का ध्यान करेंगे।

सप्त व्यसन का त्याग करेंगे, सप्त नरक में नहिं पड़ेंगे।
सप्त क्षेत्र में दान करेंगे, सप्त स्थान को प्राप्त करेंगे।

जिनवाणी का श्रवण करेंगे, श्रवण करेंगे, भजन करेंगे।
गुरुजनों का सम्मान करेंगे, गुरु की निन्दा नहिं सुनेंगे।

भक्त से भगवान बनेंगे, प्रभु की भक्ति नित्य करेंगे।
सिनेमा नाटक नहिं देखेंगे, होटल में खाना बन्द करेंगे।

पंच उदम्बर त्याग करेंगे, अष्ट मूलगुण-धारण करेंगे।
सब से पहिले जैन बनेंगे, फिर हम जिन बनेंगे।

तीन मकार का त्याग करेंगे, पच पापों को नित्य तजेंगे।
यज्ञोपवीत धारण करेंगे, रत्नत्रय को नहिं भूलेंगे।

❋ ❋ ❋

**एकः करोति कर्माणि, भुङ्क्ते चैकोऽपि तत्फलम्।
एकोऽपि जायते नूनमेको याति भवान्तरम्॥**

भरताष्टक

हे भरतसिन्धु! आचार्य नमोस्तु तुभ्यं,
हे शान्तमूर्तिगुणसिन्धु! नमोस्तु तुभ्यं।
श्री विमलसागर सुशिष्य नमोस्तु तुभ्यं,
भव्याब्ज सूर्य! गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं॥१॥

हे कीर्ति प्राप्त जगदीश! नमोस्तु तुभ्यं,
हे मुक्तिप्राप्त सुप्रणेतृ! नमोस्तु तुभ्यं।
आचार पञ्च परिपाल! नमोस्तु तुभ्यं
भव्याब्ज सूर्य! गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं॥२॥

दशरथ सुरामसमकीर्ति प्रसिद्धिरासीत्,
श्री एकलव्य समभक्ति तवास्ति स्वामिन्।
हे विमलसिन्धु समकीर्ति जगत्प्रसिद्धं,
भव्याब्ज सूर्य! गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं॥३॥

हे धीर वीर सुगंभीर सुशास्त्रज्ञानिन्,
संसार सागर सुतारण सेतु तुल्य।
मोहान्धनाशक प्रदीप नमोस्तु तुभ्यं,
हे भरतसिन्धु! आचार्य नमोस्तु तुभ्यं॥४॥

ज्ञानी अभीक्ष्ण परमात्म सुतत्त्वबोध,
हे शुद्ध बुद्ध सुविशुद्ध निजात्मभोग।
क्षेमंकर स्वहितकारक मुख्य सूरे,
हे भरतसिन्धु! आचार्य नमोस्तु तुभ्यं॥५॥

समतासखी तव मुखाब्ज सदासुमाति,
द्वेषी न राग समतामय वीतरागिन्।
बोधि समाधिप्रिय निर्मल निर्विकारिन्,
आचार्यवर्य्य गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं॥६॥

हे सहज मूर्ति! अविकार नमोस्तु तुभ्यं,
स्याद्वाद सूर्य! यतिवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं।

हे चन्द्रकान्तिसमदेह! नमोस्तु तुभ्यं,
हे भरतसिन्धु! आचार्य नमोस्तु तुभ्यं॥७॥
शासकप्रधान जिनशासन शिष्ट नेतृ,
हे धीर-वीर सुगंभीर नमोस्तु तुभ्यं।
विद्यासुप्राप्त गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं,
हे भरतसिन्धु! आचार्य नमोस्तु तुभ्यं॥८॥

❋ ❋ ❋

भरत–स्तवन

भक्तामर प्रणत इन्द्र नरेन्द्र सारे,
उद्योतकं मुकुट डारे पदाब्ज थारे।
सम्यक् प्रणम्य तव पाद युगं सुभावा
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥१॥

जो स्तुत्य हैं, सकल वाङ्धृदेव से भी,
बुद्धि प्रबोधकर पंडित चक्र से भी।
सूरि प्रधान जग में तुम चित्तहारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२॥

बुद्धिप्रहीण करता गुणगान तेरा,
वाचाल हूँ चरण में करता बसेरा।
ज्ञान प्रकाश नहि धी मय है उजेरा,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३॥

वाचस्पति प्रकट बोध सु ज्ञान धारा।
वाणी नहीं उस समीप गुणों अगाधा।
नाना तपो गुण समूहन हैं पिटारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥४॥

ज्ञानी नहीं बुधजनों कृत हासधामा,
भक्ति प्रकृष्ट करती मुझको वैचाला।
माना यही स्तवन सत्चित को हरेगा,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥५॥

हे शान्त मूरत गुरो तुम पापभंजा,
पीड़ा हरे भव दुःखों तव पाद पद्मात्।
नामावलि तव गुणों भव पाप हारे।
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥६॥

सूर्यांशु नाश करती जिमिकाल रात्रे,
प्रोत्तारका गुरु वचावलि तापहारे।
संतानबद्ध वसुकर्म तुरन्त क्षारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥७॥

प्रारम्भ है स्तव यही गुरुदेव तेरा,
निर्दोष है गुण मणीमय पाद तेरा।
सूर्य प्रकाश न तहाँ दिपिका उजारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥८॥

सूर्य नहीं किरण भी कमलों खिलाती,
है प्रेरणा तव मुखाब्ज सदा सुभाती।
जाओ कहीं पर सदा तुम हो हमारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥९॥

जो दीन हीन शरणागत तेरे आता,
पाता वही सुख सदा दुःख ना असाता।
भव्याब्ज ही तव गुणामृत पान पीते,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥१०॥

सूर्य कहूँ गुरु तुझे वह आग धारे,
ऊगे प्रभात संध्या वह ढल ही जावे।
तेरा प्रकाश अवछिन्न सु ताप हारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥११॥

है चन्द्रमा जगत में सुख का प्रदाता,
फीका पडे वह दिवाकर तेज पाता।
हे आर्य! चन्द्रसम! अपूर्व सुसौख्य दात्रे,
जीओ सदा भरत सूरि, सु हो सहारे ॥१२॥

दीपावली तब जले जब वर्ति पावे,
घृत प्रधार वह वात से बूझ जावे।
है ज्ञान दीप तव वात बुझा न पावे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥१३॥

निर्मापि देह जिन शान्त अणू महासे,
पाते न और कण भी जग में न वैसे।
हे शान्त सन्त जग में तुम हो निराले,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥१४॥

पाया सु आश्रय गुरो जिन आन तेरा,
घूमे न लोक वह चौदह राजु फेरा।
जाए कहीं डर नहीं उसको किसी से,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥१५॥

देवांगना सम सुसुन्दर कामिनी भी,
चारू मनोहर सुचित्त चुरा न पाई।
हे कामदेव विजितारि सु ब्रह्म प्यारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥१६॥

हे मूर्तिमान तव कीरत गा रही है,
विद्या विभूति जग में तव छा रही है।
सत्यानुशासन सु लांछन एक धारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥१७॥

मर्याद राम पुरुषोत्तम सी प्रसिद्धा,
भक्ति प्रगाढ़ एकलव्य सम सुसिद्धा।
आचार्यश्री विमल सिन्धु सुशिष्य न्यारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥१८॥

निर्दोष दृष्टि जग में पर दोष ढाका,
ग्राही सदा प्रगुण भाव सु आत्म चाखा।
हे दृष्टि निर्मल गुरो गुण पूज्य थारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥१९॥

माता **गुलाब**! हुई पूज्य सुकुक्षि थारी,
जन्मे सुलाल **किसना** घर **'छोटे'** भारी।
भू धन्य-धन्य वह ग्राम **लोहारिया** रे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२०॥

भक्षा कुकर्म भव बंधन में रुलाया,
आए पदाब्ज तव रक्षक देव पाया।
माता पिता जगत में तुम हो हमारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२१॥

मानें सुधीजन तुमें शिव का प्रदाता,
पाते यहाँ मुकतिनार सुशान्तिदाता।
हे मार्गदर्शक गुरो! शिवपंथ डारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२२॥

आदित्य रश्मि सम कान्ति तमो विनाशा,
अन्यत् नहीं तुम समा मम साधु भासा।
भक्ति प्रगाढ़ तव शक्ति यश: बढ़ावे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२३॥

शान्त प्रशान्त गुरु धीर गंभीर धारा,
वाणी मनोहर सुधा सरसाति सारा।
ब्रह्मा महेश्वर सुविष्णु ममातमा के,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२४॥

देवेन्द्र पूजित अत: तुम ईश मेरे,
शान्ति प्रदायक सुशंकर तुम्हि मेरे।
मार्ग प्रबोधक शिवालय धातृ मेरे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२५॥

पीड़ाहरा गुरुवरा चरणों नमूँ मैं,
पृथ्वीतलामल सुभूषण को नमूँ मैं।
दैगम्बरा यतिवरा तुमको नमूँ मैं,
संसार सागर सुशोषक को नमूँ मैं॥२६॥

हे शोकहार अतएव अशोक वृक्ष,
शोका मती हम हरो चरणों पखारें।
भक्ति प्रसाद तव शोक न पास आते,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२७॥

आचारपंच तुम पालक धर्मनेता,
दीक्षादिदान शुभ मुक्ति पथ प्रणेता।
सिंहासनाधिपति मोहनी सिंह मारे
जीओ सदा भरतसूरि सु हो सहारे॥२८॥

गुप्तित्रय प्रकट हो तुममें विभाती,
ये तीन छत्र बन बन्धन को मिटाती।
छाया गहे शरण में हम दास थारे
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥२९॥

भामण्डलासम प्रदीप्त सु दीप्ति धारे,
आभा यही भविक के भव पाय क्षारे।
आओ गहें शरण को हम भक्त थारे
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३०॥

वक्ता प्रकृष्ट तुम दीप समा सुभाते,
वाणी सु दिव्य जिनकी सबको रिझाते।
संसार सागर तिरे शुभ बोध पाते,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३१॥

भक्तिभरी सुमन अञ्जलि आज देते,
जीओ हजार युग शाश्वत भाव ये हैं।
पुष्पाञ्जलि यह समर्पित भाव से है,
जीओ सदा भरत सिन्धु सु हो सहारे॥३२॥

छोड़ो प्रमाद चरणों तुम शीघ्र आओ,
मुक्तिप्रिया वरण को यदि आप चाहो।
धर्म प्रभावक सु दुंदुभि गा रही है,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३३॥

आ आ नमें चरण में तव भक्ति पंक्ता,
शोभा यहाँ चँवर सी लगती अनूपा।
ज्यों-ज्यों झुके चरण में सुखशान्ति पाते,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३४॥

पादारविन्द जिस भू पर भी पड़े हैं,
धन्या धरा प्रशुभ तीर्थ बनी तभी से।
तारो तरावन महानभ में सितारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३५॥

जैसी विभूति पद की तुम में विभाती,
अन्यान्य में उस समा मिलने न पाती।
कांच प्रभा मणि समान हि काहु भासे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३६॥

आसक्त क्रोध जिससे प्रमदा झरे है,
पीड़ा करे भ्रमर युक्त करी उसी से।
है नाम आश्रय जपे भय भाग जाए,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३७॥

सर्पादि का विष चढ़े बहु दुःख पावे,
गारूड मन्त्र तव नाम से प्राण धारे।
आचार्यश्री भरत हो मणिमंत्र सारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३८॥

शत्रु प्रहार करते लड़ते-लड़ाते,
पूंजी सभी लुट चले अरु मार डारे।
ले नाम आप वह संकट से छुटे रे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥३९॥

आये छलांग भर सिंह सु नाश कारा,
भागे निप्राण तज वो जग में विचारा।
है नाम काल उसमें तुम ही सहारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥४०॥

कर्माग्नि पीड़ित दिखे यह लोक सारा,
है अंधकार दिखता चहुँ ओर भारा।
प्रातः सु सिद्धि करता तव नाम तारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥४१॥

डूबी जहाज सागर नहीं है किनारा,
मच्छादि जन्तु भखते नहि है सहारा।
आचार्यदेव बस नाम ही पार तारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे॥४२॥

रोगी पड़ा विकट रोग महा सतावे,
है वेदना अति असाध्य जलोदरा रे।
मन्त्र प्रगाढ़ तव नाम से रोग छारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥४३॥

बेड़ी पड़ी तन पे बन्धन लोह भारी,
पापी महा हिल नहीं सकता जरा भी।
आशीष पा गुरुवरा वह पाप झारे,
जीओ सदा भरतसूरि सु हो सहारे ॥४४॥

प्रोत्तारका जगत से समयानुसारे,
है साधना समय की प्रयमी सुसाधे।
बुद्धि प्रबोध धरती निज आत्म प्यारे॥
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥४५॥

मानी न मान धरते मन में कदाचित्,
पे स्वाभिमान तजते न मनो कदाचित्।
प्रकृष्ट आगम सुचक्षु विप्राप्त तेरे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥४६॥

हाथी दवाग्नि अहि सिंह कुयुद्ध सारे,
बंध प्रगाढ़ डुबते जलमें बिचारे।
कष्टों विहीन बनते सब कष्ट क्षारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥४७॥

आचार्यदेव तव भक्ति सु पुष्पमाला,
स्याद्वाद सूक्तिमय सुन्दर भक्तिमाला।
बोध प्रधान करती शिववास धारे,
जीओ सदा भरत सूरि सु हो सहारे ॥४८॥

❋ ❋ ❋

वन्दे गुरुवरं

आओ सुनाएँ हम शुभ गाथा, भरतसिन्धु आचार्य की।
ज्ञानदिवाकर शिष्यशिरोमणि, भारतभू के लाल की॥
वन्दे गुरुवरं।

विमल सिन्धु के पात्र स्नेही, तुमही एक बन पाये थे।
छाया में रहकर गुरुवर की, सत्ताईस वर्ष बिताये थे॥
मर्यादा नेत्रों में रहती, गुरु-शिष्य के ज्ञान की।
ज्ञानदिवाकर शिष्यशिरोमणि, भारत भू के लाल की॥
वन्दे गुरुवरं॥१॥

ग्राम लोहारिया जन्म लिया था, मात गुलाबी के नन्दन।
किशनलालजी पिता तिहारे, किया प्रकृति ने वन्दन॥
छोटेलाल हुआ नाम तुम्हारा, सब सुख गुण के खान की।
ज्ञानदिवाकर शिष्यशिरोमणि, भारत भू के लाल की॥
वन्दे गुरुवरं॥२॥

'छोटे' घर में सबसे छोटे, सब जन के ये प्यारे थे।
मात-पिता अनुरागी इनके, पर ये सदा विरागी थे॥
बने विरागी सब कुछ त्यागी, क्षुल्लक व्रत के आन की।
ज्ञानदिवाकर शिष्य शिरोमणि भारत भू के लाल की॥
वन्दे गुरुवरं॥३॥

शान्तिसागरजी नाम दिया था, सदा शान्ति रस बहता था।
छोटे क्षुल्लक सबसे प्यारे, चोरों का मन मोहा था॥
कुए में डाला था इनको, रखी शान तब धर्म की।
ज्ञानदिवाकर शिष्यशिरोमणि भारत भू के लाल की॥
वन्दे गुरुवरं॥४॥

मुनि दीक्षा गुरु विमल से पाई शिखर सम्मेद महान् जी।
गुरु हृदय में वास किया तुम, ज्यों पुष्पन में सुवास जी॥
पीछे-पीछे चले गुरु के, जैसे दशरथ राम जी।
धन्य-धन्य वह घड़ी धन्य थी, गुरु शिष्य के साथ की॥
वन्दे गुरुवरं॥५॥

भरत सिन्धु कहलाकर तुमने, सद् शिक्षा का पाठ दिया।
उपाध्याय पदवी का गौरव, गुरु से तुमने प्राप्त किया॥
धन्य हुआ जैन संघ तभी से, जिनवाणी रस पान की।
ग्रन्थ प्रकाशन धूम मचाई, जय जिनवाणी मात की॥
वन्दे गुरुवरं॥६॥

विमल सिन्धु के पदासीन हो, धर्मध्वजा तुम फहराई।
उपसर्ग परीषह के जेता बन, कर्मक्षयी बन जय पाई॥
सामायिक की करी प्रतिज्ञा, प्राण उसी में विलय भए।
धरी समाधि क्षेत्र अणिन्दा, भरतसिन्धु निजरूप भए॥
वन्दे गुरुवरं॥७॥

सङ्कल्प एव जन्तूनां,
कारणं बन्धमोक्षयोः।
वीतरागोऽपवर्गस्य,
सरागो बन्धकारणम्॥

बिन्दु से सिन्धु

(रचयिता : श्री राजेन्द्र जैन)

कोई पुण्यवान ही विमल-पदों के चरणों की रज पाये।
चरण धूलि पाकर बिन्दू से, भरत सिन्धु कहलाए।
आचार्य विमलसागर जी की जय

गुरु-शिष्य की परम्परा का यह प्रत्यक्ष प्रमाण,
आचार्य विमलसागर ने जिस दिन कीना महाप्रयाण।
शिष्योत्तम आचार्य बने गुरुवर का पन्थ पुजाये,
चरण धूलि पाकर बिन्दू से भरत सिन्धु कहलाए॥१॥
आचार्य भरतसागर जी की जय

महाव्रती बन ब्रह्मचर्य की अक्षय दौलत पाई,
तपा तपस्वी तपचर्या से आभा मुख पर छाई।
दिव्य रूप की शोभा देखो हाऽऽऽऽ वरणी न जाए,
चरण धूलि पाकर बिन्दू से, भरत सिन्धु कहलाए॥२॥
आचार्य भरतसागरजी जी की जय

सरल सौम्य वाणीभूषण गुरुवर हैं ज्ञानदिवाकर,
श्रावकजन सब धन्य हुए हैं, ऐसे गुरुवर पाकर।
समता सहित विरागी, अनुशासन का पाठ पढ़ाए,
चरण धूलि पाकर, बिन्दू से, भरत सिन्धु कहलाए॥३॥
आचार्य भरतसागर जी की जय

महासन्त सदियों में केवल, कभी-कभी आते हैं,
गुरुसेवा और निष्ठा से, आचार्य का गौरव पाते हैं।
चल **राजेन्द्र** श्रीगुरु-चरणन में, होऽऽऽऽ चलकर शीश नमाएँ,
चरण धूलि पाकर बिन्दू से भरत सिन्धु कहलाए॥४॥
आचार्य विमलसागर जी की जय।
आचार्य भरतसागर जी की जय।

❋ ❋ ❋

अमर कहानी

(रचयिता : श्री राजेन्द्र जैन)

यह गाथा-यह गाथा केवल आधी सदी पुरानी है।
आचार्य भरतसागर की अमर कहानी है॥
मरुधर माँ ने सदियों से अगणित योगी जनमाये,
सुरभित गुलाब की सौरभ, दुनिया में लेकर आये।
माता का नाम **गुलाबी**, श्री **किशनलाल** घर जाये,
लोहारिया ग्राम में जन्मे, अरु **छोटेलाल** कहाये।
उस 'छोटेलाल' के जन्म की कथा सुनानी है,
यह गाथा केवल.॥१॥

नौ भाई-बहनों में छोटा, बन गया नयन का तारा,
विद्यालय हो या प्रांगण छोटे था सब को प्यारा।
वो धर्मपरायण बालक करने आया उजियारा,
जब युवा हुआ अंतर में, जगी देश प्रेम की धारा।
माँ से जब आज्ञा मांगी, बंदूक उठानी है,...
यह गाथा केवल.॥२॥

उत्साह मिला ना माँ से, उस सैनिक का मन टूटा,
माँ की सेवा करने को, माँ की ममता से रूठा।
हुई धैर्य की कठिन परीक्षा, फिर भी कभी धैर्य न टूटा,
वैराग्य जगा अंतर में, वह लावा बन कर फूटा।
मन-ही-मन अब सोचे, मुझे श्रमण नीति अपनानी है,
यह गाथा केवल.॥३॥

निर्लिप्त कमलवत् रहकर, इक सेठ की नौकरी कीनी,
कर्त्तव्यनिष्ठ ने उसको, अपनी सेवाएँ दीनी।
आचार्य विमलसागर ने, अन्तर की भावना चीन्ही,
छोटे को शिष्य बनाया, वैय्यावृत्ति तब लीन्ही।

घटनाक्रम कैसे बदला, यह बात बतानी है,
यह गाथा केवल. ॥४॥

आचार्य विमलसागर से व्रत ब्रह्मचर्य का धारा,
हो गये बाल ब्रह्मचारी अरु काम से किया किनारा।
दो प्रतिमा धारी बनकर, जिनधर्म का लिया सहारा,
बाँसवाड़ा की धरती पर, तब फैला नया उजारा।
हठयोगी ने तब योग, गहने की पक्की ठानी है,
यह गाथा केवल. ॥५॥

अजमेर की पुण्य धरा पर, वो पुण्य दिवस था आया,
क्षुल्लक दीक्षा से पहले छोटे को गया सजाया।
आचार्य के करकमलों से, उसे क्षुल्लक गया बनाया,
उन्नीस वर्षीय किशोर ने, तब तजी जगत की माया।
क्षुल्लकश्री, क्षुल्लक शांति सागर की कथा सुनानी है,
यह गाथा केवल. ॥६॥

देखे जो स्वर्णाभूषण, डाकुओं का मन ललचाया,
जब कुछ न मिला क्षुल्लक से, कुए् में उसे गिराया।
कुए् में गिरे क्षुल्लक ने अपना पद ना बिसराया,
महामंत्र जपा क्षुल्लक ने, यमराज का शीश झुकाया।
मनोयोग से सोचे, मुझे मुनिदीक्षा पानी है॥
यह गाथा केवल ॥७॥

सम्मेद शिखर पर्वत पे, मुनिदीक्षा गुरु से पाये,
आचार्य विमलसागर के, पदचिह्नों को अपनाये।
सोनागिरि के प्रांगण में मुनि उपाध्याय कहलाये,
अध्ययन और चिंतन से स्वर्णिम अध्याय बनाये।
वे मुनि भरतसागरजी सर्वगुणखानी हैं,
यह गाथा केवल. ॥८॥

महाराष्ट्र की पुण्य धरा पर, पाया पद ज्ञानदिवाकर,
हे प्रशान्त मूर्ति! सुखकारी! हे दूरदर्शी! करुणाकर।
अभिवन्दन ग्रन्थ समर्पित, किया वात्सल्य रत्नाकर,
सर्वस्व किया तब अर्पित, श्रद्धा और विनय चढ़ाकर।
वो महाग्रन्थ गुरुवर की, अमर निशानी है,
यह गाथा केवल. ॥९॥

आचार्य विमलसागरजी, जब स्वर्ग लोक पधारे,
मुनि भरत हुए विमलासन, तब पद आचार्य संभारे।
आचार्य भरतसागर जैनागम के रखवारे,
सर्वांग विकास हुआ है, है धन-धन भाग्य हमारे।
राजेन्द्र चलो तुम सत्वर गुणमाला दोहरानी है,
यह गाथा केवल. ॥१०॥

अन्यच्छरीरमन्योऽहमन्ये सम्बन्धिबान्धवाः।
एवं स्वं च परं ज्ञात्वा स्वात्मानं भावयेत्सुधीः॥

आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की पूजन

आचार्यरत्न श्री भरतसिन्धु जी, विमलसिन्धु के शिष्य भले,
चारित्र रथ पर दृढ हो करके, संयम पालन को निकले।
पश्चाचार का पालन करते, गुरुचरणों के भ्रमर रहे।
नम्र स्वभावी प्रशान्तमूर्ति गुरु, जन-जन के उपकारी हुए।
भरतसिन्धु आचार्य श्री, हृदय विराजो आन।
आह्वानन स्थापन करूँ, कोटि-कोटि प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य भरतसागर यतीन्द्र! अत्र अवतर! अवतर! आह्वानं।
ॐ ह्रीं श्री आचार्य भरतसागर यतीन्द्र! अत्र संवौषट् ठः ठः ठः स्थापनं!
ॐ ह्रीं श्री आचार्य भरतसागर यतीन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

क्षीरोदधि का प्रासुक जल ले, कञ्चन झारी में भर ल्याय।
जन्मजरामृत्यु रोग निवारण, त्रयधारा छोड़ूँ तत्काल॥
गुरु चरणन के भक्ति पुष्प श्री, भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें॥१॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.॥१॥

भव आताप से व्याकुल होकर, गुरुवर चरणों में आये।
शान्त दशा को पाने कारण, चन्दन लेपन कर धाये॥
प्रशान्तमूर्ति आचार्यरत्नश्री, भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें॥२॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दन नि.॥२॥

अमल अखंडित तन्दुल लेकर, पुञ्ज चढ़ाने आये हैं।
अक्षय पद की प्राप्ति हेतु, हम चरणन शीश झुकाये हैं॥
ज्ञान दिवाकर आचार्यरत्न श्री, भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें॥३॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षत नि.॥३॥

कमल केतकी बेल चमेली, गुलदस्ता ले आये हैं।
कामबाण विध्वंसन कारण, चरणों पुष्प चढ़ाये हैं॥

बाल ब्रह्मयति आचार्यरत्न श्री भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. ॥४॥

घेवर बरफी गुँजा फेनी, कञ्चन थाल सजाये हैं।
क्षुधा वेदना से अकुलाया, नाशन भेंट चढ़ाये हैं॥
परम तपस्वी आचार्यरत्न, श्री भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि. ॥५॥

कञ्चन मणिमय दीपक लेकर, आरती करने आये हैं।
मोह तिमिर के नाशन कारण, अर्पण करने आये हैं॥
ज्ञान ध्यान लवलीन सुशासक, भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें ॥६॥

ॐ ही श्री भरतसागर आचार्येभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि. ॥६॥

अष्टकर्म से जकड़े हैं प्रभु, अष्ट गुणों को न पाये।
धूप दशांगी लेकर गुरुवर, अष्टम क्षिति पाने आये॥
मौनाभ्यासी आचार्यरत्नश्री, भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें ॥७॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. ॥७॥

तिलगोजा खुरबाणी लेकर, श्रीफल भेंट चढ़ाये हैं।
भव समुद्र से अकुलाये हम, मोक्ष महाफल पाये हैं॥
वाणी भूषण मार्ग प्रदर्शक, श्री भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल नि. ॥८॥

चन्दन जीवन अक्षत लेकर, आठों द्रव्य सजाये हैं।
तारण-तरण गुरु-चरणों में, भेंट चढ़ाने आये हैं॥
ज्ञान दिवाकर आचार्यरत्न श्री, भरत सिन्धु के गुण गावें।
आधि व्याधि सब दूर भगाकर, भव वन में फिर नहि आवें ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. ॥९॥

❋ जयमाला ❋

दोहा

कमल केतकी पुष्प अरु, हरसिंगार प्रसून।
पुष्पाञ्जलि अर्पण करूँ, होय कर्म मल दूर॥

पुष्पाञ्जलि

हे भरत सिन्धु गुरुवर चरणों में, शीश झुकाने आये हैं।
भववन में भटकेफिरे हुए, हम शान्ति पाने आये हैं॥
वह धन्य लोहारिया ग्राम जहाँ, श्री छोटेलाल जी आये हैं।
और मात गुलाबी धन्य हुई, जिन ऐसे प्रसून जाये हैं॥
है धन्य पिताश्री किशनलाल, जिनकी कीर्ति फहराई है।
है धन्य-धन्य भारतभूमि जहाँ, संत शिरोमणि आये हैं॥१॥

करते बिहार श्री विमलसिन्धुजी, ग्राम लोहारिया आये थे।
सरल शांत मुद्रा लख करके, छोटे बहु हरषाये थे॥
बोले छोटे गुरुवर! सुन लो, अरजी लेकर मैं आया हूँ।
तव चरणों की सेवा करने, मैं पुण्य कमाने आया हूँ॥
गुरुवर ने हर्षित होकर के, वात्सल्य दृष्टि से देखा है।
आशिष पाई जब गुरुवर की, "छोटे" संघ में तब आये हैं॥२॥

उन्नीस वर्ष की उम्र भई तब, बालक संघ-सेवा करते।
अजमेर नगर जब संघ आये, क्षुल्लक दीक्षा गुरुवर देते॥
दीक्षा समय जो सजा दूल्हा, सब राज ठाट से शोभित था।
सुकुमाल सी देह सजी हुई, चोरों के मन में मोहित था॥
करते बिहार जब संघ चला, चोरों ने इन्हें उठाया था।
बालक धन दे दो हमें सभी, जीवन की अब कुछ खैर नहीं॥३॥

कुए में डाला था इनको, सब पूर्व कर्म की लीला थी।
मीनों ने पैर भी खाये थे, फुंकार सर्पों ने मारी थी॥
बस णमोकार का जाप किया, तब संकट से बच पाये थे।
जब घंटे सात जु बीत चुके, कुए से इन्हें निकाले थे॥

जय-जय की ध्वनि गूँजी नभ में,और ओठ सभी मुस्काये थे।
सम्मेदशिखर में जाकर के, मुनि दीक्षा को तब पाये थे॥४॥

अब भरत सिन्धु कहलाये, आगे को कदम बढ़ाये हैं।
संघस्थ सभी साधुगण को, सत् शिक्षा पाठ पढ़ाये हैं॥
करते बिहार तब संघ सभी, सोनागिरजी पर आये हैं।
गुरु विमलसिन्धु से तब तुमने, पद उपाध्याय को पाये हैं॥
जिन आगम के सच्चे ज्ञाता, और उपदेष्टा भी भारी हैं।
लख के प्रशान्त मुद्रा इनकी, तब कर्म कटें दुखकारी हैं॥५॥

जिनमुद्रा शान्त अतिभारी, जग में कीर्ति यह न्यारी है।
नित चलते थे गुरु के पीछे, शोभा इनकी तो भारी है॥
पौष वदी द्वादशी शुभ दिन में, आचार्य विमल समाधिस्थ हुए।
तिथि माघ सुदी दसमी शुभ दिन, उपाध्याय भरत-पदासीन हुए॥
नित नमन गुरु आचार्यरत्नजी, भरत सिन्धु बलिहारी है।
नित चलें आपके कदमों पर, बस इच्छा यही हमारी है॥६॥

तिथि कातिक कृष्णामावस्या, इक धर्मसूर्य जब अस्त हुआ।
जन-जन का प्रिय वह गुरु त्राता, सबसे नाता तज दूर हुआ॥
सच तो यह कहना होगा, वे शुद्धशीलव्रतधारी थे।
उपसर्ग परीषह के जेता, वे गुण आवश्यक धारी थे॥
हँसते-हँसते वे कर्मों के, नाटक के द्रष्टा बने रहे।
नित नमन करूँ गुरु चरणों में, जो वीर मरण कर वीर बने॥७॥

दोहा

छत्तीस गुणों से भूषित तुम, आचार्य हो गणराज।
कोटि-कोटि वन्दन करूँ, तारण-तरण जिहाज॥

ॐ ह्रीं श्री भरतसागर आचार्येभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

कमल गुलाब चम्पा कली, खिल खिल महकें सार।
भरत सिन्धु चरणों नमें, होवे भव से पार॥

(पुष्पाञ्जलिं)

आरती

भरतसागर आचार्य आज थारी आरती उतारूँ।
आरती उतारूँ थारी मूरत निहारूँ ॥टेक॥
ग्राम लोहारिया जन्म लियो है, मात गुलाबी धन्य कियो है,
किशनलाल के लाल, आज थारी..... ॥१॥

बाल ब्रह्मचारी जग हितकारी, महिमा भारी जग से न्यारी,
विमलसिन्धु गुणधार, आज थारी..... ॥२॥

ज्ञानी, ध्यानी, निर अभिमानी, शान्त सुधामृत के हो दानी,
वाणी है सुखकार, आज थारी..... ॥३॥

कोमल काया छोड़ी माया, जग का नश्वर सुख ना भाया,
छोड़ा सब घर बार, आज थारी..... ॥४॥

भावभीनी मुद्रा अति प्यारी, मुक्ति वधू के तुम अनुरागी।
रत्नत्रय गुणधार, आज थारी..... ॥५॥

क्षमा सखी तुमको है प्यारी, गुरु गरिमा तुमसे जग जानी,
करो जगत उद्धार, आज थारी..... ॥६॥

स्वर्ण रत्नमय आरती भाई, केवलज्ञान मिले सुखदाई।
झुन-झुन आरती गाय, आज थारी..... ॥७॥

माघ सुदी दसमी सुखकारी, बने आचार्य गुरु हितकारी।
युग-युग रहे तेरा नाम, आज थारी..... ॥८॥

❋ ❋ ❋

भरत वाणी

(प्रवचन)

❋ द्वादश अनुप्रेक्षा ❋

- प्रवचन -

भरत वाणी : ३०८-३१२

१

वसुधा काहू की न रही

आचार्य कार्तिकेय स्वामी लिखते हैं-

जं किंचि वि उप्पण्णं, तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि, ण य किंचि वि सासयं अत्थि।।४।।का.अ.।।

जो भी कुछ उत्पन्न हुआ है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसका मरण नियम से होता है। पर्यायरूप से कोई भी नित्य या अविनाशी नहीं है। पर्यायरूप से चाहे वह स्वभावपर्याय हो या विभावपर्याय हो, कोई भी वस्तु पर्याय मात्र से अविनाशी नहीं हो सकती। वस्तु द्रव्यत्व गुणत्व की अपेक्षा कथञ्चित् अर्थ नहीं लेना। सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य इस जगत् में कोई भी नहीं है।

वसुधा–वसु धा = नाना रत्नों को धारण करने वाली पृथ्वी 'वसुधा' है। मन्दर मेरु पुराण में आचार्यदेव ने आठ वसुधा–पृथ्वी कही है– १. निगोद २. सप्तनरक ३. भवनवासी देवों की भूमि ४. व्यन्तरवासी देवों की भूमि ५. मध्यलोक ६. ज्योतिर्लोक ७. देवलोक और ८. सिद्धभूमि। अन्य आचार्यों ने सात नरकभूमि और अष्टम सिद्धभूमि ऐसे भी 'वसुधा' आठ मानी हैं। मुमुक्षुजीवों का प्रतिदिन एक ही पुरुषार्थ रहता है। ''अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये'' प्रतिदिन पूजा में इन पंक्तियों को दोहराते भी हैं।

आज का विषय ''वसुधा काहू की न रही'' चिन्तनीय है। गंभीर है। आज इसी पर अपना चिंतन, विचार-विमर्श चलेगा।

जैनशासन में 'यतिवृषभ' नामक एक महान् आचार्य हुए, जिन्होंने 'तिलोयपण्णत्ति' नामक एक महान् ग्रन्थराज की रचना की। इस ग्रन्थ में मध्यलोक

में भरतक्षेत्र का चित्रण करते हुए यहाँ की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा– भरतक्षेत्र में बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उसमें १० कोड़ाकोड़ी सागर का उत्सर्पिणी काल और १० कोडाकोड़ी सागर का अवसर्पिणी काल होता है। उत्सर्पिणी काल में जीवों की आयु, उत्सेध, ज्ञान आदि की वृद्धि होती है तथा अवसर्पिणी काल में जीवों की आयु, ज्ञान, उत्सेध आदि की हानि होती है। १० कोडाकोडी सागर में ४ कोड़ाकोड़ी सागर का काल उत्तम भोगभूमि का, ३ कोड़ाकोड़ी सागर का काल मध्यम भोगभूमि, २ कोडाकोड़ी सागर का काल जघन्य भोगभूमि, ४२ हजार वर्ष कम १ कोडाकोडी सागर का काल कर्मभूमि का। यह चतुर्थकाल कहलाता है। इस चतुर्थकाल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण व बलदेव ६३ शलाका पुरुष व १६९ (६३ शलाका पुरुष और २४ तीर्थंकरों के माता-पिता, १४ कुलकर, २४ कामदेव, ११ रुद्र व ९ नारद) महापुरुष होते हैं। राजा-महाराजाओं से शोभायमान धन-धान्य, सोना, चाँदी, हीरा-पन्ना आदि रत्नों को धारण करने वाली इस वसुधा पर अनेक राजा-महाराजा, चक्रवर्ती आदि आये और सब चले गये, सबने सोचा पृथ्वी मेरी है, एक-एक इञ्च वसुधा के लिए विवाद होते रहे, पर यह किसी की नहीं रही–

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम-रु लक्ष्मण जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा अरु सम्पत्ति सगरी।
कहाँ गये वे रंग महल अरु सुवरण की नगरी॥
नहीं रहे वे लोभी कौरव जूझ मरे रण में।
गये राज तज पाण्डव वन में अग्नि लगी तन में॥
मोहनींद से उठ रे चेतन! तुझे जगाने को।
हो दयालु उपदेश करें गुरु बारह भावन को॥

भव्यात्माओ! आदि ब्रह्मा वृषभदेव के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरतेश ने इसी भूमि को अपना बनाने के लिए ६० हजार वर्ष दिग्विजय में पूर्ण किये। 'मैं चक्री हूँ, मैने षट्खंड को जीत लिया' इसी अहंकार से चक्री भरत विशाल वृषभाचल पर्वत पर अपने दिग्विजय की प्रशस्ति लिखने के लिए पहुँच गये। वहाँ जाते ही क्या देखते हैं?–"हे भरत! तुम्हारे जैसे अनेक चक्रवर्ती इस वसुन्धरा

पर हो चुके हैं।'' वृषभाचल पर भरतेश को अपनी प्रशस्ति लिखने के लिए स्थान नहीं मिला। पुराने नामों की लिस्ट ही इतनी लम्बी-चौड़ी लगी हुई थी। चक्री भरत विचारों में डूब गये। उन्होंने कांकिणी यन्त्र से एक पुराना नाम मिटाया और अपनी प्रशस्ति लिखी। यह सब देखकर भी वसुधा को अपना बनाने की ललक में उन्होंने अपने प्रिय भाई बाहुबली के साथ युद्ध की ठानी और जब जल-मल्ल-दृष्टि युद्ध तीनों में हार गये तो उन्हें अधीनस्थ करने की इच्छा से उन पर सुदर्शन चक्र चला दिया। वीर बाहुबली ने क्षणमात्र में भरतेश को पराजित कर 'यह वसुधा काहू की न रही' कह जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। वैराग्य को प्राप्त हुए। उस वसुधा की ओर मुँह फेरकर भी नहीं देखा।

जिस राज्य, जिस वसुधा के मोह में कैकेयी ने भरत को राज्य दिलाया, बडे पुत्र राम व पति-वियोग का असह्य दुख सहा, वह वसुधा भी समय पाकर काल कवलित हो गई। जिस स्वर्ण-लंका को राम ने रावण को जीतकर प्राप्त किया वह लंका भी क्षय को प्राप्त हुई।

यदुकुल में एक दिवस सभी के बल की चर्चा चल रही थी। किसी ने कहा, अभी सबसे बलवान अर्जुन है, किसी ने कहा त्रिखंडाधिपति श्रीकृष्ण बलवान हैं, तो किसी ने कहा बलदेव की यशोपताका फैल रही है वे बलवान हैं। बलदेव ज्ञानी थे। उन्होंने कहा–हम लोगों के कुल में ''तीर्थंकर नेमिनाथ ने जन्म लिया है, तीनों लोकों में अभी तीर्थंकर नेमिनाथ के बराबर अन्य कोई शक्तिशाली नहीं है।'' श्रीकृष्ण चिढ गये। उन्हें अपनी शक्ति का अहंकार जागा, उन्होंने कहा–यदि नेमिकुमार बलवान हैं तो मैदान में आवें, मेरे साथ मल्लयुद्ध करें।

नेमिकुमार तो ज्ञानी, तत्त्वज्ञ महापुरुष थे ही, उनका भी स्वाभिमान जाग उठा। उन्होंने हाथ की एक अँगुली मोड़ ली। टेढी कर ली और श्रीकृष्ण जी से कहा–आप इसे सीधा कर दो। श्रीकृष्ण हँसते हुए नेमिकुमार की अँगुली सीधी करने लगे, बोलने लगे यह कोई बड़ी बात नहीं मेरे लिए तो चुटकी का खेल है, बस, सारी ताकत आजमा चुके पर अँगुली सीधी नहीं कर पाये। हार गये।

श्रीकृष्ण के चेहरे पर उदासी छा गई। द्वेष के बादल मँडराने लगे। इस वीर नेमिकुमार के रहते मैं इस वसुन्धरा का भोग नहीं कर पाऊँगा। बस, मायाजाल रच डाला। नेमिकुमार के विवाह की तैयारी करवा दी। विवाह की मंगल बेला में पशुओं का बन्धन जैसा कुकृत्य किया। बारात दुल्हन के द्वार पर पहुँच भी ना पाई कि करुणा के सागर, अनुकम्पा के अचल पर्वत को यह पशुबन्धन स्वीकार नहीं हुआ। तत्काल संसार के प्रपञ्च को छोड़कर बैरागी बन ऊर्जयन्त पर्वत की ओर बढ़ गये। दिगम्बर मुनि अवस्था धारण कर मुक्ति रमा से विवाह करने का निश्चय कर लिया।

जिस वसुधा को अपना बनाने के लिए श्रीकृष्ण ने तीर्थंकर जैसे महापुरुष के साथ इतना बड़ा मायाजाल रचा वही द्वारिका द्वीपायन मुनि के कोप से क्षणमात्र में भस्मीभूत हो गई। ईर्ष्या की भट्टी में जलने वाले श्रीकृष्ण की भीषण वन में प्यास की आकुलता में जरत्कुमार के एक बाण से ही मृत्यु हो गई। किसका बल, किसका राज्य, ''वसुधा काहू की न रही।''

श्री वादीभसूरि ने क्षत्र-चूड़ामणि ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में तद्भव मोक्षगामी जीवन्धर कुमार के सुन्दर रूप, यौवन और विक्रम का चित्रण किया है। राजा सत्यन्धर जीवन्धर के पिता थे। वे विजया रानी में इतने आसक्त थे कि राज्य की सुध-बुध भी खो बैठे थे। इधर मन्त्री काष्ठांगार ने मौका देखा व राज्य हडपने का निंदनीय कुकृत्य किया। जिस वृक्ष पर खड़ा था उसी को काटने का विचार किया। मन्त्री काष्ठांगार ने विषयासक्त राजा सत्यन्धर पर हमला कर दिया।

राजा विचार मे डूब गये। विजया रानी गर्भवती है। गर्भस्थ पुत्र की रक्षा कैसे हो?

राजा विचारने लगा-यदि रानी को युद्ध की वार्ता मालूम हुई तो नगरी को दुश्मनों से घिरी देख उसको आर्त्तध्यान होगा। आर्त्तध्यान होने से गर्भस्थ बालक की स्थिति बिगडेगी अत: उन्होंने प्रात:काल तो रानी का बहुत सत्कार किया और अपराह्न काल में उसे मयूर यंत्र में बैठाकर श्मशान भूमि में छुड़वा दिया। आचार्यदेव लिखते हैं-

पूर्वाण्हे पूजिता राज्ञी, राज्ञा सैवापराण्हके।
परेतभूशरण्याभूत्, पापाद् बिभ्यतु पण्डिताः॥१॥८७॥

अर्थात् पुण्य के उदय से जिस रानी का राजा ने प्रातःकाल सत्कार किया उसी राजा के द्वारा पापोदय से अपराह्न काल में श्मशान भूमि में भेजी गई, ऐसा जान ज्ञानी लोगों को पाप से डरना चाहिए। संसार में जीवन-मरण-पाप-पुण्य का मुहूर्त किसी ने भी नहीं निकाला। ये कब आ जावेंगे पता नहीं, ऐसा विचार कर **प्रत्येक आत्मा को ममत्व का त्याग करना चाहिए।**

संसार में जितने भी झगड़े हैं, हुए हैं वे तीन बातों को लेकर हुए हैं– १. जर २. जोरू और ३. जमीन। जर कहते हैं–रुपया-पैसा के कारण, जोरू कहते हैं–स्त्री के कारण और जमीन कहते हैं–वसुधा के कारण। 'रामायण' में राम-रावण का युद्ध जोरू को लेकर हुआ, तो कौरव-पांडवों का युद्ध–महाभारत वसुधा को लेकर छिड गया। लोक में कहावत भी प्रचलित है–

भूल गये राग रंग, भूल गये छकड़ी।
तीन चीज याद रही, नोन तेल लकड़ी॥

जीव वस्तु-स्वभाव को भूलकर नित्य को अनित्य और अनित्य को नित्य मान रहा है। अनित्य को नित्य मानने से झगड़ा होता है। यदि नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य मान ले तो सारा झगड़ा समाप्त हो जाता है।

सदा न फूले केतकी, सदा न सावन होय।
सदा न यौवन थिर रहे, सदा न जीवे कोय॥

भारत देश की धारानगरी में एक ब्राह्मण विद्वान् रहते थे। कर्मवशात् उन्हें दरिद्रता ने आ घेरा। दरिद्रता से पीड़ित उस व्यक्ति ने राजा भोज के महल में चोरी करने की इच्छा की। वह राजमहल में जा पहुँचा। अभ्यास न होने से, विवेकी चोर कुछ भी चुरा न सका, रात्रि समाप्त हो गई। प्रातः राजसेवकों की आहट सुनते ही वह चोर राजा भोज की शय्या के नीचे जाकर छिप गया। नियमानुसार महाराज के जागरण के समय समस्त रानियाँ, दासियाँ, सेवक आदि सभी मंगल द्रव्य, झारी आदि लेकर उस शय्या के समीप खड़े, राजा के जागृत

होने का इन्तजार कर रहे हैं। राज्याधिकारी, सेवकजन प्रात:कालीन अभिवादन के लिए राजद्वार पर खड़े हैं, हाथी-घोड़े सुसज्जित हो द्वार के बाहर आ इन्तजार कर रहे हैं।

सहसा राजा भोज जागा, पुण्य का सारा परिकर देख वह हर्ष से भाव-विभोर हो उठा। राजा अपने पुण्य की महिमा देख श्लोक-रचना करने लगा–

चेतोहरा: युवतय: सुहृदानुकूला:
सद्बान्धवा: प्रणयगर्भगिरश्च भृत्या:।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गा:।

मेरे चारों ओर देवाङ्गनाओं के समान रानियाँ खड़ी हैं, आज्ञाकारी सेवक अभिवादन के उत्सुक हो खड़े हैं, मित्र, परिवार आदि सभी अनुकूलताएँ हैं, हिनहिनाते घोड़े, मदमस्त हाथी और सभी सुखप्रद सामग्रियाँ मेरे चारों ओर मँडरा रही हैं। मेरे जीवन में समस्त सुख हैं। ऐसा भाग्यशाली तो दुनिया में और कोई भी नहीं होगा।

इन तीनों पदों को राजा बार-बार दुहरा रहे थे, किन्तु चौथा पद राजा बहुत कोशिश करने पर भी बना ही नहीं पाये। उसी समय ज्ञानी चोर ने पलंग के नीचे बैठे-बैठे चौथा चरण पूरा कर गुनगुनाया–

सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति।।

"नेत्र बन्द हो जाने पर यह सब कुछ ठाट काम नहीं आते।"

आवाज सुनते ही राजा अवाक्/स्तब्ध रह गये। उनका अहं गलित हो गया। उन्होंने उस चोर को बहुत-सा धन आदि देकर सम्मानित किया तथा कहा, भैय्या! तुमने मेरी आँखें खोल दीं। धन्य हैं–

किसी कवि ने लिखा भी है–

राजाओं का राज्य रहा नहीं, नहीं सुल्तानों की शान।
मिट्टी में मिल जायेगा इक दिन, मिट्टी का इन्सान।।

इस परिवर्तनशील संसार में द्रव्य नित्य है, पर्याय अनित्य है। अनित्य में नित्य की भ्रामक बुद्धि ही जीवों के दुख का कारण बनी हुई है। मंगतरायजी

पर्याय की अनित्यता का चित्रण करते हुए लिखते हैं–

सूरज चाँद छिपे निकले, ऋतु फिर-फिर कर आवे,
प्यारी आयु ऐसी बीते पता नहीं पावे।
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बहकर नहीं हटता,
श्वास चलत यों घटे काठ ज्यों आरे सो कटता।
ओस बूँद ज्यों गले धूप में, वा अञ्जुलि पानी,
क्षण-क्षण यौवन क्षीण होत है क्या समझे प्राणी।
इन्द्रजाल आकाश नगर सम जग सम्पत्ति सारी,
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी॥२॥

हमारे देश की संस्कृति है, हमारे तीर्थंकरों, ऋषि-मुनियों ने इस वसुधा को सूखे तृणवत् त्याग दिया और अनित्य की ओर से दृष्टि को हटाकर नित्य की उपासना की। युगादि पुरुष आदिब्रह्मा, नाभिनन्दन वृषभदेव ने इस पृथ्वी का ८३ लाख पूर्व तक भोग किया और आगे **स्वयंभू स्तोत्र** में **समन्तभद्र स्वामी** आपकी स्तुति करते हुए लिखते हैं–

विहाय यः सागरवारिवाससं, वधूमिवेमां वसुधावधूम् सतीम्।

हे प्रभो! युग के आदि में भोगभूमि के बाद स्वर्ग से आकर इन्द्र ने आपका सर्वप्रथम राज्याभिषेक किया, उस वसुधा अर्थात् जो वसु-धन को धारण करने वाली थी फिर भी आपने विरक्त हो इस समुद्रान्त पृथ्वी को भी सुनन्दा और नन्दा/यशस्वती जैसी पतिव्रता स्त्रियों की तरह सहज ही त्याग दिया।

इसी **स्वयंभू स्तोत्र** में आचार्यदेव अरनाथ जिनेन्द्र की स्तुति करते हुए लिखते हैं–

लक्ष्मी-विभव-सर्वस्वं, मुमुक्षोऽचक्रलाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जर तृणमिवाभवत्॥

हे षट्खण्डाधिपते! हे कामदेव! हे तीर्थकर्ता तीर्थंकर महापुरुष! हे त्रिपदधारी महासाधो! भरतक्षेत्र की षट्खण्ड भूमि में फैले विशाल साम्राज्य को, चौदह रत्न व नौ निधियों से प्राप्त अक्षुण्ण सम्पदा को, देवोपनीत सुदर्शन चक्र को, जो आपके साम्राज्य का चिह्न था, आपने विरक्त हो जीर्ण तृणवत् छोड़

दिया। क्योंकि आपने "वसुधा की चपलता का दिग्दर्शन जीवन में कर लिया था अत: आपको यह सब तुच्छ/सूखे तृण की तरह प्रतीत हो रहा था। पर्याय की अनित्यता का भान होने पर आपको विशाल साम्राज्य को छोड़ते हुए रञ्चमात्र भी खेद या पीड़ा नहीं थी। यह है तत्त्वज्ञान का अनूठा रूप।"

आप लोग प्रतिदिन जोर-जोर से पढते हैं–

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार॥

अभी तक इस जीव ने जीने का तो निश्चय किया है पर मरण का निश्चय नहीं किया। संसार का प्रत्येक प्राणी जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने जीवन की सुख-सुविधाएँ जुटाता नजर आता है पर अनिश्चित जीवन की ओर लक्ष्य भी नहीं देता है। जीवन का कोई काल निश्चित नहीं है पर उसकी हर प्रकार से तैयारी करता रहता है और जो मरण निश्चित है उसकी कभी तैयारी नहीं करता है। प्रत्येक व्यक्ति जीना तो चाहता है पर सदा जी नहीं सकता। मरना नहीं चाहता पर मरना निश्चित है।

करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तया।
मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम्॥

करना है, करना है, इसकी तो चिन्ता करता है, पर मुझे मरना है इसे यह जीव भूल गया है। एक बार यदि यह निश्चय कर ले कि मुझे मरना भी है तो उत्तर अन्तरात्मा से मिलेगा कि "फिर यह सब कुछ क्यों करना है?" जर, जोरू, जमीन के सारे झगडे एक समय में ही दूर हो जाते हैं।

जिन्हों के लाख थे हाथी, जिन्हों के लाख थे साथी,
उन्हीं को खा गई माटी, तू क्यों कर नींद में सोया।
जिन्हों के लाल और हीरे, सदा मुख पान के बीड़े,
उन्हीं को खा गए कीड़े, तू क्यों कर नींद में सोया॥

हे मानव! अभी भी जाग। चक्रवर्ती का षट्खंड का राज्य, नव-निधियाँ, चौदह रत्नों की विशाल सम्पदा भी चक्रवर्ती के दीक्षा लेते ही अथवा मरण होते ही समाप्त, विलय हो जाती है। करोड़ों की सम्पदा पर दीमक लग जाती

है। देखते-देखते राजा रंक हो जाता है और रंक राजा नजर आता है, ऐसी चपला लक्ष्मी का क्या भरोसा करना। अपने शाश्वत रूप को सजाने का कार्य करना ही जीवन का सत्य है।

आचार्य शिवसागर जी महाराज दर्शनार्थ आये श्रावकों से पूछा करते थे–भय्या! घर से लेटे-लेटे निकलना चाहते हो या खड़े-खड़े। सिंह की मौत मरना चाहते हो या कुत्ते की मौत? सिंह की मौत मरना चाहते हो, खड़े-खडे घर से निकलना चाहते हो तो दीक्षा ले लो। दीक्षा नहीं ली तो जिस पुत्र को **अपना मानकर लाड़-प्यार से बड़ा किया है वही लकड़ी से तुम्हारे मस्तक को फोड़ेगा। साधु बनने के बाद कभी ऐसा नहीं कर सकेगा। पुत्र के डंडे खाने हों तो घर में बने रहो और नहीं खाना हो तो आओ मेरे पास दीक्षा लो।**

चतुर्थ काल में जीव छोटा-सा निमित्त पाते ही दीक्षित हो जाते थे। आदिनाथ प्रभु ने नीलाञ्जना की मृत्यु देखी वैरागी हो गये। आज आये दिन मरण हो रहा है–एक्सीडेण्ट, आत्महत्याएँ, आत्मघात से पीड़ित हो मनुष्य मरण को प्राप्त कर रहा है, घर से बाहर जाने पर लौटकर भी आए या नहीं, चिन्ता बनी रहती है, घर-घर में छापा डाला जा रहा है। धन छीना जा रहा है, किडनैप किया जा रहा है फिर भी कही वैराग्य की किरण नहीं दिखाई देती है।

भरत चक्रवर्ती ने सिर का मात्र एक बाल सफेद देखा कि वे वैराग्य को प्राप्त हो गये, षट्खंडाधिपति ने पूरे राज्य वैभव व ९६ हजार रानियों को सूखे तृणवत् त्याग दिया। आज तो पूरे बाल सफेद होने पर भी वैराग्य की बात तो है ही नहीं, ये बाल काले कैसे हों, यह चिन्ता है। बालों को काला करने के लिये विविध प्रकार के लोशन, मेहंदी आदि का प्रयोग तो हो ही रहा है पर विशेष आश्चर्य यह है कि सत्तर-अस्सी वर्ष का वृद्ध या वृद्धा भी 'डाई' कराते हुए बालों को श्यामल, चमकीले बनाते हुए अपने आपको युवा मानते नजर आ रहे हैं। दौलतराम जी ने कितना सुन्दर लिखा है–

जोवन गृह गोधन नारी, हय-गय-जन-आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिनथाई, सुरधनु चपला चपलाई।।

यौवन, घर, गाय-बैल, स्त्री, हाथी, घोड़ा, परिवारजन, सेवक, इन्द्रियों के भोग और ये सुन्दर चमकीले काले-काले बाल आदि सब इन्द्रधनुष की चमक के समान क्षणभंगुर हैं। ज्ञानी, वैरागी जिन्हें छोडता है, रागी उसे समेटता है। इसीलिए रागी व वैरागी में छत्तीस का आँकड़ा बताया गया है। ज्ञानी पल-पल विचार करता है–

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन यौवन जीवन अस्थिर हैं, क्षणभंगुर पल में मुरझाए॥

अनित्य में नित्यबुद्धि वाला मानव संसार के झूठे सपनों को अपना मान रहा है और अपने को सपना मान भूल रहा है। निराशा में आशा की किरण सँजोये बाट जोह रहा है। अस्थिर में स्थिर बुद्धि से भटक रहा है पर एक समय भी शाश्वत को नहीं निहार रहा है। ''एक: सदा शाश्वतिको ममात्मा'' एक सदा शाश्वत अपना आत्मा है उस ओर इसकी दृष्टि ही नहीं है।

आचार्यदेव महावीरकीर्ति जी महाराज विहार करते हुए दक्षिण प्रान्त में पहुँचे। वहाँ नगरसेठ की समाधि के पश्चात् सेठानी बहुत दुखी रहा करती थी। आचार्यश्री के प्रवचन के पश्चात् धर्मप्रिय जनता ने कृपानिधान आचार्य देव से प्रार्थना की–गुरुदेव! हमारे नगर की धर्मात्मा सेठानी, सेठजी के चले जाने से बहुत दुखी रहती है, आप उसे कुछ सम्बोधन दीजिये। कृपानिधान आचार्यश्री ने कहा–यहाँ मन्दिर में उन्हें बुला लाइये। जनता ने कहा–वह आजकल मन्दिर भी नहीं आती है, एकमात्र रोती ही रहती है। भगवान् का स्मरण भी नहीं करना चाहती है। दिगम्बर साधु करुणा के सागर तो होते ही हैं, बस! आचार्यश्री सेठजी के घर पहुँच गये। सेठानी धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न थी ही–तुरंत ही आचार्यश्री के चरणों मे गिर गई, गवासन से नमस्कार किया और फूट-फूटकर रोने लगी।

आचार्यश्री ने कहा–बहन! रोती क्यों हो, कारण तो बताओ?

सेठानी रोते-रोते बोली–दुनिया में अब मेरा कोई नहीं है, हाय! हाय! मेरा कोई नहीं है।

आचार्यश्री मुस्कराते हुए बोले–इतनी बड़ी गलती क्यों कर रही हो?

अधूरा मन्त्र जप रही हो। अधूरा मन्त्र जपने से तो तुम कभी शान्ति को, सुख को प्राप्त नहीं कर सकती हो।

सेठानी ने कहा–गुरुदेव! मैं कौन-सी गलती कर रही हूँ? मैं कौन सा अधूरा जाप कर रही हूँ? अब क्या जाप जपूँ ?

आचार्यश्री ने कहा–बेटा! अभी तक तुम अधूरा मन्त्र जपती रही "मेरा कोई नहीं" अब पूरा मन्त्र जपना प्रारम्भ करो–"मेरा कोई नहीं, मैं भी किसी की नहीं।" सोच लो कोई तुम्हारा नहीं है तो तुम भी किसी की हो क्या? तुम भी इस भरे-पूरे परिवार को छोड़कर एक दिन जाओगी। मेरा कोई नहीं, मेरा कोई नहीं, यह कहना कायरता का सूचक है और मैं भी किसी की नहीं, यह वीरता का सूचक है।

बस, इतना सुनते ही सेठानी का मोह विलय हुआ, तत्त्वज्ञान जागृत हुआ। उसने आचार्यश्री से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और आर्यिका दीक्षा लेकर स्त्री पर्याय को सफल किया। राजेश्वरी सो नरकेश्वरी, तपेश्वरी सो सूरेश्वरी। जो राज्य में मरण करता है वह नरक में जाता है, जो राज्य त्याग साधु बनकर मृत्यु पाता है वह तप:प्रसाद से स्वर्ग-मुक्ति को प्राप्त होता है। सभी चक्रेश्वर जो राज्य में मरण को प्राप्त हुए, नरक को गये। उनकी पटरानी भी छठे नरक में गई तथा जो राज्य छोड़ दीक्षित हुए वे स्वर्ग-मुक्ति को प्राप्त हुए व उनकी पटरानी स्वर्ग को गई अत: हे भव्यात्माओ!

मनुष जनम अवतार, बरस चालीसनौ मीठा,
कडुवा लगे पच्चास, साठ पर खोजन रीठा।
सत्तर सगा न कोय, अस्सी में आसन नाहीं,
नब्बै नैनन नीर सौ में गरोज पड़ गयो खोखलो,
सब परिवार यों कहे मरे तो सुधरे डोकरो।।

मनुष्य-जन्म को सार्थक बनाओ, चालीस वर्ष तक ही यह भोगों को भोग सकता है, पचास में इन्द्रियाँ शिथिल पडने लगती हैं, साठ वर्ष में बुद्धि मंद पड़ने लगती है, सत्तर वर्ष में हाथ-पैर नहीं चलते, कोई अपना नजर नहीं आता, वृद्धावस्था जोर पकड़ती है। अस्सी में आसन नहीं मांडा जा सकता,

उठाने-बैठाने के लिए आदमी की जरूरत लगती है, उठा-बैठा नहीं जाता, नब्बे में नैनों से नीर बहने लगता है, गले में कफ जम जाता है, गला खोखला पड़ जाता है, परिवार के लोग सोचते हैं–

"मरे तो सुधरे डोकरो" ऐसे शरीर, धन-दौलत, परिवार, मकान आदि से क्या ममत्व करना?

इस संसार में चार प्रकार के आदमी पाये जाते हैं–१. मेरा सो मेरा, तेरा सो मेरा, २. तेरा सो तेरा, मेरा सो मेरा ३. तेरा भी तेरा, मेरा भी तेरा ४. ब्रह्मज्ञानी–न तेरा न मेरा, झूठा झमेला।

प्रथम–मेरा सो मेरा और तेरा सो भी मेरा–ऐसे कौरव थे, उन्होंने अपने धन को तो अपना माना ही पर पांडवों के धन को हड़पना चाहते थे, यही परिणाम था कि 'कौरव' सदा दुखी रहे, आज भी लोक में उनकी अपकीर्ति फैल रही है। दुर्योधन का नाम कोई लेना भी नहीं चाहता, न अपनी सन्तान का भी कोई यह नाम रखता है।

द्वितीय–"तेरा सो तेरा, मेरा सो मेरा" कहने वाले पांडव थे। पांडवों ने अपने अधिकार की वस्तु को माँगा था, अनधिकार चेष्टा नहीं की। दूसरों के धन-दौलत, वसुधा को कभी भी हडपना नहीं चाहा, बस यही वजह है कि आज भी लोग पांडवों का यशगान करते हैं, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर आदि अपनी संतानों के नाम रखते हैं।

तृतीय प्रकार के मानव–"तेरा सो तेरा, मेरा भी तेरा" इस निर्मल साधु भावना के महापुरुष थे श्री बलभद्र रामचन्द्रजी। रामचन्द्रजी राजा दशरथ के वरिष्ठ पुत्र थे। वे राज्यतिलक के अधिकारी थे परन्तु विधि का विधान, भरत का राज्यतिलक हुआ। आज के राम होते होता कोर्ट केस बन जाता परन्तु भगवान् राम ने सहर्ष वन की ओर गमन करने का निर्णय ले लिया। माता-पिता ने कहा–बेटा! यह क्या कर रहे हो? राम ने कहा–मेरे यहाँ रहते भरत राज्य नहीं कर पायेगा अत: इसका राज्य इसका है ही, मेरा अपना वैभव भी इसी का है, मैं वनभूमि के विशाल राज्य का शासन करूँगा।

भरत ने करबद्ध हो अग्रज से प्रार्थना की–प्रभो! मुझे यह राज्य शोभा

नहीं देता, इस पर आप शासन कीजिये। रामचन्द्रजी ने कहा–भैया! पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना मर्यादापुत्रों का काम नहीं। आपको पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए। आज से "तेरा सो तेरा और मेरा भी तेरा" बस, अब चिन्ता किस बात की। राम की उदार दृष्टि ने राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहकर प्रसिद्ध कर दिया।

चतुर्थ प्रकार के महामानव ब्रह्मज्ञानी होते हैं–"न तेरा न मेरा, झूठा झमेला।" ऐसी पुनीत विचारधारा वाले महापुरुष रत्नत्रय आराधक दिगम्बर महासन्त ही होते हैं। सत्य ही है उनकी दृष्टि में यह संसार एक धर्मशाला ही है–मूतकेतु नामक एक राजा धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न था। वह भोगों में ही जीवन न खो दे, ऐसा विचार कर एक देव जो उसका मित्र था, मनुष्य लोक में उसके सम्बोधनार्थ आया।

देवता ने मलिन वस्त्रों युक्त बिखरे केशों व धूलि से धूसरित ऐसा दरिद्री का रूप बनाया और जाकर राजा के पलंग पर जा बैठा। यद्यपि आगन्तुक मलिन वस्त्रधारी, पागल-सा नजर आ रहा था पर उसके चेहरे पर जो तेज था उससे किसी सेवक की हिम्मत उसे रोकने की नहीं हुई। पलंग पर भिखारी को बैठा देख राजा क्रोध से लाल हो उठा और उसके पास जाकर बोला–तू कौन है? यहाँ राजभवन में क्यों घुस गया? निकल यहाँ से।

देवता साहस-भरे शब्दों में बोला – भाई, यह तो धर्मशाला है, तुम भी इसमें ठहरो और मैं भी ठहरता हूँ।

राजा क्रोध से बोले – मूर्ख! यह राजभवन है, धर्मशाला नहीं। समझे! चलो, बाहर जाओ, हटो यहाँ से।

भिखारी ने कहा – तो क्या इसमें हजार दो हजार वर्षों से आप ही रहते हैं?

राजा – पागल है, मुझे तो अभी जन्म लिये पचास वर्ष ही हुए हैं, हजारों वर्षों पूर्व की बात करता है।

भिखारी – पचास वर्ष पहले इसमें कौन था?

राजा – मेरे पूज्य पिता।

भिखारी – वे कहाँ गये? कब लौटेंगे?

राजा – उनका शरीरान्त हो गया, वे अब यहाँ नहीं लौटेंगे।

भिखारी ने कहा – इसके पहले यहाँ कौन-कौन रहते थे?

राजा – मेरे पिता से पूर्व पितामह, उनसे पूर्व प्रपितामह इस भवन में रहते थे।

भिखारी (देवता) ने कहा – राजन्, यह धर्मशाला ही तो है, जहाँ एक यात्री आता है और दूसरा व्यक्ति जाता है।

राजा ने कहा – मुझे क्षमा करो, यह संसार एक धर्मशाला ही है–

पत्ता टूटा डार से, ले गई पवन उड़ाय।
अब के बिछड़े कब मिले, यों पत्ता दुख पाय।
सुन पवन उत्तर दिया, क्यों पत्ता दुख पाय।
या घर ऐसी रीति है, इक आवे इक जाय।।

और भी कहा है–

आदि जिनेन्द्र गये जग तारक, शान्ति जिनेन्द्र गये जगतारी।
बाल गये हनुमन्त गये, रघुनाथ गये नृप रावण भारी।।
पाण्डव पञ्च गये रण मल्ल गये नरसिंह महासुखकारी।
ज्ञान कहे जग को नहीं निश्चल, अन्त बसे यम मन्दिर बारी।।

एक सेठजी ने एक विशाल सुन्दर महल बनाने की योजना बनाई। दूर-दूर से अच्छे व्युत्पन्नमति इजीनियर बुलाये गये। लगभग ५ वर्षो में महल बनकर तैयार हो गया। सेठजी मयपरिवार वहाँ निवास करने लगे। उनके अहं का ठिकाना न था। उनके भीतर अहं का बीज ऐसा अंकुरित हो गया कि "मेरे जैसा महल इस दुनिया में किसी का नहीं है।" मैं कितना पुण्यात्मा हूँ, मेरे जैसा भाग्यशाली इस दुनिया में शायद ही कोई हो, आदि। एक दिन एक वृद्ध अनुभवी को उन्होंने भोजन का निमंत्रण दिया। भोजनोपरान्त सेठजी ने अनुभवी वृद्ध से कहा–साधो! इस महल में क्या कमी है? मुझे बताइये।

अनुभवी वृद्ध ने कहा – इसमें तीन कमियाँ हैं।

सेठ (आश्चर्य से) – तीन कमियाँ! मैंने इतने बड़े-बड़े इंजीनियर बुलाकर ये बनवाया फिर भी आप कहते हैं, तीन कमियाँ है। ठीक हैं। शीघ्र बताइये जिससे मैं उन्हें निकलवा सकूँ।

अनुभवी वृद्ध ने कहा – प्रथम कमी तो यह है कि "यह महल सदा बना नहीं रहेगा, समय पाकर ढह जायेगा।"

सेठ – क्या कहा? यह महल सदा रहने वाला नहीं है। ठीक। दूसरी कमी क्या है?

अनुभवी – इसको बनाने वाला भी सदा रहने वाला नहीं है।

सेठ – ओह! मैं तो सोच रहा था, महल नष्ट हो गया तो इञ्जीनियर से वापिस बनवा लूँगा पर अब और मुसीबत में पड गया। महल भी नहीं रहेगा और उसे बनाने वाला इञ्जीनियर भी नहीं रहेगा। कोई बात नहीं, महल पुन: बनवाऊँगा, इञ्जीनियर भी दूसरा बुला लूँगा। अब तीसरी कमी क्या है उसे बताइये?

अनुभवी बोला – सेठ! महल को बनवाने वाला मालिक भी सदा रहने वाला नहीं है।

सेठ –साधो! सबकी पूर्ति कर सकता हूँ, पर जब मैं स्वामी ही नहीं तो इन तीनों कमियों की पूर्ति कैसे कर सकता हूँ। आप महान् हैं, अब मुझे शान्ति का समीचीन मार्ग बताइये।

अनुभवी वृद्ध आगम की वार्ता कहते हैं –

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

हे भव्यात्मन्! शरीर अनित्य है, क्षणिक है, धन-दौलत भी नाशवान है, मृत्यु प्रतिपल पीछा कर रही है, ऐसी विकृत विनाशीक स्थिति में देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप व दान, इन षट्कर्मों के द्वारा धर्म का संग्रह करना ही मुमुक्षु का कर्तव्य है। सेठजी सभी विकल्पों को वहीं छोड़ मुनि दीक्षा

रूप मंगल अवस्था को प्राप्त कर मोक्षमार्ग में लीन हो गये।

अत: हे भव्यात्माओ! आचार्यदेव कहते हैं–

भ्रातर्मे वचनं कुरु सारम्,
चेत्त्वं वाञ्छसि संसृतिपारम्।
मोहं त्यक्त्वा कामं क्रोधं
त्यज, भज त्वं संयमवर-बोधम्॥

भाई! इस वसुधा के मोह का त्याग कर, काम-क्रोधादि विभावों का त्याग कर, संयम व समीचीन ज्ञान की उपासना करो।

♦♦

यो नर: शुद्धमात्मानं,
ध्यायेत् कृत्वा मन: स्थिरम्।
स एव लभते सौख्यं,
निर्वाणं शाश्वतं पदम्॥

२

मरते न बचावे कोई

स्वामी कार्तिकेय एक महान् आचार्य हुए, उन्होंने 'कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा' नामक वैराग्यमयी सुन्दर ग्रन्थ लिखा। ग्रन्थ में अनुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–मरण किसे कहते हैं?

''आउक्खयेण मरणं'' वर्तमान भुज्यमान आयुकर्म का क्षय होना मरण कहलाता है। इस मरण से बडे-बडे चक्रवर्ती, इन्द्र, देवेन्द्र भी काल-कवलित हो गये, इससे कोई बचा नहीं सकता–

आउक्खयेण मरणं, आउं दाऊण सक्कदे को वि।
तह्मा देविंदो वि य, मरणाउ ण रक्खदे को वि।।का.अ.।।

भव्यात्माओ! आयुकर्म के क्षय को मरण कहते हैं। आयुकर्म कोई किसी को देने में समर्थ नहीं है, इसलिए देवों का इन्द्र भी मरने से जीव की रक्षा नहीं कर सकता।

सिंहस्स कमे पडिदं, सारंगं जह ण रक्खदे को वि।
तह मिच्चुणा य गहिदं, जीवं पि ण रक्खदे को वि।।

जिस प्रकार वन में भ्रमण करते हुए सिंह के पैरों में आयु हुए सारंग/हिरण को मृत्यु से बचाने वाला कोई नहीं है, उसी प्रकार जीव जो काल/मृत्युरूपी सिंह के चरणों में आ पहुँचा है, उसे बचाने में, उसकी रक्षा करने में कोई भी समर्थ नहीं है। मगतरायजी बारह भावना में लिखते हैं–

कालसिंह ने मृग चेतन को घेरा भव-वन में,
नहिं बचावनहारा कोई यों समझो मन में।

मन्त्र-यन्त्र सेना धन सम्पत्ति राज-पाट छूटे,
बस नहिं चलता काल लुटेरा कायनगरी लूटे।
चक्ररत्न हलधर सा भाई काम नहीं आया,
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया।
देव-धर्म-गुरु शरण जगत में और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन यूँ ही उमर खोई।

हे आत्मन्! मन में बार-बार विचार करो-संसाररूपी वन में भ्रमते हुए जीवरूपी हिरण को जिस समय कालसिंह आकर घेर लेता है, ग्रास बनाता है उस समय कोई भी उसके मुख से छुडाने में समर्थ नहीं है। बडे-बड़े वशीकरण, उच्चाटन आदि मन्त्र, यन्त्र, सैन्यदल, धन-सम्पदा, चक्रवर्ती जैसा छहखण्ड का राज्य भी जहाँ का तहाँ पडा रह जाता है, कालरूपी लुटेरा, कायारूपी मनमोहन नगरी में उत्पात मचाकर लूट लेता है पर किसी का वश उसके सामने नहीं चलता। त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण, सुदर्शन चक्र का स्वामी, हलधर जैसा जिसका भाई वह भी जरत् कुमार के एक बाण के लगते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। हलधर भी उसकी रक्षा नहीं कर सका।

यह जीव लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था मे एक अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ बार जन्म-मरण करता हुआ असीम कष्ट को, असह्य वेदना को प्राप्त होता है, उनमें एकेन्द्रिय में ६६१३२, दो इन्द्रिय में ८०, तीन इन्द्रिय में ६०, चतुरिन्द्रिय में ४० भवों को व पञ्चेन्द्रिय में २४ भवों को धारण करता है-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनं।
इह संसारे खलु दुस्तारे त्राता नहि भवकारागारे॥

एक श्वास मे अठारह बार जन्म-मरण करते-करते इस कठिन संसार मे इस जीव को मरण से कोई बचा नहीं पाया। छहढाला में पढ़ते भी हैं-

एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुख भार।

छहढालाकार दौलतरामजी लिखते हैं-

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरिकाल दले तैं।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावे कोई॥

कालरूपी सिंह के मुख में आये हुए देव, असुर, विद्याधर आदि रूप हिरण को मणि, मंत्र, तंत्र आदि कोई भी बचा नहीं सकता। संसार के सभी जीव सुख के साथी हैं, दुख में कोई साथी नहीं है। यह संसार स्वार्थपूर्ण है। षट्खंडाधिपति सुभौम चक्रवर्ती, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भी दुर्दैव से अकाल में मृत्यु के ग्रास बने। उन्हें कोई बचा नहीं पाया, पाँचों पांडवों को गर्म-गर्म लोहे के कड़े पहनाकर मृत्यु का ग्रास बनाया गया, कोई रक्षा नहीं कर पाया, तद्भवमोक्षगामी गजकुमार मुनिराज पर स्वयं के श्वसुर द्वारा उपसर्ग किया गया, अल्पायु में मरण को प्राप्त होने वाले उनको कोई परिवार का व्यक्ति नहीं बचा पाया। आप बारहभावना का पाठ करते हुए बोलते हैं–

दलबल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरिया जीव को कोई न राखनहार॥

जैनदर्शन में तार्किक, न्याय सिद्धान्त के ज्ञाता, परीक्षाप्रधानी आचार्य समन्तभद्र हो गये हैं। आपने श्रावकों को अपनी साधना को पूर्ण करने की कला बताते हुए 'रत्नकरण्ड-श्रावकाचार' नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में अपनी रक्षा के उपायों को बताते हुए आपने लिखा है–प्रत्येक आत्मा को सामायिक काल में पाँच बातों का चिन्तन अवश्य करना चाहिए–

अशरणमशुभमनित्यं दु:खमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्येति ध्यायन्तु सामायिके॥१०४॥र.श्रा.॥

१. संसार अशरणरूप है, मोक्ष शरणरूप है, २. संसार अशुभ है मोक्ष शुभरूप है, ३. संसार अनित्य है क्षणिक है, मोक्ष नित्य है, शाश्वत है, ४. संसार दु:खरूप है और मोक्ष सुखरूप है तथा ५. संसार विभाव रूप है और मोक्ष आत्मा की स्वाभाविक परिणति है। मुमुक्षु भव्यात्मा प्रतिदिन इनका चिन्तन करें।

पूजा में बोलते भी हैं–"अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।"

हम अपनी रक्षार्थ बार-बार विचार करें–"संसार में जिनका कोई शरण नहीं उसके पंचपरमेष्ठी शरण हैं, मोक्ष ही शरण है। जिनका कोई आधार नहीं उनके लिए एकमात्र परमेष्ठी ही आधार हैं–

वस्तुस्वभाव विचारते, शरण आपको आप।
व्यवहारे पंचगुरु, अवर सकल संताप॥

पद्मपुराण में रविषेण आचार्य लिखते हैं–"सीता की अग्नि परीक्षा ली गई। सीता एकमात्र पंचपरमेष्ठी का आश्रय ले, विशाल धधकते अग्निकुण्ड में कूद पड़ी। तद्भव मोक्षगामी बलभद्र रामचन्द्रजी, लव-कुश जैसे वीर पुत्र, भाई भामण्डल, लक्ष्मण जैसा वीर देवर, कृतान्तवक्त्र सेनापति, सब वहीं खड़े देख रहे हैं पर कोई उसे बचा नहीं पाया। उसने णमोकार मन्त्र का जाप किया और विचार किया कि "हे प्रभो! यदि स्वामी रामचन्द्रजी के अलावा पर-पुरुष को मैंने स्वप्न में भी देखा हो, स्मरण किया हो तो हे अग्नि! मुझे भस्म कर देना। इस महासंकट में मैं आपकी भक्ति और सत्य के प्रभाव से बच भी गई तो अब मुझे इस क्षणिक स्वार्थी परिवार का, गृहस्थाश्रम का त्याग है, मैं आर्यिका व्रत धारण कर आत्मकल्याण करूँगी। पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण कर वह दृढता के साथ अग्निकुण्ड में कूद पडी, कोई बचा नही पाया। जिनेन्द्र-शरण के प्रभाव से अग्निकुण्ड, विशाल जलकुण्ड बन गया। चारो ओर सीता सती की जयकार के नारे लगाये जा रहे हैं। रामचन्द्रजी सीता के पास जाकर क्षमा-याचना करते हैं–हे सीते! मुझे क्षमा करो, घर चलो, अपने पटरानी पद को सुशोभित करो। सीता कहती है–हे प्रभो! मैने पूर्व में चार बार गलती की है, अब ऐसी गलती नहीं करूँगी। प्रथम, जब मैं जिस भाई के साथ ९ माह गर्भ मे रही उसे विद्याधर हरण कर ले गया। उसके वियोग में मैंने जिनेन्द्रदेव का शरण नहीं लिया, दूसरी बार, जब मैं विवाह योग्य हुई तब भी भूमिगोचरी व विद्याधरों में आपस में युद्ध हुआ तब भी मैंने गृहत्याग कर पचपरमेष्ठी का शरण नहीं लिया, तीसरी बार, जब मैंने अपने पतिदेव के राज्याभिषेक के स्वप्न सँजोए, प्रातःकाल राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं, अपराह्न में वन की ओर मुख मोडना पड़ा तब भी मैं नही सम्हल पाई, आर्यिका व्रत धारण नहीं किया और अन्तिम गलती मैंने यह की कि रावण मुझे हरकर ले गया तब भी मुझे सद्ज्ञान जागृत नहीं हुआ। यदि उस समय भी मैं गृहत्याग कर आर्यिका व्रत धारण कर लेती, दीक्षा ले लेती, पञ्चपरमेष्ठी की शरण को प्राप्त हो जाती तो आज मुझे यह कठोर अग्निपरीक्षा नहीं देनी पडती।"

प्रभो ! अब मुझे एकमात्र पञ्चपरमेष्ठी ही शरण हैं। पृथ्वीमती आर्यिका के समीप जाकर सीता आर्यिका दीक्षा धारण करती है।

हे भव्यात्माओ ! यह जीव अपनी शरण भूलकर, स्वभाव से च्युत हुआ जन्म-मरण के दुख उठा रहा है। किन्तु चतुर्गति संसार में इसका कोई रक्षक नहीं, सहारा नहीं, शरण नहीं मिला। जन्म-मरण के दुखों से छूटने का एकमात्र उपाय है, स्वभाव को जानो, विभाव का त्याग करो। यह संसार विनाशीक है, इसमें कोई भी प्राणी किसी का रक्षक नहीं है, अपितु अशुभ बन्ध का निमित्त है। इस संसार में पञ्चपरमेष्ठी ही एकमात्र शरणभूत हैं अत: आप प्रतिदिन स्तुति करते हुए बोलते भी हैं–

''अनन्तानन्त-संसार-संततिच्छेद-कारणम्।
जिनराजपदाम्भोज-स्मरणं शरणं मम।''

रावण जैसा त्रिखण्डाधिपति मारा गया, विभीषण जैसा भाई भी उसका दुश्मन बन गया, काम नहीं आया–''इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण घर दिया न बाती।'' जिस रावण के एक लाख पुत्र और सवा लाख पौत्र थे, उसके घर कोई दीप लगाने वाला भी न बचा। संसारी प्राणी कर्त्ताबुद्धि में फॅसा हुआ, ममत्व में फँसा हुआ, मैंने किया, मैंने किया चिल्लाता रहता है। आचार्य कहते हैं कर्त्ता मत बनो, कर्तव्य का पालन करो। सिकन्दर बहुत बड़ा बादशाह था। उसने प्रजा को कष्ट देकर बहुत-सा धन इकट्ठा किया। उसे असाध्य रोग हैजा हो गया। अन्त में उसने अपनी माॅ को बुलाया और कहा–मैं बहुत अज्ञानी हूँ, मैंने प्रजा का खून चूस-चूस कर यह धन-सम्पत्ति इकट्ठी की, पर आज मेरा अन्तिम समय आ गया है। इस मृत्यु के अवसर पर कोई भी मुझे बचा नहीं सकते। मुझे प्रभु का नाम सुनाओ। प्रभु का नाम सुनते-सुनते उसने पुन: माँ से कहा–जब मेरी मृत्यु हो जाये, तब मेरी अर्थी के आगे-पीछे सैन्य-दल, हाथी, घोड़ा, सवारी, सारी दौलत आदि रखना पर मेरे हाथों को खुला रखना–

सिकन्दर शहनशाह जाता, सभी हाली मवाली थे।
साथ में थी सभी दौलत, मगर दो हाथ खाली थे॥

उसका तात्पर्य था–मेरी अर्थी देख लोगों को अपना असली स्वरूप पता लगे। मेरे बाद कोई मेरे जैसी भूल न करे। जिस धन-दौलत के पीछे यह जीव भाग रहा है, वह यहाँ ही रह जाएगी, परमाणु-मात्र भी इसके साथ जाने वाला नहीं है। ये अनित्य, अशरण आदि १२ माताएँ ही जीव की शरण हैं। आप लोगों की एक ही माता है, पर हम साधुओं की १२ माताएँ हैं, ये हमें संसार में, कुमार्ग में भटकने से बचाती हैं।

प्रतिदिन भावना करें–"दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ, देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ।"

तत्त्वज्ञान की कसौटी पर मानव-जीवन को कसें। आत्म-तत्त्व का चिन्तन करें। पैसे से घर, महल, मकान, कपड़ा, धन-धान्य सब खरीद सकते हैं, पर तत्त्वज्ञान को कहीं किसी दुकान से नहीं खरीद सकते। यह तत्त्वज्ञान पैसा, धन-दौलत से मिलने वाली वस्तु नहीं है, इसे आत्मचिंतन से प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य कहते हैं अज्ञानी प्राणी सोचता है माता-पिता, पति, भाई, मित्र ये मेरे दुःख में शरण हैं, पर सब सुख के, स्वार्थ के साथी हैं, दुख में कोई शरण नहीं–

सती अञ्जना वन-वन भटकती रही पर जिस माँ ने नौ माह गर्भ में रखा उसने भी द्वार पर आने नहीं दिया। मैना सती को कोमल फूल की तरह पालने वाले पिता ने कुष्ठी पति के साथ ब्याह दिया, थोड़ा भी विचार नहीं किया। यदि कहें भाई हमारा शरण है तो विचार करिये बाहुबली जैसे मोक्षगामी जीव पर चक्रवर्ती भरत ने भी चक्र चला दिया। पुत्र को अपना कहें तो भावी तीर्थंकर श्रेणिक को पुत्र कुणिक ने घोर यातना देकर दुखी किया (विशेष वर्णन पुराणों में पढ़ना चाहिए....श्रेणिक पुराण आदि से)–यह सब स्थिति देखकर भी अज्ञान अवस्था में जकड़े हमारी आँखें मुँदी ही हैं। अभी भी हम संसारी जीव अपना हित करना नहीं चाहते हैं।

द्रव्य दृष्टि से स्व शुद्धात्मा ही शरण है, व्यवहार दृष्टि में पञ्चपरमेष्ठी ही एकमात्र शरण हैं, मोह उदय की विचित्रता देखो, यह संसार-समुद्र में पटकने वालों को अपना शरण मान पञ्चपरावर्तन रूप संसार में भटकता है। देखो इस

लोक में–

यौवनं जरया व्याप्तं, शरीरं व्याधिमन्दिरम्।
समृत्यु जन्म कः सारः, स्यां स्वस्मै स्वै सुखी स्वयम्॥

यौवन वृद्धावस्था से व्याप्त है, शरीर व्याधियों का घर बना हुआ है, एक शरीर में ५६८९९५८४ रोग हैं, एक अंगुल में ९६ रोग हैं, किस-किस का उपचार करें, जन्म के साथ मृत्यु लगी हुई है, इस शरीर में कोई सार नहीं है अतः स्वयं आत्मा को, आत्मा के लिए, आत्मा में देखते हुए अपनी आत्मा की शरण गहो। यही सुख का मार्ग है।

सम्राट् महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत काया में हर्षित निज जीवन डाल सकेगा क्या?

आचार्यदेव कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ में लिखते हैं–

तत्थ भवे किं सरणं, जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।
हरिहर बंभादीया, कालेण य कवलिया जत्थ॥का.अ.॥

उस संसार में कौन शरण हो सकता है जहाँ सुरेन्द्र, हरिहर, ब्रह्मा आदि भी काल के ग्रास बना लिये गये हैं अतः हमारे शरण लोक में चार हैं– अरहन्तशरण, सिद्धशरण, साधुशरण और केवलीप्रणीत धर्मशरण। इनकी प्रतिदिन आराधना करें, स्तुति करें, भक्ति करें, यही जीवन का सार है।

♦♦

आगमेनानुमानेन, ध्यानाभ्याससरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां, लभते योगमुत्तमम्॥

३

असारे संसारे

जैनदर्शन में **पूज्यपाद स्वामी** बहुत बड़े आचार्य हो गये। उन्होंने जैनदर्शन के महान् ग्रन्थ श्री **तत्त्वार्थ-सूत्र** पर **सर्वार्थसिद्धि** नामक सुन्दर, सरस, टीका लिखी। पूज्यपाद स्वामी के संबंध में प्रसिद्ध वार्ता है ''लक्षणं पूज्यपादस्य'' पूज्यपाद के लक्षण अकाट्य हैं। इन्हें कोई खंडित नहीं कर सकता। सर्वार्थसिद्धि के दूसरे अध्याय में सूत्र सं. १० की टीका में संसार किसे कहते हैं, लक्षण बताया–''संसरणं संसार: परिवर्तनम् इति अर्थ:'' संसरण करने को संसार कहते हैं, जिसका अर्थ परिवर्तन है। तथा इसी ग्रंथ के नवम अध्याय के सूत्र सं. ७ की टीका में संसार का लक्षण इस प्रकार बताया है–''कर्मविपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्ति: संसार:'' कर्म के विपाक के वश में आत्मा को भवान्तर/दूसरे भव की प्राप्ति होना संसार है।

यह संसार असार है। जैसे बकरी के गले में जो स्तन हैं, उनसे दूध नही आता। वे सार-रहित निस्सार हैं वैसे ही यह संसार असार है। पानी को कितना ही बिलोया जावे उसमें कोई सार नहीं, वैसे ही संसार में कोई सार नहीं है। प्याज के छिलके छीलते जाइए उसमें कोई सार नहीं, केले के थंभ मे कोई सार नही, जड-रहित वृक्ष में कोई सार नहीं, रस निकालने पर गन्ना में कोई सार नहीं, उसी प्रकार ससार में कोई सार नहीं है। असार क्यों? मगतराय जी लिखते हैं–

जनम-मरण अरु जरा रोग से, सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता॥

छेदन भेदन नरक पशूगति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥
भोगि पुण्य फल हो इकइन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पञ्चमगति सुख मिलै, शुभाशुभ का मेटो लेखा॥

असार संसार में जीव चारों गतियों में जन्म-मरण, आधि, व्याधि, उपाधियों से सदा दुखी रहता है तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और भव इन पञ्च परावर्तनों में भ्रमण करता हुआ असह्य दुखों को सहन करता है। आप वैराग्यभावना में भी पढते हैं–

इह संसार महावन भीतर, भरमत छोर न आवे।
जामन-मरण जरा दव दाझे, जीव महादुख पावै॥४॥वै.भा.॥

छेदन-भेदन: नरक

नरक गति में छेदन-भेदन का भारी दुख है। वहाँ की भूमि के स्पर्श-मात्र से इतना दुख होता है जितना यहाँ सहस्रों बिच्छुओ द्वारा एक साथ काटे जाने पर भी नहीं होता, वहाँ खूनपीव की नदियाँ बहती हैं। मेरु के समान लोहे का गोला भी शीत व उष्णता से जम जाता है, पिघल जाता है। इतनी अधिक शीत व उष्णता वहाँ होती है। तीन लोक का अन्न खा जावें इतनी भूख लगती है पर खाने को अन्न का एक दाना भी नहीं मिलता। प्यास इतनी लगती है कि समुद्र का पूरा पानी पी ले तो भी प्यास न बुझे, पर पीने को एक बूँद भी पानी नहीं मिलता। वहाँ की भूमि, मिट्टी इतनी दुर्गन्धमयी है कि एक छोटा-सा टुकड़ा भी उस मिट्टी का यहाँ आ जावे तो योजनों-पर्यन्त के जीव मृत्यु को प्राप्त हो जावें। ऐसे दुखद नरकरूप ससार में भी जीव स्वयं तो दुखी है ही, असुर-कुमार जाति के देव आपस में नारकियों को लडवाकर और अधिक दुखी करते हैं।

पशुगति : वध-बन्धन सहना

मायाचार के परिणामों से जीव नरकायु का बन्ध कर वध-बन्धन आदि

के दुख सहता है–

कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ वधबंधन भयकारी।

पशुओं में निगोद में–

एक श्वास में अठदस बार जन्म्यो-मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर निबल पशु हति खाये भूर।
कबहुँ आप भयो बलहीन सबलनि करि खायो अति दीन॥
छेदन-भेदन भूख प्यास, भार-वहन हिम आतप त्रास।

निगोद में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण कर कष्ट पाता है, वहाँ से निकल पृथ्वी आदि पाँच स्थावरों में जन्म लेता है–कोई मर्दन करता है, कोई छेदता है, कोई जलाता है, कोई पृथ्वी पर थूकता है, गन्दा करता है, कोई बिना प्रयोजन जल फेंकता है, ढोलता है, धूप, छाया, ठंडी, गर्मी, वर्षा, हिम आदि के गिरने से वृक्ष/वनस्पति को महावेदना सहन करनी पडती है। एकेन्द्रिय के दुख वचनातीत हैं। इनके दुखों का वर्णन करते हुए आचार्यदेव लिखते हैं–एक मानव रोग से पीडित है, उसके हाथ-पैर दोनों कसकर बाँध दीजिये जिससे हिलडुल भी न सके, फिर उसके मुँह में, नाक में, कान में कपड़ा ठूँस दीजिये, पश्चात् उसे एक थैले में डालकर उस थैले को भी सुई-धागे से पैक कर दीजिये। अब वह जो दुख अनुभव कर रहा है, अपनी अव्यक्त वेदना से जिस पीड़ा का अनुभव कर रहा है उससे भी असंख्यात गुणी वेदना निगोदिया व पाँच स्थावर जीवों की होती है। ये जीव सर्वलोक में पाये जाते हैं।

विकलत्रय जीवों से समस्त कर्मभूमियाँ भरी पडी हैं। कुचला जाना, मारा जाना, पीटा जाना आदि दुखों से ये सदा दुखी हैं। खटमल, मच्छरों को और भी अनेक जीवों को मारने के लिए विविध प्रकार की विषाक्त दवाइयाँ डाली जाती हैं। मच्छर, खटमल, टिड्डी आदि जीव तड़फ-तडफ कर मरते देखे जाते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अवस्था में सुख नहीं, दुख ही दुख है। जीव कभी बलवान होता है तो बलहीनों को मार-मार कर खाता है और निर्बल होता है

तब बलवानों के द्वारा मार कर खाया जाता है। क्षुधा-पिपासा की स्थिति में अव्यक्त वेदना का वर्णन भी अकथनीय ही है। श्रावक घर में रख भी लेता है तो बाँधकर खोलता नहीं, समय पर चारा-पानी देता नहीं, खेत में जोतता है, मूक पशुओं पर शक्ति से अधिक भार लाद देता है। इस प्रकार तिर्यंश्चायु में बड़े से बड़े पशु या छोटे से छोटा जन्तु भी निरन्तर दुखों का सामना करता हुआ दुखी है।

राग उदय से दुख सुरगति में

देव आयु में जीव समस्त इन्द्रिय सुखों की उपलब्धि होते हुए भी राग की आग में जलता हुआ सतत दुखी रहता है। विषयों की चाह में झुलसता रहता है व दूसरे बड़े ऋद्धिधारी देवों की सम्पत्ति देख-देख झूरता रहता है। वहाँ निरन्तर मानसिक ताप से पीड़ित रहता है–

कभी अकामनिर्जरा करे, भवनत्रिक में सुरतन धरै,
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुखपाय,
तहँ तैं चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।

मिथ्यात्व की अन्धता और विषयों की अग्निरूप दाह का विचित्र प्रभाव देखिये। कहाँ देव पर्याय और कहाँ पुनः एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, वनस्पति में उत्पन्न होना। अहो राग की विचित्रता–

संसार-मूल यह राग है मोक्ष-मूल वैराग।
भेद दोऊ को यूँ कहो भई, जाग सके तो जाग।

संसार-वृद्धि का मूल कारण ही राग है। राग की कणिका-मात्र भी जब तक रहती है तब तक जीव मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाता है।

मानुष जनम अनेक विपतिमय

कोई यह सोचे कि मानुष पर्याय तो अच्छी है, यहाँ खाने-पीने, भोग-उपभोग के सारे साधन उपलब्ध हैं। टी.वी., फ्रीज, कूलर, हीटर की समस्त सुविधाएँ हैं, इसमें तो जीवन का सार नजर आता है।

मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई।
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विलखै, कोई तन के रोगी॥
किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।

राम को इष्ट का वियोग हुआ तो सीता को अनिष्ट संयोग। कोई दरिद्री चौराहे पर भूखा तडपता है तो कोई शारीरिक रोग से पीड़ित हो पडा हुआ। घर में अटूट सम्पत्ति, सभी सुख-सुविधा होने पर भी सेठ कैंसर से पीड़ित है, मूँग की दाल का पानी पीने को शेष रह गया। कहीं सब शांति है तो घर में स्त्री झगड़ालू मिल गई, प्रतिदिन उठते ही झगड़ा शुरू।

आज लोग बहुत चतुर हो गये हैं–हम लोगों को भी भार से लाद देते हैं। कैसे? हम विहार करते हुए किसी नगर में जाते हैं तो लोग क्या करते हैं, अपने बेटा, बेटी, घर, दुकान दिखाते रहेंगे और क्या कहते हैं– महाराज, यह आपका ही घर है, विश्राम कीजिये; यह आपकी ही दुकान है, यह आपका ही पुत्र है, पुत्री है आदि, आदि। अरे भय्या! देखो, संसारी जीवों की दशा– स्वयं डूब रहे हैं, हमें भी डुबोना चाहते है। एक बार हम लोग विहार करते हुए एक ग्राम मे पहुँचे–एक दादाजी अपने पोता को खिला रहे थे, लाड़ कर रहे थे। हमें देखकर दादाजी बोले–महाराज! बहुत परेशान हूँ। ये पोता-पोती बहुत सताते हैं। सच है महाराज! संसार असार है। हम बोले–आओ भय्या! सताने से बचना है तो दीक्षा ले लो। दादाजी गरम हो गये, बोले–वाह महाराज! दीक्षा देने की बात आप कैसे कहते हैं, आप ऐसी बात कहने वाले कौन? हम इस बच्चे के दादा, ये हमारे पोता; हम कुछ भी करें। प्राचीन समय में लोग भावना भाते थे–

घर को छोड़ वन जाऊँ, मैं वो दिन कब पाऊँ।

पर अब क्या स्थिति है–

वन को छोड़ घर आऊँ, मैं पोता को पोतो कब पाऊँ?

आत्मा की अवस्थाओं की अपेक्षा संसार चार प्रकार का कहा गया है–

१. संसार २. असंसार ३. नोसंसार और ४. इनसे विलक्षण। चतुर्गतिरूप संसरण संसार है। सिद्ध भगवान् संसार में चतुर्गतिभ्रमण से रहित हैं अत: वे असंसार है। अर्हन्त देव जो जीवन्मुक्त परमात्मा हैं वे नोसंसार या ईषत् संसार हैं। तथा अयोग केवली अन्तर्मुहूर्त में मुक्त होने वाले हैं अत: वे इन तीनों से विलक्षण हैं।

अभव्य और दूरान्दूर भव्य का संसार अनादि अनन्त, भव्य जीव का संसार अनादि सान्त, जीवन्मुक्त अरहंत परमात्मा का नोसंसार सादि सान्त है, असंसारी सिद्ध परमात्मा की सिद्ध अवस्था सादि अनन्त काल के लिए।

इस संसार-चक्र से निकलकर जीव को असंसार अवस्था कैसे प्राप्त हो, इसके उत्तर में कुन्दकुन्ददेव के समयसार ग्रन्थ पर अमृत-कलश की रचना करने वाले अमृतचन्द्र आचार्य अपनी अमृत वाणी में कहते हैं–

भावकर्मनिरोधेन, द्रव्यकर्मनिरोधनं।
द्रव्यकर्मनिरोधेन, संसारस्य निरोधनं।।

राग-द्वेष-मोहरूप भावकर्मों के रोकने से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों का संवर होता है, द्रव्य कर्मों के संवर होने से संसार का अभाव हो जाता है।

भव्यात्माओ! संसार में मोहरूपी राजा का राज्य फैला हुआ है, अज्ञान इसका मन्त्री, अहंकार-ममकार ये दो इसके सेनापति हैं। इनके राग-द्वेष दो पुत्र हैं। मोह राजा के परिवार ने इस जीव को चारों ओर से राग-द्वेष में फँसा रखा है। मोह राजा के राज्य की बागडोर देखिये–

एक सेठजी थे। सेठजी मोह-जाल में इतने फँसे थे कि आत्मा-अनात्मा का भी उन्हें भान नहीं रहता था। एक दिवस एक मुनिराज जंगल से मंदिर की ओर आ रहे थे कि मार्ग में सेठजी का घर आया। सेठजी मकान बनाने वाले कारीगरों को डाँट-फटकार रहे थे। सेठ को देखकर मुनिराज मुस्कराये। दोपहर में मुनिराज आहार को पधारे, सेठानी ने भक्ति से मुनिराज को आहार कराया। आहार करके लौटते समय महाराज ने सेठ को देखा। वह अपने बेटे का लाड़ कर रहा था, खिला रहा था। मुनिराज पुन: मुस्कराते हुए लौट गये। अपराह्न काल में मुनिराज मन्दिर से जंगल की ओर जा रहे थे कि पुन: उस सेठ को

दुकान पर बकरी भगाते हुए देखा। मुनिराज पुनः मुस्करा दिये। मुनिराज को मुस्कराते देख सेठजी दुकान से उतरे और महाराज के पास जा पहुँचे।

सेठजी–महाराजजी! दिगम्बर साधु बिना प्रयोजन हँसते नहीं, पर आप आज सुबह से तीन बार मुझे देखकर हँसे, इसका क्या कारण है? मुनिराज अवधिज्ञानी थे, वे बोले–सेठ, प्रातःकाल तुम जिस मकान की सुरक्षा के लिए, जिसे व्यवस्थित बनाने के लिए कारीगरों को फटकार रहे थे, उस मकान में तुम नहीं रह पाओगे।

सेठ–क्यों? मुनिराज–सात दिनों बाद तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। सेठ जिस मकान की रक्षा में तुम समय व्यर्थ गँवा रहे हो, उसमें नहीं रह पाओगे, इसलिए प्रातःकाल मैं मुस्कराया।

सेठ–महाराजजी! दोपहर में आप क्यों मुस्कराये। महाराजजी–मैं आहार के लिए आया उस समय तुम जिस बच्चे को खिला रहे थे, वह तुम्हारा पूर्व भव का शत्रु है। शत्रु को प्यार करते देख मुझे हँसी आ गई।

सेठ–ठीक है, महाराजजी! अभी आप मुझे देखकर क्यों मुस्कराये थे? महाराज–भय्या! जिस बकरी को तुम मार-मार कर बाहर निकाल रहे थे, वह तुम्हारा पूर्व भव का पिता है। बकरी को कसाई मारने के लिए ले जा रहा था, बकरी को जातिस्मरण हो गया था, मेरा पुत्र मेरी रक्षा करेगा, ऐसा विचार कर बकरी दुकान पर आई। वह जा नहीं रही थी तो कसाई ने तुमसे ५० रुपये में खरीदने को कहा, पर तुमने वो भी देने से इन्कार कर दिया और मार-मारकर निकाल दिया, यह देखकर मैं मुस्करा रहा था। सेठ दौड़ा। अभी बकरी को बचा कर लाता हूँ। सेठ पहुँचा तब तक बकरी कट चुकी थी।

पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में लिखते है–अनेक योनि और कुल कोटियों से व्याप्त इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ यह जीव कर्मयन्त्र से प्रेरित होकर पिता होकर भाई, पुत्र-पौत्र होता है। माता होकर भगिनी, भार्या और लड़की होता है। स्वामी होकर दास होता है तथा दास होकर स्वामी भी होता है। जिस प्रकार रगस्थल में नट नाना रूप धारण करता है, उसी प्रकार यहाँ होता है। अथवा बहुत कहने से क्या लाभ स्वयं अपना पुत्र बन जाता है। इस

प्रकार संसार की असारता का चिन्तन करने से द्रव्य-भाव कर्म का निरोध होने से संसार का अभाव हो जाता है।

इस संसार में किसी की भी इच्छा पूरी नहीं होती। निर्धन दरिद्रता से दुखी है तो धनिक तृष्णा से पीड़ित है–

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।

इस असार-संसार में सुख तो सरसों बराबर है और दुख मेरु के बराबर है। जिस इन्द्रिय-सुख को यह सुख मान रहा है, वह सुख नहीं सुखाभास है। क्षणिक है, नाशवान है। उड़द की दाल का एक बड़ा खाने के लिए यह जीव कितना कष्ट उठाता है–दाल लाना, साफ करना, भिगोना, बाँटना, फिर गरम-गरम तेल में डालना, इतनी मेहनत करने के बाद, एक बड़ा मुँह पर रखने पर मात्र जिह्वा का स्वाद है, "गया घाटी हुआ माटी।" इसमें भी यदि गरम-गरम खाते हुए मुँह जल गया तो सारा सुख बेकार हो गया। पर उस सुखाभास को असली सुख मानकर जीव क्षणिक सुख में ही निरत हो रहा है।

इस क्षणिक संसार में जीवों की इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। त्रिखण्डाधिपति रावण की ४ भावनाएँ थीं–१. मैं मध्यलोक से स्वर्ग तक सोने की सीढ़ियाँ बनाऊँगा २. समुद्र का पानी मीठा कर दूँगा ३. गन्ने के वृक्ष पर पुष्प लगाऊँगा और ४. सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दूँगा। उसकी एक भी भावना पूरी नहीं हो पाई और सीता के राग में फँस जाने से प्राणों की आहुति देनी पड़ी।

यह राग मानव-जीवन को प्रगति की ओर जाने नहीं देता। आचार्य कहते हैं मानव पर्याय को प्राप्त कर समता रस का पान करो। अनन्तकाल विषय-भोगों के सेवन में व्यतीत कर दिया, अब इनका त्याग करो–

अलि पतंग गज मीन मृग, जरत एक ही आँच।
तुलसी वे कैसे बचें, जिन कहँ व्यापत पाँच।।

एक-एक इन्द्रिय के राग में फँसा जीव अपने प्राणों को खो बैठता है

फिर यह मानव जो पाँचों इन्द्रियों के राग में फँसा हुआ है इसकी क्या गति होगी। हे भव्यात्माओ! संयम को धारण कर आत्मस्वरूप की ओर लक्ष्य दो। यह मानव पर्याय एक चिन्तामणि रत्नवत् दुर्लभ व मूल्यवान् है। इसे व्यर्थ में मत खोओ। यह एक अमूल्य अवसर आया है, इस अवसर को चूक गये तो पुन: मानव पर्याय की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन होगा। इसे विषय-वासनारूपी कोयलों के लिए नष्ट करना उचित नहीं।

जब तक आत्म तत्त्व की प्राप्ति नहीं, जब तक तत्त्वबोध नहीं तब तक ही संसार में सार नजर आता है। तत्त्वबोध होने पर सब असार, प्रयोजनहीन प्रतीत होता है, यथा–

वयसि गते क: कामविकार:, शुष्के नीरे क: कासार:।
क्षीणे वित्ते क: परिवार:, ज्ञाते तत्त्वे क: संसार:॥

जैनदर्शन अनेकान्त दर्शन है। यहाँ सर्वथा ऐसा ही है इस शब्द को स्थान नहीं है। इसकी अपेक्षा संसार असार है। तथापि इस संसार में सात वस्तुएँ सार हैं–

इस संसार असार में सात वस्तु हैं सार।
संग, भजन, सेवा, दया, ध्यान दान उपकार॥

१. सत्संगति २. प्रभुभजन ३. सेवा ४. दया ५. ध्यान ६. दान और ७.उपकार।

हम सदा सत्संगति करें। अकेले रहना अच्छा किन्तु दुर्जनों की संगति कभी भी न करना। संगति से ही गुण उपजते हैं और संगति से ही गुणों का नाश हो जाता है। सत्संगति संसार-समुद्र से पार लगा देती है अत: सारभूत है।

प्रभुभक्ति से शक्ति मिलती है, शक्ति से युक्ति और युक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है, यह जिनभक्ति संसार-समुद्र को पार करने के लिए नौका सदृश होने से सारभूत है।

'करे सेव ताकी करे देव सेवा' जो सेवा, वैयावृत्ति करता है वह तीर्थंकर

प्रकृति का बंध कर संसार से मुक्त हो जाता है अत: सेवा संसार में सारभूत है।

'दया धर्म का मूल है' जब तक जीवन में दया नहीं तब तक षट्काय जीवों की रक्षा नहीं हो सकती, चारित्र की आराधना नहीं बन सकती। 'चारित्तं खलु धम्मो', चारित्र धर्म है और धर्म का मूल दया है अत: दया संसार से तारने वाला अचूक धर्म होने से सारभूत है।

ध्यान की एक कणिका भी कर्मरूपी पर्वत को भस्म करने के लिए पूर्ण समर्थ उसी प्रकार है जिस प्रकार तृण के मकान को जलाने के लिए एक चिनगारी। ध्यान के बिना कर्मों की संवर-निर्जरा नहीं तथा निर्जरा के बिना कभी मुक्ति नहीं हो सकती, अत: ध्यान को मुक्ति का साधकतम कारण होने से सारभूत कहा गया है।

भारतीय संस्कृति में आचार्यों ने देना सिखाया, माँगना नहीं। जो देता गया है वही ऊँचा उठता गया है और जो जोडता गया है वह डूबता गया है। यदि इस असार संसार में सार पाना है तो–

जो है मंजूर धन रक्षा तो, धनवानो बनो दानी।
कुए से जल न निकला तो, सड़ जायेगा सब पानी।
दिया जल बादल ने हमें, तो ऊँचा हो गया बादल।
रहा नीचा ही सागर है, अदाता को पशेमानी।
कोई धन देके मरता है, कोई मरकर के देता है।
जरा से फर्क से बन जाते हैं, ज्ञानी से अज्ञानी।।

चाहे मरकर छोडो, चाहो तो छोडकर मरो। छोडकर मरोगे तो दुनिया तुम्हारा यशोगान करेगी और मरकर छोडोगे तो क्या होगा, आप सब जानते हैं। दान संसार में सारभूत है।

♦ ♦

४

एकला चालो

जैनदर्शन एक अलौकिक दर्शन है। इस दर्शन में बड़े-बड़े आचार्य हुए, जिन्होंने भव्यजीवों के कल्याणार्थ प्रचलित लोकभाषामय ग्रन्थों का सृजन कर जैनधर्म की महती प्रभावना की। इसी शृंखला में विक्रम की १४ वीं सदी, सन् १३८६ में सकलकीर्ति नामक महान् आचार्य हुए। आपने सरल संस्कृत भाषामय चौबीस तीर्थंकरों के पुराण, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार तथा सुभाषितरत्नावली आदि ग्रन्थ लिखे। सुभाषितरत्नावली ग्रन्थ में आचार्यदेव लिखते हैं–

जातश्चैको मृतश्चैक एको धर्मं करोति च।
पापं स्वर्गसुखे जीवः श्वभ्रे गच्छति कः समः ॥३०६॥

पञ्च-परावर्तन–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप इस संसार में यह जीव अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मरण को प्राप्त होता है। धर्म अधर्म को भी अकेला ही करता है तथा धर्म, अधर्म के शुभाशुभ फल को भी यह अकेला भोगता है। धर्म के फल से स्वर्ग या मुक्ति के फल को अकेला ही पाता है और अधर्म के फल से नरक के घोर दुःखों को भी अकेला ही पाता है। कोई भी इसके साथ नहीं जाता।

आचार्य कहते हैं–अनादिकालीन मोहबुद्धि से आसक्त मूढ़ प्राणी शरीर, पुत्र, घर, परिवार इन सबको ये मेरे हैं, मैं इन्हें नहीं छोड़ सकता, ऐसा कहता रहता है पर वे जिन्हें अपना माना था, स्वयं छोड़कर चले जाते हैं। मंगतरायजी बारहभावना में लिखते हैं–

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुख का भोगी,
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी।

कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा,
अपने-अपने सुख को रोए पिता पुत्र दारा।
ज्यों मेले में पंथीजन मिल नेह फिरे धरते,
ज्यों तरुवर पर रैन-बसेरा पंछी आ करते।
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारे,
जाय अकेला हंस संग में कोई न पर मारे॥

चैतन्य आत्मा द्रव्यदृष्टि से शाश्वत है, नित्य है, पर्यायों को बदलता रहता है। पर्याय अनित्य है, क्षणिक है। नवीन पर्याय की उत्पत्ति को जन्म और व्यय को मरण कहा जाता है। वह जन्म-मरण जीव अकेला करता है। सुख-दुख का भोक्ता भी अकेला ही होता है, अन्य की तो बात ही छोड़ दीजिये। जिस शरीर को यह सुबह से शाम तक सजाता है वह शरीर भी इसे छोडकर चला जाता है, एक समय भी इसके साथ नहीं जाता है।

एक समय आत्मा शरीर से कहने लगा—हे शरीर! तुम्हारे साथ रहते हुए, तुम्हें सजाते व पुष्ट करते हुए मुझे ६०-७० वर्ष पूरे हो गये। अब मेरी स्थिति तुम्हारे साथ रहने की नहीं। अब मैं परलोक में, परदेश में जा रहा हूँ। तुम कुछ समय के लिए मेरे साथ चलो—

सोलह सिंगार विलेपन भूषण से निशिवासर तोय सम्हारे,
पुष्ट करी बहु अन्न अरु पान दे, धर्म रु कर्म सबै ही बिसारे।
सेये मिथ्यात्व अन्याय किये बहु, तो तन कारण जीव संहारे,
भक्ष्य गिने न अभक्ष्य गिने, अब तो चल काय तू संग हमारे॥

चेतन की वार्ता सुन यह काया स्वार्थी, निगोड़ी क्या कहती है—

क्या अनहोनी कहो तुम चेतन, भंग खई कि भये मतवारे।
संग चली न चलूँ कबहूँ लखि यही अनादिस्वभाव हमारे॥
इन्द्र नरेन्द्र धरणेन्द्रन के संग नाहि गई तुम कौन विचारे।
कोटि उपाय करो तुम चेतन, तोहू चलूँ नहि संग तुम्हारे॥

तो मैं आपको बता रहा था—"और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी" शरीर भी आपके साथ जाने वाला नहीं है।

मृत्यु होने पर आपकी प्रिय स्त्री द्वार से दो कदम भी आगे नहीं आयेगी, परिवार भी मरघट तक जाकर ही लौट आयेगा। स्वार्थी संसार स्वार्थ का रोना रोयेगा—पुत्र सम्पत्ति के लिए रोएगा, पत्नी सहारे को रोएगी, बहिन मायरा (भात) भराने को रोएगी, पिता परिवार के नाम को, वंश कैसे चले इसलिए रोएगा। कोई ऐसा पूछने वाला न होगा कि मृत्यु कैसे हुई, भगवान के नामों को कान में किसी ने दिया या नहीं। समाधिपूर्वक मृत्यु हुई या नहीं। जिस पुत्र के लिए यह जीव दुख, शोक, यातनाएँ सहता है वही जीवननाशक होगा और पाप की सजा स्वयं को ही भुगतनी होगी।

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक ही तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ।।छ.ढा.५।।

अपने-अपने शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप का फल जीव को स्वयं ही भोगना पडता है, स्त्री, पुत्र, पुत्री कोई भी साझीदार होने वाला नहीं है।

यह संसार एक रंगभूमि, नाट्यशाला है। यहाँ जीव अपना-अपना पार्ट/अभिनय पूरा करके अपने-अपने पूर्व भव का लेन-देन चूक कर अपनी-अपनी दिशा में चले जाते हैं। संसार एक विशाल वृक्ष है जहाँ जीवरूपी पक्षी अपना रात्रिविश्राम कर अपनी-अपनी दिशा में चले जाते हैं। यह एक मेला है जहाँ यात्री स्नेह से मिलते हैं, अपनी-अपनी दिशा में लौट जाते हैं। "सन्तान को माँ जन्म दे सकती है, कर्म नहीं।" प्रत्येक जीव को अपने-अपने कर्मों का फल अकेले भोगना है, कर्मों का नाश भी अकेले ही करना है।

राम के साथ सीता वन को गई। राम ने जब चलने से इंकार कर दिया तब सीता ने कहा—मैं सुख के समय आपके पीछे-पीछे चलूँगी परन्तु दुःख के समय मार्ग के काँटे दूर करती हुई आपके आगे-आगे चलूँगी, उसी सीता को यात्रा के बहाने वन में अकेले जाना पड़ा, अकेले ही अग्निपरीक्षा देनी पड़ी और अकेली ही आर्यिका व्रत धारण कर वह स्वर्ग में देव-पद को प्राप्त हुई। सीता के लिए रावण से युद्ध करने वाले राम अष्टकर्मों का क्षय करके अकेले ही मांगी-तुंगी से मुक्त हुए, लक्ष्मण का स्मरण तक नहीं किया तथा लक्ष्मण प्रहरी की तरह राम की सेवा में निरत रहने वाले कर्मवैचित्र्य से अकेले ही नरक

गये। एक स्वर्ग, एक नरक, एक मोक्ष। जिस अञ्जना सती ने हनुमान के लिए घोर कष्ट उठाया, गर्भावस्था में वनों-वनों में घूमती रही, उस माँ को भी हनुमान छोड़ गये। अकेले ही मुक्ति को प्राप्त हुए। प्रद्युम्न पुत्र मोक्ष गया और श्रीकृष्ण त्रिखंडाधिपति नरक गये। जो बलराम, श्रीकृष्ण के बिना एक क्षण नहीं रह सकते थे उन्हीं को वन में अकेले छोड़कर श्रीकृष्ण मृत्यु को प्राप्त हो गये। नीतिकार कहते हैं–जीवन में एक बात ध्यान दो–''ध्यान एक का, स्वाध्याय दो का, संगीत तीन का और चलना चार का'' शोभा देता है। पर कर्म का शुभाशुभ फल अकेले ही भोगना होगा। तीर्थंकर आदि ब्रह्मा वृषभदेव भी इससे नहीं बच पाये। युग के आदि में जब कल्पवृक्ष समाप्त हो गये, प्रजा आदिनाथ स्वामी के पास आजीविका के साधन पूछने आई। राजा वृषभ ने कहा–''कृषि करो या ऋषि बनो।'' प्रजा खेती करने लगी पर सारा धान्य गाय-बैल खाने लगे। प्रजा फिर रक्षा का उपाय पूछने आई। राजा वृषभ ने कहा–उन पशुओं के मुख पर 'मूषा' बाँध दो। बस, तत्काल ही तीव्र अन्तराय कर्म बन्ध गया। **गुणभद्रस्वामी आत्मानुशासन** ग्रन्थ में लिखते हैं–

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकर किंकर इव।
स्वयं सृष्टा सृष्टे पतिरथ निधिना निज सुतः।।
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरुरप्याट जगती।
महोकेनाप्यस्मिन् विलसित मलंघ्यंहतीवधेः।।

गर्भ में आने के छह माह पूर्व जिनके चरणों में देव लोग दास के समान हाथ जोड़कर खड़े रहते थे, जो स्वयं युगस्रष्टा थे, षट्खंड का अधिपति नव-निधि व चौदह रत्नों का स्वामी भरत चक्रवर्ती जिनका पुत्र था, उन आदिनाथ भगवान को भी मुनि अवस्था में अकेले ही आहार की विधि के लिए भूखे रहकर छह माह तक घूमना पडा था। कोई विधिवत् आहार देने वाला नहीं मिला। सत्य ही है, बाँधे हुए कर्मों के, शुभाशुभ कर्मों के फल का उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। देव, इन्द्र आदि किसी का उपाय नहीं चलता।

अज्ञान अवस्था में जीव यह मानता है कि उसने ऐसा किया, पर को अपने कर्मों का कर्त्ता मानकर आर्त्तध्यान करता है। निमित्ताधीन दृष्टि में उलझकर,

अपने किये कर्मों की ओर से दृष्टि को मोड़ लेता है, जिससे नवीन कर्मबन्ध करता है। **अमितगति आचार्य सामायिक पाठ** में लिखते हैं–

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्॥

हे भव्यात्माओ! अपने स्वयं के द्वारा संचित शुभ-अशुभ कर्म को छोड़कर कोई भी किसी को सुख नहीं दे सकता। इसलिए "पर ने मुझे दुख दिया, पर के द्वारा मैं सताया गया" ऐसी मान्यता को तू छोड़। यह विश्वास कर कि तेरे स्वयं के पुण्य या पाप का उदय आया था जो मूल उपादान है, उसके फलदान में पर व्यक्ति तो निमित्त-मात्र है। **उपादान समर्थ होता है तो निमित्त कहीं तो मिल जाता है और कहीं मिलाना भी पड़ता है किन्तु निमित्त समर्थ होने पर भी उपादान मजबूत/समर्थ नहीं हो तो कार्य नहीं होता। किसी भी कार्य के होने में उपादान और निमित्त दोनों का समर्थ होना आवश्यक है।** मात्र उपादान या मात्र निमित्त से कार्य सिद्ध नहीं होता। दोनों १००-१००% आवश्यक हैं।

रामचन्द्रजी ने मर्यादा की रक्षार्थ सीता को कृतान्तवक्त्र सेनापति के साथ यात्रा के बहाने वन में छुड़वा दिया। वन में रथ से सीता को उतारते ही कृतान्तवक्त्र की आँखों से अश्रुधारा बह चली। सीता ने पूछा–क्या बात है, ये आँखों में आँसू क्यों?

सेनापति–"माँ! महलों की महारानी! स्वामी की आज्ञा आपको वन में छोड देने की है। स्वामी ने आपको वनवास की आज्ञा की है। यह मेरा कौन-सा पापोदय है जो इस कुकृत्य को मुझे करना पड रहा है। इस पेट को धिक्कार है, जिसने नौकरी के बहाने मुझसे यह कार्य कराया।" सेनापति रोता है, बिलखता है।

सीता विदुषी थी, तत्त्वज्ञानी थी, कहती है–"सेनापति! स्वामी राम ने वनवास दिया, ऐसा मत कहो। यह तो मेरा पूर्वकृत कर्म है, जो अपना रंग दिखा रहा है। स्वामी राम तो निमित्त-मात्र हैं। आपको अपना कर्त्तव्य करना है।"

सेनापति–माँ! स्वामी के लिए कोई समाचार देना है?

सीता–हाँ, स्वामी को मेरा प्रणाम कहना तथा कहना–सीता ने कहा है जैसे आपने किसी के कहने में आकर मुझे छोड़ दिया है, वैसे ही धर्म को न छोड़ देना, बस, इतना ही।

अरे जिया जग धोखे की टाटी।
जानबूझकर अन्ध भये हैं, आँखिन बाँधी पाटी॥
निकल जायेंगे प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी।
दौलतराम समझ मन अपने, हिय की खोल कपाटी॥

यह जीव अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य का स्वामी है, संसार की दशा को जानता हुआ भी अन्धा बना घूमता-फिरता है। हंस एक क्षण में निकल जायेगा, पुद्‌गल पड़ा रह जायेगा। हे आत्मन्! ज्ञान के कपाटों को, हृदय की आँखों को खोलो, कब तक बन्द रखोगे, जागृत हो जाओ। यह संसार धोखे का स्थान है।

पाण्डव पाँच फिरे वन में, रघुनन्दन को वनवास करायो,
रावण राय कियो सतखण्ड, सुधारस चन्द्र कलंक लगायो।
राय बड़ो हरिचन्द्र बलि तस डोम्बन के घर नीर भरायो,
कर्म न छोड़त इन्द्र नरेन्द्र को कर्मकरी सब लोक हरायो॥

पाँचों पाण्डव वन में भ्रमण करते रहे, उन पर उपसर्ग हुआ, किंचित् मोह भाइयों के प्रति आ गया तो नकुल, सहदेव तो रह गये, तीन पाण्डव मुक्त हो गये। सुबह राज्यगद्दी होनी थी, खुशियों के नगाड़े बज रहे थे पर वियोग की किलकारियाँ महल में मच गईं, रावण त्रिखण्डाधिपति भी जीवन में कलंक का टीका लगाकर बिदा हो गया, शान्ति का अमृत बरसाने वाला चन्द्रमा कलंक को प्राप्त हुआ, हरिश्चन्द्र जैसे बड़े राजा को भी शूद्र के घर पानी भरना पड़ा। ये कर्म प्रत्येक जीव को विधि अनुसार भोगने ही पड़ते हैं, कोई किसी का साथीदार नहीं हो सकता–

आप अकेला अवतरै, मरे अकेला होय,
यों कबहुँ इस जीव का, साथी सगा न कोय।

संसार में परद्रव्य में ममत्व, मोह, ममता आदि विकार, विभाव परिणाम ही बन्ध के कारण हैं। जो जीव परद्रव्य में ममत्व विभाव परिणाम को नहीं करते, वे मोक्षमार्ग को पाते हैं। वे एकत्व विभक्त आत्मा का साक्षात् पान करते हुए आनन्द की अनुभूति कर सकते हैं, स्व-पर कल्याण कर सकते हैं–

किसी नगर में तत्त्वज्ञानी, निर्मोही नामक एक राजा राज्य करते थे। उनका पुत्र वन में एक साधु के पास पहुँचा। कहने लगा–हे साधो! मुझे संसार से वैराग्य हो गया है, कृपाकर मुझे अपना शिष्य बना लीजिये। साधु ने उससे परिचय पूछा। राजकुमार ने कहा–महाराज! मैं पास के गाँव से आया हूँ, मेरे पिता राजा निर्मोही हैं मैं उन्हीं का पुत्र हूँ।

साधु आश्चर्य में पड गया, राजा और निर्मोही! यह कैसे? बालक! तुम यहीं बैठो मैं अभी गाँव में जाकर तुम्हारे परिवार का परिचय लेकर आता हूँ, फिर जैसा तुम कहोगे, अपना कर्त्तव्य करूँगा।

साधु गॉव मे पहुॅचकर सीधे राजमहल में पहुँच गये। साधु बिना रोक-टोक के अन्दर पहुँच गये। सर्वप्रथम उन्हें एक दासी दिखी। साधु ने दासी से कहा–

तू सुन दासी राय की, बात सुनाऊँ तोहि।
कुँवर विनास्यो सिंह ने, आनो पड़ियो मोहि॥

इस बात को सुन दासी कहने लगी–

ना मैं दासी राय की, ना कोई मेरो राय।
कर्मों के वश मेल यह, हुओ यहाँ पर आय॥

दासी का रुक्ष, उदासीनता-भरा उत्तर सुन साधु राजकुमार की पत्नी के पास पहुँचकर कहने लगा–

सुन सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवनवान।
वन में मारा शेर ने, तेरा पति गुणवान॥

वह तत्त्वज्ञा तुरंत बोल उठी–

निश्चय में यह बात है, पूरब योग संयोग।
मिले कर्म वश आन हम, अब विधि कौन वियोग।।

साधु आगे बढ़े और कुमार की माता से बोले–

रानी तुझको विपत की, बात हुई है आज।
वन में तेरे पुत्र को, खाय गया मृगराज।।

रानी ने साधु की बात सुनकर उत्तर दिया–

एक वृक्ष डालें घनी, पंछी बैठे आय।
ज्यों डालें पीली भई, पंछी उड़-उड़ जाय।।

अर्थात् रानी ने कहा–संसाररूपी वृक्ष पर मानवरूपी पक्षी आकर बैठते हैं, अपनी-अपनी आयु पूर्ण होते ही सब अपनी-अपनी दिशा में उड जाते हैं।

अन्त में साधु राजा के पास जा पहुँचा और कहने लगा–

राजा मुख कहत न बने, जो कुछ बीती बात।
सुत खायो मृगराज ने, आँखों देखी बात।।

निर्मोही राजा कहते हैं–

तपसी तप क्यों छाँडियो, यहाँ तनिक नहीं शोक।
वासी जगत सराय का, सभी मुसाफिर लोग।

हे तपस्वी! यह संसार एक धर्मशाला है, यहाँ एक आता है, एक जाता है, मुझे राजकुमार के जाने का तनिक भी खेद नहीं है। तुम तपस्वी होकर भी तपस्या छोड़कर यहाँ आये, यह ठीक नहीं।

साधु राजा के निर्मोही नाम की सार्थकता से प्रभावित हो, राजा से बोले– राजन्! आपका पुत्र मेरे पास साधु बनने आया है, आपकी क्या इच्छा है?

राजा–महाराज! इसमें मेरी इच्छा का सवाल ही क्या? वे नर भाग्यशाली हैं जो त्याग की भावना रखते हैं। मैं तो सांसारिक झगड़ों में ही फँसा हूँ और पुत्र साधु बनना चाहता है, आप उसे कल्याणकारी दीक्षा अवश्य दीजिये–

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर वे भी छोड़ चले जाते॥

मैं एक हूँ, अकेला आया हूँ, अकेला जाऊँगा, तन-धन-परीवार आदि सभी मुझे छोड़कर जाने ही वाले हैं, मैं भी इन्हें छोड़कर जाने ही वाला हूँ, अत: मुझे कोई आश्चर्य नहीं है।

श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव समयसार गाथा २९७ में लिखते हैं-

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा, सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ, परे ते त्ति णायव्वा॥

हे आत्मन्! प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए कि जो चेतने वाला है और देखने वाला है तथा जानने वाला है, चेतनस्वरूप आत्मा है वह ही एकमात्र मैं हूँ, शेष (परद्रव्य तो बहुत दूर) जो विभाव भाव हैं वे भी मुझसे परे हैं। मैं एक हूँ-

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणु मेत्तं पि॥स.सा.३८॥

निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ, किञ्चित्-मात्र भी परद्रव्य-परमाणु-मात्र भी मेरा नहीं है, इसी का बार-बार चिन्तन करो, अनुभव करो। और भी कहते हैं-

एगो मे सासगो आदा, णाणदंसण लक्खणो।
सेसा मे बाहिराभावा, सव्वे संजोग-लक्खणा॥

मैं एक शाश्वत आत्मा हूँ, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला हूँ, इससे भिन्न जितने भी परिणाम हैं, वे सब मुझसे बाह्य हैं, सब संयोगमात्र हैं और जहाँ संयोग है वहाँ वियोग अवश्य है। संयोग में वियोग है, तादात्म्य में कभी वियोग नहीं। तादात्म्य में संयोगवशात् विभाव, विकार हो सकता है पर उसका वियोग कभी नहीं हो सकता। जीव का ज्ञान-दर्शन के साथ तादात्म्य है। अत: उनमें कर्मों के संयोगवशात् विभाव, विकार आ सकता है, किन्तु ज्ञान-दर्शन का जीव से कभी वियोग नहीं हो सकता किन्तु अन्य द्रव्यों का जीव के साथ आज संयोग, कल वियोग अवश्यम्भावी है।

इस जीव ने अनादिकाल से काम-भोग-बन्ध की कथाओं का श्रवण किया, उनके परिचय में आया और अनुभव भी किया किन्तु "एकत्व विभक्त आत्म तत्त्व को प्राप्त करने का प्रयास ही नहीं किया।" आचार्यदेव लिखते हैं–

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोग बंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥स.सा.४॥

काम/स्पर्शन और रसना इन्द्रिय तथा भोग/घ्राण, चक्षु व कर्ण इन पञ्चेन्द्रियों के विषयों में राग को बढाने वाली कथा सभी जीवों ने सुनी है, परिचय भी किया है और अनुभव में भी आयी है किन्तु रागादि से भिन्न 'एकत्व' की प्राप्ति सुलभ नहीं है।

एक गरीब व्यक्ति गरीबी से परेशान हो परिवार की दयनीय स्थिति से घबराकर मरने का विचार करने लगा। उसके पडोसी ने उसे समझाया और कहा– भय्या! जयपुर में अमरचन्द दीवान हैं। उनसे एक बार मिल लो। वे तुम्हारी परिस्थिति को समझ जायेंगे तो अवश्य दरिद्रता को दूर करेंगे।

बेचारा दरिद्र! जयपुर पहुँचा। दीवानजी के राजभवन में जाकर उसने द्वारपाल से कहा–मैं दीवानजी से मिलना चाहता हूँ। द्वारपाल ने कहा–इस समय राजदरबार में आवश्यक विचार-विमर्श चल रहा है अत: आज तो उनसे मिलना असंभव ही है। दरिद्र को दीवानजी से मिलने की बहुत उत्कंठा थी अत: वह चैन से नहीं बैठ पाया। बुद्धिमान था अत: उपाय खोज निकाला। दरिद्र ने द्वारपाल से कहा–दीवानजी से जाकर कह दो आपके सादू भाई द्वार पर खड़े हैं, आपसे मिलना चाहते हैं, वे शीघ्र मुझे मिलने का समय देंगे।

द्वारपाल ने कहा–ठीक है। दौड़ता हुआ वह दीवानजी के पास पहुँचा और कहने लगा–स्वामी! आपके एक सादू भाई आपसे मिलना चाहते हैं। तत्त्वज्ञ दीवानजी ने कहा उनको आदर के साथ राजदरबार में ले आओ।

दरिद्री सम्मान के साथ दरबार में पहुँचा। फटे-पुराने कपड़े, भूख से शरीर कृश हो गया था, गरीबी से आँखें भीतर की ओर धँसी जा रही थीं। उसे देखते ही सभासद समूह खिल-खिलाकर हँस पड़ा। आपके सादू भाई ये हैं? ऐसी दरिद्रता! दीवानजी कहने लगे–भाइयो! यह मेरा सादू भाई है, इसमें

हँसने की कोई बात नहीं। सुनिये–

सभासदजनो! ध्यान दीजिये, पुण्य और पाप दो सगे भाई हैं। उनमे पुण्य की पुत्री सम्पत्ति उसका विवाह मेरे साथ हुआ और पाप की पुत्री विपत्ति का विवाह इस दीन-दुखी भाई के साथ हुआ है, तब यह मेरा साढू भाई हुआ या नहीं। दीवानजी की गम्भीरता, तत्त्वज्ञता को सुनकर सभी सभासद अवाक्, चित्रलिखित सम रह गये। **वैराग्य मणिमाला** में आचार्यदेव कहते हैं–

यह बेचारा संसारी जीव अकेला ही नरक जाता है, विवेकी शुभ-परिणामी होने पर अकेला ही स्वर्ग जाता है, राजा अकेला होता है, कुबेर अकेला होता है और विवेकरहित सेवक भी अकेला ही होता है, तथा–

एको रोगी शोकी एको। दुःखविहीनो दुःखी एकः।
व्यवहारी च दरिद्री एकः। एकाकी भ्रमतीह वराकः॥

चाहे रोग की दशा हो या शोकपूर्ण दशा हो, दुःखों से रहित दशा हो या दुःख सहित दशा हो, व्यवहारवान् या दरिद्र अवस्था हो, सबको यह जीव अकेला भोगता हुआ व्यर्थ ही भ्रमण करता है, पर एकत्वविभक्त आत्मा की प्राप्ति नहीं कर पाता है।

एक बहुत बड़ा डाकू वाल्मीकि, अपने परिवार का पोषण करने के लिए प्रतिदिन चोरी करता, लूटपाट करता, डकैती करता था। एक दिवस एक साधु ने कहा–बेटा! तुम यह सब पाप-कर्म किसके लिए करते हो? अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए। साधु ने कहा–तुम्हारे धन की बँटवारी करने में सब परिवार साथ रहेगा पर इस घोर पाप का फल तुम्हें अकेले ही भोगना पड़ेगा। वाल्मीकि ने कहा–ऐसा नहीं, जो भी मेरे धन का उपभोक्ता है–माँ, पत्नी, बच्चे सबको इसका कुफल भोगना होगा। मैं अकेला कैसे? साधु ने कहा–तुम जाकर अपने परिवार से इस संबंध में पूछो। वाल्मीकि दौड़ता हुआ माँ के पास पहुँचा। कहने लगा–माँ! मैं प्रतिदिन निर्दोष जीवों को मार-पीट कर, उनके घर डाका डालकर यह धन, अनाज, रोटी, कपड़ा आप लोगों के सुख के लिए लाता हूँ। इस पाप-कार्य का फल आपको भी भोगना होगा या मुझ अकेले को? माँ, पत्नी आदि सभी परिवार के लोग कहने लगे–हम तो सुख भोगने वाले हैं; आपका

कार्य है, हम लोगों का पालन करना, अब आप कुछ भी करें, हमें इससे क्या प्रयोजन। आप खरी कमाई करो या खोटी, पाप का फल तो आपको ही भोगना पड़ेगा। इन वचनों को सुनते ही वाल्मीकि का कायाकल्प हो गया। वे संसार से उदासीन हो महर्षि वाल्मीकि बन गये और वाल्मीकि रामायण की रचना की। आचार्यदेव कहते हैं–इस लोक में 'एकत्व को प्राप्त' एकत्वविभक्त आत्मा ही एकमात्र सुन्दर है–

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होइ ।।३ ।।

अर्थात् एकत्वनिश्चय को प्राप्त, निश्चय से अपने स्वभाव में स्थित शुद्ध आत्मा ही लोक में सर्वत्र सुन्दर है, शोभा को प्राप्त होने वाला है, इसलिए एकत्व में पर/दूसरे के साथ बन्ध की कथा विसंवाद करने वाली है।

हे भव्यात्माओ! उस एक शाश्वत आत्मा की प्राप्ति का उपाय करो। आज तक जो हुआ उसे भूलकर आगे के लिए सुधार करो। "बीति ताहि विसार दे आगे की सुध ले" अर्थात् अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा। अभी भी सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु का सान्निध्य, उत्तम कुल, पञ्चेन्द्रिय, मनुष्यायु आदि सभी अनुकूल सामग्री प्राप्तकर उससे सर्वसुन्दर, शाश्वत, एकत्वविभक्त आत्मा की प्राप्ति के पुरुषार्थ में रत हो जाओ।

तुलसीदास जी कहते हैं–

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुण्य दोऊ बीज हैं, बुवै सो लुने निदान ।।

यह शरीर खेत है, मन एक कृषक है। कृषक जैसा बीज बोता है वैसा फल मिलता है, अतः यहाँ मनरूपी किसान जैसे परिणामों रूप बीज बोयेगा– पुण्य या पापरूप, वैसा ही काटेगा अर्थात् मन में जैसे परिणाम होंगे वैसा ही फल जीव को मिलेगा। पुण्य के उदय से जीव की चकाचक स्थिति होती है और पाप के उदय से फकाफक होती है। पुण्य के उदय में जीव करोड़पति होते हैं और पाप के उदय में रोडपति।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं–अनन्तकाल भ्रमण करते हुआ, किन्तु अभी भी समय है, सम्हल जाओ। मैं तुम्हें मोक्षमार्ग का, शान्ति का उपाय बताता हूँ, इसे एक बार करो, मैं विश्वास के साथ कहता हूँ तुम्हारी आत्मा मुक्ति-पथ को शीघ्र प्राप्त करेगी–

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन,
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्णमासमेकं।
हृदयसरसि पुंसा पुद्गलाद् भिन्न-धाम्नो,
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किञ्चोपलब्धि॥३४॥स.क.॥

हे भाई! विश्राम ले। संसार के अप्रयोजनीय कोलाहल से विराम ले। तुझे अप्रयोजनीय कोलाहल से क्या लाभ है? तू इन विषय-कषायादि भावों से विरक्त हो जा और एक चैतन्यमयी आत्मवस्तु में स्वयं निश्चल होकर छह मास तक अभ्यास कर और देख कि अपने हृदयरूपी सरोवर में पुद्गल से भिन्न जो तेज प्रकाश है ऐसे उस आत्मा की प्राप्ति होती है या नहीं?

"एक होती है कर्त्ताबुद्धि और दूसरी होती है कर्त्तव्यबुद्धि।" कर्त्ताबुद्धि रागी जीव में होती है और कर्त्तव्यबुद्धि वैरागी जीव में होती है, इसीलिए आचार्य कहते हैं–

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज॥

रागी जीव कर्मों को बाँधता है, वैरागी कर्मों से छूटता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव का उपदेश है। भव्यात्माओ! कर्त्ताबुद्धि–मैंने किया, मैंने उसका अच्छा किया, बुरा किया, मेरे बिना घर का, दुकान का पत्ता भी नहीं हिलता, इत्यादि को छोड़ो। कर्त्तव्यबुद्धि में राग नहीं होता उसको करते हुए मुक्तिमार्ग को अपनाओ।

♦♦

५

जहाँ देह अपनी नहीं

जैन दर्शन विश्ववन्दनीय दर्शन है। जैनदर्शन में जैनाचार्यों ने अपनी करुणामयी दृष्टि से प्राणीमात्र के हित की अजस्र धारा बहाते हुए जीवों के अज्ञान तिमिर से अन्ध चक्षुओं को खोलकर महान् उपकार किया है। इसी अक्षुण्ण परम्परा में अध्यात्म की तरंगिणी में गोता लगाने आचार्य कुन्दकुन्द जीवों की मोह-पाश से सनी अज्ञान बुद्धि का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

अहमेदं एदमहं अहमेस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्तमिस्सं वा ॥२०॥

आसि मम पुव्वमेदं, अहमेदं चावि पुव्वकालह्हि।
होहिदि पुणो विमज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि ॥२१॥

अण्णाण मोहिदमदी, मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा, जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥२३॥

अज्ञान में मोहित बुद्धि वाला जीव मिथ्यात्व रागादि विविध परिणामों से युक्त हुआ बद्ध-शरीरादि और अबद्ध-शरीर से भिन्न स्त्री, पुत्र आदि पुद्गल द्रव्य मेरा है, ऐसा कहता है। इतना ही नहीं, अपने से अन्य स्त्री-पुत्रादिक चेतन, घर, धन-धान्यादिक अचेतन व ग्राम, नगर आदि मिश्र पदार्थों के संबंध में ऐसा मानता है कि "यह मैं हूँ", "यह द्रव्य मुझ स्वरूप है," "मैं इसका ही हूँ", यह मेरा है, यह पूर्व में मेरा था, पूर्वकाल में मैं भी इस रूप था, भविष्य में भी यह मेरा होगा और मैं भी इस रूप होऊँगा।

कुन्दकुन्ददेव रचित अध्यात्म पीयूष को अपनी '**अमृत कलश**' नामक

अजस्र अध्यात्म तरंगिणी रूप अमृतवाणी द्वारा जन-जन को पान कराने वाले अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं–

अहो जीव की मोहित बुद्धि–

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा-
दात्मानमात्मा विदधाति विश्वम्।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष,
नास्तीह येषां यतयस्त एव॥

विश्व के चेतन-अचेतन आदि समस्त पदार्थों से भिन्न होता हुआ भी यह अज्ञानी, मोही आत्मा, राग-द्वेष, मोह आदि परिणामों के प्रभाव से अपने को विश्वरूप करता है अर्थात् विश्व के समस्त पदार्थों को अपना मानता है। यह एकमात्र मोह का ही अध्यवसाय है। इसका मूल, जड़ मोह ही है, यह मोह जिनके नहीं है वे ही यति हैं, साधु हैं, ऋषि हैं, मुनि हैं।

अर्थात् मोह का इस जीवरूपी राजा पर कैसा अद्भुत प्रभाव है कि विश्व के अनन्तानन्त पदार्थ जो साक्षात् जीव से भिन्न हैं चेतन, अचेतन, मिश्र सबको अपना मानता है, जबकि परमाणु-मात्र भी परद्रव्य इस जीव का नहीं है और न हो सकता है।

जीव की इस वार्ता को सुनकर आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं– भय्या! तेरी इसी मोहबुद्धि से विकृत वार्ता को भी मैं एक क्षण के लिए मान लूं कि "परद्रव्य तेरा है", कर्म–द्रव्यकर्म, ज्ञानावरणादि, भावकर्म–रागादि तेरे हैं, नोकर्म–शरीरादि तेरे हैं, परन्तु "सव्वण्हुणाणदिट्ठो, जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं" सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया जीव तो सदा ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षण का धारक है, वह पुद्गल द्रव्य रूप कैसे हो सकता है। जो तुम कहते हो कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है। भाई! पुद्गल द्रव्य अपने मूर्तिक स्वभाव को छोड़कर ज्ञानदर्शन रूप हो जावे और जीव द्रव्य ज्ञानदर्शन स्वभाव को छोड़कर पुद्गल रूप हो जावे तब तो मैं सहज मान लूँ कि पर द्रव्य तेरा है पर तीनों कालों में भी ऐसा होता नहीं।

जीव अपनी विपरीत बुद्धि को तो छोड़ता नहीं और क्या-क्या मान्यता भ्रमित होकर करता है इसका सुन्दर चित्रण छहढालाकार करते हैं–

मैं सुखी दुखी, मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण॥

मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, राजा हूँ, रंक हूँ, मेरा धन है, पशु हैं, मेरा बहुत प्रभाव है, मेरे पुत्र आज्ञाकारी हैं, मेरी स्त्री है, मैं बलवान, दीन, कुरूप, सुरूप, मूर्ख, ज्ञानी आदि हूँ, "पज्जबुद्धि मूढो" पर्याय बुद्धि करता है।

मैं अभी आप से पूछता हूँ–ये पुत्र, स्त्री, धन, मकान, पोता-पोती आपके हैं? आप गा-गाकर मुझे सुनायेंगे–अरे महाराज!

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट है, पर हैं परिजन लोय॥

जब शरीर ही अपना नहीं तो ये स्त्री, पुत्र, परिवार, धन-सम्पत्ति कैसे अपने हो सकेंगे? क्या आप यह सच कह रहे हैं? मन्दिर तक, प्रवचन तक के लिए या घर में भी–नहीं घर में जाते ही, दुकान में पहुँचते ही हमारे भाव बदल जाते हैं–वहाँ हमारी हालत क्या है–

जहाँ मिले अपना कहो, रहे न कुछ भी झूठ।
ले ले दहेज कोठी भरो, प्राण जायेंगे छूट॥

जीवन में कितनी विचित्रता है, एक शरीर की रक्षा के लिए तो सतत भेद विज्ञान करते हैं, पर जिसका हमें स्वामित्व मिला उसके लिए किंचित् उपयोग भी नहीं देते। आप नारियल खाते हैं, जी हाँ! कैसे छिलका सहित? नहीं। छिलका मुँह में गया कि गले में अटक जायेगा, प्राणों की बाजी आ जायगी, क्या करते हैं? छिलका अलग, नारियल अलग, केला अलग, छिलका अलग, बादाम अलग, छिलका अलग, मौसम्बी अलग, छिलका अलग, नारंगी अलग, छिलका अलग प्रत्येक समय किसी भी वस्तु को खाते हुए शरीर की रक्षार्थ भेदविज्ञान करते हैं, ऐसा भेद विज्ञान अपने प्रभु आत्मद्रव्य के लिए कभी करते हैं क्या? भाई, जैसे मूँगफली अलग है, छिलका अलग है, वैसे शरीर अलग है, आत्मा अलग है, कर्म अलग हैं, आत्मा अलग है, नोकर्म जुदा हैं, आत्मा जुदा है, भावकर्म भिन्न हैं, आत्मा भिन्न है, एक बार सबसे भिन्न, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल व परभाव से भिन्न अपनी चैतन्य आत्मा को निहारो–

जल पय ज्यों जिय तन मैला, पै भिन्न-भिन्न नहीं भेला।
त्यों प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा॥

दूध और पानी एकक्षेत्रावगाही रहते हुए भी जैसे भिन्न-भिन्न हैं, दोनों का अस्तित्व भिन्न है वैसे ही संयोग से प्राप्त, एकक्षेत्रावगाही रहते हुए भी शरीर, आत्मा से भिन्न है। दोनों के धर्म, गुण समान नहीं हैं। जब दूध-पानीकी तरह एक दिखने वाले शरीर व आत्मा भी एक नहीं हैं तो साक्षात् भिन्न दिखाई देने वाले धन, मकान, पुत्र, स्त्री आदि अत्यन्त भिन्न पदार्थ जीव के कैसे हो सकते हैं? कभी नहीं।

राजस्थान में रहने वाले आप यहाँ की रेतीली भूमि से परिचित ही हैं। यहाॅ गर्मी में ऐसी गर्म हवा चलती है कि रेती के बड़े-बडे टीले उत्तर से दक्षिण में, पूर्व से पश्चिम में चले जाते हैं। इन गर्मी के दिनों में 'मृगतृष्णा' मृग प्यास से व्याकुल होकर दौड़ लगाता है, सामने चमकती रेतीली भूमि उसे किरणों के सयोग से पानी नजर आती है, दौड़ता हुआ वह समीप जाता है पर पानी न देख निराश हो जाता है, पुन: आगे दृष्टि दौड़ाता है, वही पानी वहाँ नजर आता है, पग तेजी से बढाता है, पर पुन: रेती देखकर प्यास से व्याकुल हुआ उठता है, दौडता, थकता है, अन्ततोगत्वा प्राणों का त्याग कर देता है, पर कुछ भी प्र०ाप्त नहीं करता। यही दशा यहाँ जीव की बनी हुई है। मंगतरायजी बारह भावनाओं में इसका सुन्दर चित्रण करते हुए लिखते हैं–

मोह रूप मृगतृष्णा जग में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ दौड़े थक-थक कै॥

जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता॥१२॥

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिलै अनादि यतनतैं बिछुड़े ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सब सों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौलों पौरुष थके न तौलों उद्यमसों चरना॥१३॥

मोहरूपी 'मृगतृष्णा' परद्रव्य में सुख की कांक्षा में यह चेतनरूपी मृग यत्र-तत्र भ्रमण कर रहा है, सोचता है, यहाँ सुख मिलेगा, यहाँ सुख मिलेगा, अब मिलेगा, अब मिलेगा इसी आर्त्तध्यान में प्राणों को खो देता है, इसे किंचित्मात्र भी हाथ नहीं लगता। परद्रव्य से सुख की चाह में भटकता हुआ यह जीव आशा ही आशा में भटकता है, पर द्रव्य को अपना बनाता है, मानता है किन्तु कभी भेदज्ञान करने की चेष्टा नहीं करता।

हे भव्यात्माओ! चिन्तन करो, विचार करो, यह शरीर अचेतन है, तुम चेतन हो, शरीर अज्ञानी जड है, तुम ज्ञानी हो। ये अनादिकाल से दूध-पानी की तरह एकमेक हो रहे हैं। पुरुषार्थ के द्वारा दूध और पानी को जैसे अलग किया जा सकता है, वैसे भेदज्ञान का पुरुषार्थ कर शरीर और आत्मा को अलग-अलग करने का प्रयास करो। तुम चेतन द्रव्य हो, तुम्हारा रूप सारे जगत् में न्यारा, अलौकिक है, उसे प्राप्त करने के लिए जितना हो सके, अधिकाधिक उद्यम करो। बिना तप:साधना रूप पुरुषार्थ के, बिना भेद विज्ञान के उस परमात्मपद की सिद्धि नहीं हो सकती।

एक राजा जो लक्षपति थे पर मन से अत्यन्त विरागी थे, उनकी रानी का नाम फूलांदे था। उनकी रानी, उनकी पुत्री, उनकी दासी सभी विरागी थे। किसी कवि ने कहा भी है–

लाखा राजा हुआ एक जो मन में अति वैरागी।
करते हुए राज्य भी उसने मन से ममता त्यागी॥

वह कहने लगा–

मरदो धर्म साधलो जल्दी, लाखो कहे सुपट्ट।
कितना दिन है जीवणों के सत्ता के अट्ठ॥

राजा मानव-समाज के लोगों को संबोधन देता हुआ कहने लगा–हे मर्दो! हे समाज के बन्धुओ! जीवन का कोई भरोसा नहीं है, अत: धर्म की साधना जल्दी कर लो। जीवन मात्र सात या आठ दिन का है।

राजा की बात रानी के कानों में जा पहुँची। वह बोली–

फूलांदी सांची कहे, सत्ता से अठ दूर।
राते देख्या मुलकता, वे नहीं उगता सूर॥

स्वामिन्! सात और आठ दिन की जिन्दगी तो बहुत दूर की बात है जिन्हें हमने रात्रि में हँसते हुए देखा वे प्रातःकाल ही परलोक जा बसते हैं।

राजपुत्री दोनों से अधिक वैरागी थी। कहने लगी—

पिताजी भूले बात को, माँ भी भूली सोय।
आँख्या के टिमकारते, क्या जाने क्या होय॥

धर्म विलम्ब न कीजिये, खिन खिन टूटे जाय।
आँख्या जब मुंद जायसी, फेर न चले उपाय॥

माता-पिता दोनों ही रहस्य को भूल गये। यह बात तो ऐसी है कि आँखों के टिमकारने मे जितना समय लगता है उसमें न चाहे क्या-क्या हो जाता है। इसलिए शीघ्र धर्म की साधना करनी चाहिए। आँख मुँदी कि सबका सब ठाट यहीं रह जायेगा।

दासी के वैराग्य का तथ्य अनुपम ही था। वह कहने लगी—

राजाजी समझे नहीं, नहीं बाई नहीं जोय।
सांस बटाउ पावणो, आव न आवन होय॥

राजाजी, रानीजी, बाई तीनों ही बात नहीं समझ पाये, आँख टिमकारने में तो फिर भी समय लगता है। यह श्वास एक पथिक के समान है। एक बार श्वास जाने के बाद आवे या न आवे इसका कौन भरोसा—श्वासोच्छ्वास के बीच समय में ही जीव महाप्रयाण कर काल-कवलित हो जाते हैं, इसीलिए आचार्य कहते हैं—

साँस साँस में प्रभु रटो, वृथा साँस मत खोय।
निज प्रभु रटते चतुर नर, तेरा मंगल होय॥

कुन्दकुन्दस्वामी समयसार ग्रन्थ में लिखते हैं—जीव रत्नत्रय स्वभाव वाला है किन्तु—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मल मेलणाछण्णो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं॥१५७॥

जैसे वस्त्र की सफेदी मैल के संसर्ग से व्याप्त होकर नष्ट हो जाती है, वैसे ही मिथ्यात्वरूपी मैल के संसर्ग से व्याप्त जीव का सम्यक्त्व/असली स्वभाव नष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल के संसर्ग से व्याप्त हुआ ज्ञान नष्ट हो जाता है तथा कषायरूपी मल से व्याप्त आत्मा का चरित्र भी नष्ट हो जाता है। अर्थात् मिथ्यात्व-सम्यक्त्व को अज्ञान ज्ञान को व कषाय चारित्र को नहीं होने देते, नष्ट कर देते हैं।

छहढाला में भी पढ़ते हैं–

ऐसे मिथ्यादृग ज्ञान चर्ण, वश भ्रमत भरत दुख जन्ममर्ण।
तातैं इनको तजिये सुजान,

भव्यात्माओ! मोहरूपी राजा का हमारे जीवन पर शासन चल रहा है। इसके दो भयानक पुत्र हैं–१. दर्शनमोह, २. चारित्रमोह। ये दोनों विष हैं। दर्शनमोहनीय हलाहल विष है तो चारित्रमोह विष है। दर्शनमोह के उदय में जीव हेयोपादेय बुद्धि से रहित हो सप्ततत्त्व का, देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान ही नहीं कर पाता। दर्शनमोह तत्त्व-निर्णय नहीं होने देता और चारित्रमोह संयम को धारण करने नहीं देता।

उमास्वामी आचार्य कहते हैं–

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्।

संवेग और वैराग्य की प्राप्ति के लिए संसार और शरीर के स्वभाव का बार-बार चिन्तन करना चाहिए।

जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना होती है उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। इस शरीर का स्वभाव 'गलन-पूरण' होना है। शरीर के ५ भेद हैं– १. औदारिक, २. वैक्रियिक, ३. आहारक, ४. तैजस और ५. कार्मण। इनमें मनुष्य तिर्यञ्चों के औदारिक, तैजस व कार्मण, देवों व नारकियों के–वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर होते हैं। इस जीव का तैजस, कार्मण शरीर के साथ अनादि संबंध है। ये शरीर हमारे नहीं हैं, पुद्गल हैं, जड़ हैं, अचेतन हैं, ऐसे

शरीर से ममत्व का त्याग करना हमारा कर्त्तव्य है। पूज्यपाद स्वामी समाधितन्त्र ग्रन्थ में कहते हैं–

मूलं संसारदुखस्य देह एवात्मधीस्ततः।

संसार के दुःखों का मूल शरीर में आत्मबुद्धि है। संसार का मूल कारण शरीर है। तीनों कार्यों को देखने से वैराग्य होता है–

कथा सुनत, मुर्दा जलत, स्त्री संग के अन्त।
ये विचार निशदिन करत क्यों न मिले भगवन्त॥

प्राचीनकाल में दादी माँ, माताएँ महापुरुषों की, सतियों की कथाएँ सुनाती थीं। उस समय जीवों में वैराग्य होता था, संसार से भीति उत्पन्न होती थी, आज तो वह बात रही नहीं–दादी माँ, माँ, सब टी.वी. सिनेमा देखने में लगे हुए हैं, बच्चों को कौन सुनाए, बच्चों को भी जन्म के २ माह बाद से ही टी.वी. सुनाना शुरू। अब कहाँ वैराग्य, राग की ही चाह है। पहले श्मशान भूमि में मुर्दा जलाने जाते थे, जब तक मुर्दा नहीं जलता कोई मुँह में पानी नहीं डालता। बस, एक ही बात-बेचारा मर गया, संसार की दशा ऐसी है, ऐसा विचार चलता था, पर आज तो श्मशान भूमि पर भी नाश्ता-पानी की व्यवस्था हो गयी है, मुर्दा जलता है उतने समय भी मानव नाश्ता-पानी करने में संकुचित नहीं होता। इसी प्रकार स्त्री का संसर्ग करने के बाद नीरस लगता है, तब भी वैराग्य का अवसर था, पर निशदिन कामभोग की वार्ता, टी.वी. उपन्यास की धुन लगे जीवन में वह वैराग्य भी कहाँ।

आचार्य कहते हैं–पुराण पुरुषों के चरित्र, मुर्दा का जलना व स्त्री-संसर्ग की नीरसता का चिन्तन करने से जीव को भगवान् आत्मा की प्राप्ति होती है।

आत्मस्वभावं परभाव - भिन्न-
मापूर्ण माद्यन्तविमुक्त - मेकम्।
विलीनसंकल्पविकल्प - जालं
प्रकाशयन् शुद्ध नयोऽभ्युदेति॥१०॥

आत्मा का स्वभाव चेतन-अचेतन आदि परभावों से भिन्न है, वह आत्मस्वभाव, अनन्त ज्ञान आदि गुणों से परिपूर्ण है, इस आत्मा को किसी

ने उत्पन्न नहीं किया है, न इसको कोई उत्पन्न ही कर सकता है। यह आत्मा अनादि, अनन्त है, समस्त भेदों से रहित है, एकाकार रूप है तथा पर द्रव्य मेरे हैं ऐसे संकल्प और मैं सुखी-दुःखी हूँ, ऐसे विकल्पों के जाल से रहित है। ऐसे आत्मा का शुद्ध स्वरूप शुद्धनय के प्रगट होने पर उद्घाटित होता है।

आत्मा के तीन भेद हैं–१. बहिरात्मा, २. अन्तरात्मा और ३. परमात्मा।

बहिरात्मा जीव–"करि करे देह में निज पिछान" शरीर में आत्मबुद्धि करता है।

अन्तरात्मा–शरीर और आत्मा का भेद कर, शरीर से भिन्न आत्मा में ही श्रद्धा करता है।

परमात्मा–शरीर से आत्मा को अलग कर शुद्धात्मा की प्राप्ति करने वाले परमात्मा हैं।

एक वकील थे। वे घर से प्रायः बाहर ही रहा करते थे। दुनिया की सारी खबरें उनको मालूम थीं। एक दिन छुट्टी के समय वे घर के बच्चों को लेकर बैठ गये और बच्चों से बोले–बच्चो! तुम अब्राहम लिंकन को जानते हो? बच्चों ने कहा–नहीं। फिर पूछा–बच्चो! तुम वाशिंगटन को जानते हो? बच्चों ने कहा–चाचाजी, हम नहीं जानते। वकील साहब ने कहा–दिनभर घर में पड़े रहते हो, घर से बाहर निकलो तो पता लगे। चाचाजी को गुस्सा आया देख, बच्चों को भी अपमान सहन नहीं हुआ। बच्चों ने कहा, चाचाजी–अब आप हमारे प्रश्न का उत्तर दे दीजिये। चाचाजी अहं-भाव से बोले–हाँ, हाँ, बोलो, क्या पूछना चाहते हो?

बच्चों ने कहा–चाचाजी! आप रामू को जानते हो?

चाचाजी कहने लगे–रामू! रामू कौन? मैं तो नहीं जानता।

बच्चे तड़ाक से ताड़ना देते हुए बोले–बाहर ही बाहर घूमते रहते हो, घर में कौन है, घर में रहो तो रामू कौन है पता चले। चाचाजी! रामू आपका छोटा पुत्र है।

आचार्य कहते हैं–जीव को बाहर-बाहर घूमते, बाहर की बातों की चर्चा करते हुए अनन्तकाल व्यतीत हो गया, किन्तु इसने अन्दर के रामू को जानने की कभी चेष्टा नहीं की। कवि कहते हैं–

कोई मौन धरे, कोई योग करे, कोई आसन मांड के ध्यान ठरावें।
कोई तीर्थ फिरे, कोई जाप करे, कोई प्रीति सु अंग विभूति लगावे॥
कोई राम कहे, रहमान कहे, कोई गंग समुद्र के संगम नहावे।
जौं लग तत्त्व विचार न जानत, तौ लग मुक्ति वधू नहीं पावै॥

तत्त्वप्रतीति के बिना बाहर से समस्त साधना मुक्ति की साधिका नहीं हो सकती। तत्त्व की प्रतीति कर अपने मणि, अपने आत्मारूपी हीरे को खोजने का उसी को प्राप्त करने का प्रयास मानव-जीवन की सार्थकता है–

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः॥
काष्ठमध्ये यथा वह्निः शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डितः॥

हे भव्यात्माओ! बहिरात्मापने का त्याग करो और अन्तरात्मा बनो। जैसे स्वर्ण पाषाण में सोना, दूध में घी, तिल में तैल विद्यमान रहता है वैसे ही इस शरीर में आत्मा विराजमान है, इसकी प्राप्ति करो। इसका दर्शन करने का पुरुषार्थ करो। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि शक्तिरूप में विद्यमान रहती है वैसे ही इस नश्वर शरीर में भगवान् आत्मा विराजमान है, उसे देखो। शरीर से भिन्न उस आत्मा का दर्शन करो।

मैं कौन हूँ? मैं सहजानन्दी, शुद्धस्वरूपी अविनाशी आत्मा हूँ, शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूँ, कर्म अलग हैं, मैं अलग हूँ ऐसा भेदज्ञान का अभ्यास करो–

चिन्तय निजस्थं सिद्धं, आलोचय कायस्थ बुद्धं।
स्मर पिंडस्थं परमं पवित्रं, कल केवल केलि शिवलब्धम्॥

बार-बार चिन्तन करो। चिन्तन की धारा अजस्र बहने दो–शरीर में स्थित सिद्ध शुद्ध चैतन्य आत्मा का चिन्तन करो। शरीर में स्थित ज्ञानमयी, ज्योतिपुञ्ज आत्मा का अवलोकन करो। शरीर में स्थित अत्यन्त पवित्र उसी आत्मा का बार-बार स्मरण करो, केवलज्ञान गंगा में क्रीड़ा करो और मुक्ति को प्राप्त करो।

♦ ♦

६

तू नित पोखे यह सूखे

जैनदर्शन में पूज्यपाद नाम के एक महान् आचार्य हुए। उन्होंने सरस, सरल संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की। उमास्वामी आचार्य विरचित तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ पर सर्वप्रथम टीका पूज्यपाद स्वामी ने ही की, जो सर्वार्थसिद्धि नाम से प्रसिद्ध हुई। कहावत प्रसिद्ध है "लक्षणं पूज्यपादस्य।" पूज्यपाद स्वामी ने सिद्धान्त ग्रन्थों में जो लक्षण दिये हैं वे अकाट्य हैं। अव्याप्ति, अतिव्याप्ति असंभव आदि दोषों से रहित हैं। सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ के नवम अध्याय सूत्र ७ की टीका में आचार्यदेव लिखते हैं, सबसे अपवित्र कौन? "शरीरमिदमत्यन्ताशुचि-योनि शुक्रशोणिताशुचिसंवर्धितमवस्करवदशुचिभाजनं त्वङ्मात्रप्रच्छादितमतिपूरित रसनिष्यन्दिस्रोतो बिलमङ्गारवदात्मभावमाश्रितमप्याश्वेवापादयति।"

यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है तथा अत्यन्त अपवित्र पदार्थों का उत्पत्ति स्थान है। शुक्र, शोणित रूप अपवित्र पदार्थो से वृद्धि को प्राप्त हुआ, शौचालय के समान अशुचि पदार्थों का भाजन है। त्वचा मात्र से ढका हुआ है। अति दुर्गन्ध रसों को बहाने वाला झरना है। अंगार के समान अपने आश्रय में आये पदार्थों को भी शीघ्र नष्ट करता है। स्नान, अनुलेपन, धूप का मालिश, सुगन्धितमाला आदि के द्वारा भी इसकी अपवित्रता को दूर करना शक्य नहीं है।

प्रतिदिन बारह भावना में आप पढ़ते हैं–

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन-गेह॥

हाड़-मास का पिंजरा यह शरीर चमड़े की चादर में जड़ा हुआ चमक रहा है, दुनिया इस चमड़े मात्र को प्यार कर रही है। चमड़े पर दीवानी हो रही है। पर हे अज्ञानी! एकबार चमड़े की चादर उघाड़कर अन्दर झाँक तो ले, इस शरीर के समान घिनावना/अपवित्र, घृणास्पद स्थान दुनिया में और कोई भी नहीं है।

कवि कहते हैं–

नौ द्वारों का पींजरा, तामे पंछी पौन।
रहने को अचरज महा, गए अचंभा कौन॥

यह शरीर नव मलद्वारों से बना एक पिंजरा है। इस अपवित्र मल के पिटारे में परम शुद्धनय से सिद्ध समान शुद्ध, ज्ञान-दर्शन सच्चिदानन्दमयी आत्मारूपी पंछी अनादिकाल से वास कर रहा है। यह बडे आश्चर्य की बात है, ऐसे पिंजरा को छोड़कर उड जाता है, इसमें मुझे कोई आश्चर्य नहीं।

आश्चर्य यह है कि पिंजरे को साफ करते, पुष्ट करते हैं, नहलाते-धुलाते हैं, पर पंछी की चिन्ता ही नहीं है। अरे विचार तो करो, पंछी उड़ गया तो पिंजरे की क्या कीमत होगी, आखिर राख होने के अलावा कोई उपाय नहीं। पिंजरे/देह का चित्रण करते हुए मंगतरायजी लिखते हैं–

तू नित पोखे यह सूखे, ज्यों धोवै त्यों मैली,
निशदिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली।
मात-पिता रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी,
मांस हाड़ नश लहू राध की प्रगट व्याधि घेरी॥१४॥

हे भव्यात्माओ! तुम निज चेतन को भूलकर प्रतिदिन इस शरीर को येन-केन-प्रकारेण पुष्ट करने में लगे रहते हो, यह धोखेबाज सूखता ही जाता है। आप सुबह से शाम तक इसे बढ़िया-बढ़िया नमकीन, मीठा, ठण्डा-गरम खिलाते हो, पर आप लोग लकड़ी की तरह सूखते नजर आते हो–"बकरी की तरह चरते हो, लकडी की तरह सूखते हो", एक किलोमीटर भी पैदल नहीं चल सकते। इधर देखिये, दिगम्बर साधु-साध्वियों को २४ घंटे में एक बार सरस, नीरस जो मिला इस शरीर रूपी नौकर को नौकरी दे दी, बस प्रसन्न

मुद्रा में झूमते नजर आते हैं, हजारों मील पैदल चलते हैं। अरे भाई! नौकर को नौकर की तरह पालो, नौकर को स्वामी बना दोगे तो तुम्हारे सिर पर नाचेगा। इस शरीररूपी नौकर को जितना खिलाते-पिलाते हो उतना काम ले लो, नहीं तो यह उच्छृंखल होजायेगा, मन्दिर जाने में भी आनाकानी करेगा, बैठा-बैठा खाना चाहेगा। धीरे-धीरे न इसे मन्दिर अच्छा लगेगा न कोई काम, बैठे रहो, बस इसकी सेवा में, यही चाहेगा। समय रहते सम्हल जाओ अन्यथा नौकर की नौकरी करते जिन्दगी बीत जायेगी।

तुम इस शरीर को अच्छा-अच्छा साबुन लेकर साफ करते हो उतना ही यह गंदा होता जाता है। बात भी सत्य है, मल से भरे मटके को बाहर से सुन्दर रंग कर दीजिये, फूल-माला से सजा दीजिये, ढक्कन खोला तो गन्दा ही गन्दा है, वही हालत इस मल से भरे सप्तधातुमय पिटारे की है। निशदिन एक ही उपाय है शरीर की रक्षा पर क्या, घर-घर बीमारी का खजाना, कहीं बी.पी. हाई, कहीं लो ब्लडप्रेशर, कहीं हार्ट अटैक, कहीं कैंसर, एक छोटा सा बुखार भी आ गया तो जीव उस बुखार से चिंतित नहीं है जितना कि आगे कहीं सुगर या किडनी या लीवर का रोग आदि-आदि न हो जावे, चिन्तित है। आचार्यदेव कुन्दकुन्दस्वामी अष्टपाहुड ग्रन्थ में लिखते हैं–

पंचेव य कोडीयो तह चेव अडसट्ठिलक्खाणि।
णवणउदिं च सहस्सा पंचसया होंति चुलसीदी॥

इस शरीर में पाँच करोड़, अड़सठ लाख, निन्यानबे हजार पाँच सौ चौरासी (५६८९९५८४) रोग हैं, हे प्राणी किस-किस रोग का तू इलाज करेगा। तू परमार्थ का पुरुषार्थ कर तथा सदा-सदा के लिए इसका साथ छोड़ने का प्रयत्न कर। और भी कहा है–

एक्केकंगुलिवाही, छण्णवदि होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरा रोगा भण कित्तिया भणिया॥

हे मानव! मनुष्यों के एक-एक अंगुल में छियानबे (९६) रोग होते हैं। इस रोगमय शरीर की रचना का तुम विचार करो। यह माता के रज और पिता के वीर्य से मिलकर बना है। इसमें मांस, हाड़, नसें, खून, पीव प्रत्यक्ष

से रोगों के घर बने हुए हैं। इसके मोह में अन्धे हो हमने इसकी अपवित्रता को नजर अंदाज कर दिया है। इसकी रचना का इतिहास तुम्हें सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो–

मानव के औदारिक शरीर में ३००० हड्डियाँ हैं, ३०० संधियाँ हैं, ९०० स्नायु हैं, ७०० शिराएँ हैं, ५०० मांसपेशियाँ हैं, ४ शिराजाल हैं, १६ कण्डरा हैं जो तन्तु के आकार की हैं। इसमें ६ कण्डमूल हैं, ७ त्वचा हैं, ७ कलेजा हैं। शरीर में रोमों की संख्या ८० करोड़ है तथा मर्मस्थान १०७ हैं। मर्मस्थान बहुत नाजुक होते हैं, इन पर जरा भी चोट आ गई तो मरण का प्रकरण आ जाता है। शरीर में व्रणमुख ९ हैं जो सदा बहते रहते हैं।

शरीर में मस्तक एक अञ्जुलि प्रमाण, मेदा धातु-दण्डाञ्जलि प्रमाण, मज्जा-स्वाञ्जलि प्रमाण, वीर्य स्वाञ्जलि प्रमाण, श्लेष्मा तीन अञ्जुलि प्रमाण, रुधिर आठ सेर प्रमाण, मूत्र नामक उपधातु १६ सेर प्रमाण, विष्टा २४ सेर प्रमाण, नख बीस व दाँत बत्तीस हैं, इसी प्रकार इसमें रस, रुधिर, मांस, मेदा, हाड़, मज्जा व शुक्र सात धातुएँ हैं। इनके सिवा यह शरीर कृमि कीट निगोद आदि जीवों से भरा हुआ है। ऐसा शरीर का स्वरूप जानकर इससे ममत्व त्यागकर मानव को शुद्ध चैतन्य आत्मा का ही ज्ञान व ध्यान करना चाहिए।

भारत देश में सम्यग्दृष्टियों में प्रधान सनत्कुमार चक्रवर्ती थे। वे चक्रवर्ती नवनिधि, चौदह रत्न, चौरासी लाख हाथी, अठारह करोड घोड़े व छियानबे हजार सुन्दरियों से शोभा को प्राप्त थे। वे बहुत सुन्दर थे। एक दिन सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र अपनी सभा में चक्रवर्ती सनत्कुमार के अद्वितीय सौन्दर्य की चर्चा कर रहे थे। इन्द्र के मुख से चक्रवर्ती के रूपलावण्य की प्रशंसा सुनकर मणिमाल और रत्नचूल देव चक्रवर्ती के रूपसुधा को देखने व पान करने की अपनी लालसा को रोक नहीं पाये। वे उसी समय स्वर्ग से उतर कर गुप्त वेश में भारतवर्ष में आये और स्नान करते हुए चक्रवर्ती के वस्त्रालंकार रहित त्रिभुवनप्रिय रूप को देख स्तम्भित, अवाक् से रह गये, ओह! यह रूप तो वैसा ही है जैसा कि इन्द्र महाराज ने कहा था। इसके बाद देवों ने अपना असली रूप प्रकट कर पहरेदार से कहा–तुम जाकर महाराज से कहो कि आपके रूप को देखने के लिए स्वर्ग से देव आये हैं। पहरेदार ने सारा समाचार राजा को कह सुनाया।

चक्रवर्ती ने उसी समय अपने शृंगार भवन में पहुँच कर अपने को सुन्दर-सुन्दर कीमती आभूषणों-वस्त्रों से संस्कारित किया। पश्चात् राजा सिंहासन पर आकर बैठ गये तथा देवों को राजसभा में आने की आज्ञा दी।

राजसभा में आकर देवों ने कहा—राजन्! क्षमा कीजिये, हमें बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि स्नान करते समय वस्त्राभूषण रहित आपके रूप में जो सुन्दरता और जो माधुरी हमने छुपकर देख पाई थी, वह अब न रही। जैनसिद्धान्त सत्य ही कहता है कि संसार के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील, क्षणभंगुर हैं।

देवों की विस्मयकारी वार्ता सुनकर राजकर्मचारियों व अन्य उपस्थित सभासदों ने कहा—हमें तो स्वामी के सौन्दर्य में कहीं कोई कमी नहीं दिखाई देती। देवों ने अपनी आँखों देखी बात का निश्चय कराने के लिए जल से भरा एक घड़ा मँगवाया और उसे सबको बतलाकर फिर उसमें से तृण द्वारा जल की बूँद निकाल ली। इसके पश्चात् फिर घड़ा सबको दिखाकर उन्होंने सभासदों से पूछा—बतलाइये पहले जैसे घड़े में जल भरा था अब भी वैसा ही भरा है या आपको इसमें कोई विशेषता दिख रही है? सबने एक मत होकर कहा—हमें घड़ा पूर्ववत् ही दिख रहा है। तब देवों ने राजा से कहा—महाराज! घड़ा पहले जैसा था, उसमें से एक बूँद जल को निकाल लेने पर भी इन्हें घड़ा वैसा ही दिखाई दे रहा है। इसी तरह हमने आपका जो रूप पहले देखा था, वह अब नहीं रहा। वह कमी हमें दिखती है, इन मानवों को नहीं दिख सकती। इतना कहकर देव तो स्वर्ग को चले गये।

चक्रवर्ती तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने देवों की रहस्यपूर्ण बात पर विचार किया और चिन्तन में लग गये—यह शरीर जिसे मैं रात-दिन प्यार किया करता हूँ, घिनौना है, सन्ताप को बढ़ाने वाला है, दुर्गन्धयुक्त है और अपवित्र वस्तुओं से बना हुआ है, ऐसे क्षणिक शरीर के साथ कौन बुद्धिमान प्रेम करेगा? ये पाँचों इन्द्रियों के विषय ठगों से भी बढ़कर ठग हैं। इनके द्वारा ठगाया हुआ प्राणी एक पिशाचिनी की तरह उनके वश होकर अपनी सब सुधि भूल जाता है और फिर उसी के अनुसार नाचने लग जाता है। मैं अब इस शरीर से अपना सम्बन्ध

छोड़ूँगा। मैं आज ही इस शरीर के मायाजाल का नाश कर आत्महित में लगता हूँ।

तत्काल ही चक्रवर्ती ने जिनमन्दिर में पहुँचकर सब सिद्धि के दायक भगवान् की पूजा की, याचकों को करुणाबुद्धि से दान दिया तथा उसी समय पुत्र को राज्यतिलक कर वन की ओर रवाना हो गये। चारित्रगुप्ति मुनिराज के समीप आत्मा का हित करने वाली जैनेश्वरी/दिगम्बर, निर्वाणदीक्षा ग्रहण कर ली।

कवि मंगतरायजी लिखते हैं–

काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसे तो रोवे,
फलै अनंतजु धर्मध्यान की भूमि विषै बोवे।
केशर चन्दन पुष्प सुगंधित वस्तु देख सारी,
देह परसते होय अपावन निशदिन मल जारी।।

गन्ना यदि काणा है, गन्ने की गाँठ उसे यदि जीव रस के लोभ से चूसता है, तो रस तो दूर पूरा मुँह बिगड़ जायेगा, दाँत टूटेगा, मात्र रोना ही हाथ लगेगा। उसी गाँठ को यदि खेत में बो दिया जाय तो अनेक गन्नों का रस मिलेगा, इसी प्रकार यह शरीर भी एक काणे गन्ने के समान है। इसे भोगों के लोभ में भोगते गये तो आखिर रोगों का ही घर बनेगा और इसी शरीर को सनत्कुमार चक्रवर्ती के समान तप:साधना में लगा दिया जावे, धर्म के प्रति समर्पित कर दिया जावे तो जीव अनन्तकाल के लिए आनन्दामृत का पान कर अनन्त सुख को प्राप्त कर सकता है।

हाथी, बाघ, मृग, बकरा, सांभर, गैंडा इन सभी पशुओं के शरीर की छाल आदि काम में आते हैं पर मानव का यह शरीर किसी काम नहीं आता। फूँको और राख।

पशु की होत पन्हैय्या, नर को कुछ नहीं होय।
यदि नर करनी करे, तो नर से नारायण होय।।

मानव अपनी करनी से आत्मा से परमात्मा बन जाता है। हे मानवो!

नई खूबी, नई रंगत, नये अरमान पैदा कर।
इस खाक के पुतले में, भगवान पैदा कर॥

महानुभावो! एक व्यक्ति अपनी पत्नी से बोला, मुझे दूध गरम करना है। पत्नी ने कहा, दूध तो लीजिये पर ध्यान रखिये दूध गरम करने में, मेरा सुन्दर, कीमती बर्तन नहीं तपना चाहिए। पति सोचने लगा—यह मूर्खा है, इसको कैसे समझाऊँ। उसके सामने दूध को अग्नि में बूँद-बूँद डालने लगा, दूध तो जल गया। पत्नी कहने लगी, आप इतना कीमती दूध अग्नि में क्यों जला रहे हैं? पति बोला—तेरी अज्ञानता का दृश्य दिखाने के लिए। पति कहने लगा— देवी! दूध गरम करना है तो तपेली तो पहले ही तपानी होगी तभी दूध गरम होगा। बिना तपेली को गरम किये दूध का गरम होना त्रिकाल में ही सम्भव नहीं। अब दार्ष्टान्त कहते हैं—

आचार्य कहते हैं—दूध आत्मा है और शरीर एक बर्तन है। शरीररूपी बर्तन को तपाये बिना दूधरूपी आत्मा तप नहीं सकता। आत्मा को तपाये बिना कर्म निर्जरा नहीं और कर्म निर्जरा के बिना मुक्ति भी मिल नहीं सकती।

भेद विज्ञान साबुन भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अन्तरात्मा, धोवे निजगुण चीर॥

हमारा आत्मारूपी कपड़ा विभाव भावों के मेल से अनादिकाल से गन्दा हो रहा है उसकी शुद्धि के लिए भेदविज्ञानरूपी साबुन खरीदिये। भेदविज्ञान साबुन कहीं किसी बाजार में नहीं मिलेगा। हाँ, इसको बनाने की कला आपको दिगम्बर सन्तों के पास मिलेगी, कैसे हैं वे सन्त—

भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिवमारग में जगमांहि जिनेश्वर के लघु नन्दन॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके प्रगट्यो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन।
शान्तदशा तिनकी पहचान करे करजोर बनारसी वन्दन॥

सन्त सनत्कुमार चक्रवर्ती भेदविज्ञान साबुन से विभाव परिणति को दूर हटाते हुए, समता रस को डाल-डालकर अन्तरात्मा बन अपने गुणरूपी वस्त्रों को धो रहे थे। तप:साधना में सतत तत्पर थे। बाईस परीषहों के चित्रण में

हम पढ़ते हैं–"पराधीन मुनिवर की भिक्षा" दिगम्बर सन्तों की भिक्षावृत्ति पराधीन होती है। चौबीस घंटों में यही एक समय ऐसा आता है जब मुनिराज का हाथ नीचे और श्रावक का हाथ ऊपर होता है।

मुनिश्री आहार के लिए गये। किसी ने उन्हें प्रकृति विरुद्ध आहार दे दिया। उस विरुद्ध आहार से मुनिश्री के पूरे शरीर में गलित कुष्ठ हो गया। पूरे शरीर से रुधिर, पीव बहने लगा, दुर्गन्ध आने लगी। किन्तु इस असह्य वेदना का, व्याधियों का किंचित् भी असर मुनिश्री के मुख पर नहीं था। व्याधियाँ उनके शरीर को प्रभावित कर रही थीं, पर आत्मा को नहीं। उन्होंने कभी भी शरीर की ओर ध्यान तक नहीं दिया। क्योंकि वे शरीर के स्वभाव को जानते थे–

बीभत्सुत्तापकं पूति-शरीरमशुचेर्गृहम्।
का प्रीति विदुषामत्र यत्क्षणार्धे परिक्षयि।।

यह शरीर अशुचिता का आलय है, आधे क्षण मात्र में क्षय होने वाला है फिर दुर्गन्धमय शरीर में ज्ञानी की प्रीति कैसे हो सकती है। वे सर्वथा निर्मोही हो, सावधानी से तपश्चरण करते हुए, निर्दोष व्रतों की पालना करते रहे।

एक दिवस सौधर्मस्वर्ग में धर्मप्रेमियों के बीच मुनियों के पाँच प्रकार के चरित्र का वर्णन सौधर्म इन्द्र कर रहे थे। उसी समय मदनकेतु देव ने कहा–प्रभो! जिस चारित्र का आपने ऐसा स्तुत्य वर्णन किया उस चारित्र का निर्दोष पालन करने वाला क्या कोई अभी इस समय भरतक्षेत्र में है? उत्तर में इन्द्र ने कहा, जी है। वह है 'सनत्कुमार चक्रवर्ती'। वे छह खण्ड पृथ्वी को तृणवत् त्याग करके संसार शरीर व भोगों से विरक्त अत्यन्त उदास हैं और दृढ़ता के साथ तपश्चर्या करते हुए चारित्र की आराधना कर रहे हैं।

वही मदनकेतु जो सौन्दर्य को देखने आया था आज मुनिराज की कठोर साधना, तपश्चर्या, चारित्र की आराधना देखने आया। वह स्वर्ग से भारतवर्ष में आकर सनत्कुमार महाराज के समीप जा पहुँचा। उनका सारा शरीर रोगाक्रान्त हो गया तथापि वे सुमेरुसम निश्चल हो तप कर रहे थे। उन्हें देख मदनकेतु बहुत आनन्दित हुआ। तथापि शरीर के साथ इनकी ममता कितनी है यह जानने

के लिए उस देव ने एक वैद्य का रूप बनाया और वन में घूमने लगा। वह घूम-घूमकर चिल्ला रहा था कि "मैं एक बड़ा प्रसिद्ध वैद्य हूँ, वैद्यों का शिरोमणि हूँ, भयंकर से भयंकर रोगों को क्षणभर में ठीक कर सकता हूँ।"

वैद्य की आवाज सुन मुनिराज ने उसे बुलाया, कहा–"भाई! तुम कौन हो? इस निर्जन वन में क्यों, किसलिए घूमते हो? तुम क्या कहते हो?" देव ने कहा–हे महात्मन्! मैं एक प्रसिद्ध वैद्य हूँ। मेरे पास अच्छी से अच्छी दवाइयाँ हैं। आपका शरीर रोग से पीड़ित है, यदि आप आज्ञा दें तो मैं क्षणमात्र में सब व्याधियाँ दूरकर इसे स्वर्णसम बना सकता हूँ। महाराज बोले–"भाई! तुम वैद्य हो, यह बात तो ठीक है। यह भी बहुत अच्छा कि आप इधर आ निकले हो। मुझे एक बड़ा भारी और महाभयंकर रोग हो रहा है, मैं उसको नष्ट करने का बहुत प्रयत्न कर रहा हूँ, पर मुझे सफलता नहीं मिल पा रही है। क्या तुम उसे दूर कर दोगे?"

देव ने कहा–"निस्संदेह, मैं उस रोग को जड़ से दूर कर दूँगा। वह रोग यह गलितकुष्ठ ही है न!" मुनिश्री–"अरे भाई! यह जो दिख रहा है यह तो एक तुच्छ रोग है। इसकी तो मुझे किंचित् परवाह भी नहीं है पर इससे भी भयानक रोग है जो मुझे एक समय भी शान्ति नहीं लेने देता।"

देव बोला–"अच्छा! तो स्वामिन्! शीघ्र बताइये, मेरे पास सारे रोगों का शर्तिया इलाज है।"

मुनिराज बोले–"मेरा वह भयंकर रोग है संसार-परिभ्रमण, जन्म-मरण का रोग। यदि तुम मुझे उससे छुड़ा दो तो बहुत अच्छा होगा।" देव लज्जित हो बोला–"इस भवरोग को तो आप ही नष्ट कर सकते हैं।" तब मुनिश्री ने कहा–"भाई! जब तुम इस रोग को नष्ट नहीं कर सकते तो तुम बड़े प्रसिद्ध वैद्य कैसे? मुझे तुम्हारी आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि विनाशीक, अपवित्र, निर्गुण और दुर्जन के समान इस शरीर की व्याधियों को तुमने नष्ट कर भी दिया तो भी मुझे इसकी जरूरत नहीं। जिस व्याधि का वमन के स्पर्श मात्र से ही क्षय हो सकता है, उसके लिए बडे-बड़े वैद्य शिरोमणि आप लोगों की अच्छी-अच्छी दवाइयों की आवश्यकता ही क्या है?" तत्काल ही मुनिश्री ने अपने

वमन द्वारा एक हाथ के रोग को नष्टकर उसे स्वर्णसम निर्मल बना दिया। मुनिश्री की अतुल शक्ति देखकर देव भौंचक रह गया। उसने अपना असली रूप प्रकट कर मुनिश्री के चरणों में मस्तक टेक दिया और कहा–"भगवन्! आपके विचित्र निर्दोष चारित्र व शरीर में निर्मोहपने की चर्चा सौधर्मेन्द्र ने जैसी की थी वैसी ही मैंने पाई।" मदनकेतु मुनिश्री की पुनः पुनः स्तुति-वन्दना करके स्वर्ग चला गया।

इधर सनत्कुमार मुनिराज क्षण-क्षण में बढ़ते हुए वैराग्य के साथ शुक्ल ध्यान की अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान को प्राप्त कर इन्द्र धरणेन्द्रादि से पूज्य हुए तथा जीवों को मोक्षमार्ग में लगाने के लिए विहार करते हुए सद्धर्मामृत का पान कराकर अन्त में अघातिया कर्मों का भी क्षयकर मुक्ति को प्राप्त हुए।

नव मलद्वार स्रवै निसि वासर, नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै।
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन योग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै, यामें सार यही है ।।वै.भा. ।।

आचार्य कहते हैं कोई वस्तु बर्तन आदि अशुद्धि होने पर आठ प्रकार की शुद्धि से शुद्ध किया जा सकता है–कालशुद्धि, अग्निशुद्धि, भस्मशुद्धि, पवनशुद्धि, जलशुद्धि, गोबरशुद्धि, मज्जनशुद्धि और ज्ञानशुद्धि। कोयला को कितना ही शुद्ध करो वह शुद्ध नहीं हो सकता वैसे ही सप्तधातुओं रूपी मल का पिटारा यह शरीर भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता। एक गुरुजी ने शिष्य से कहा–बेटा! इस काले कोयले को सफेद कर दो। शिष्य ने कहा–गुरुजी! यह साबुन, पानी आदि किसी पदार्थ के लगाने से सफेद नहीं होगा। यह तो जलाने से ही शुद्ध होगा। उसी प्रकार यह शरीर जल से, साबुन से, इत्र, फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थों के लगाने से शुद्ध या पवित्र नहीं होगा। इसे अपवित्रता से पवित्रता की ओर लाने का सूत्र है–

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते

स्वभाव से अपवित्र शरीर श्रद्धा, ज्ञान, तप, चारित्र, संयमरूप रत्नत्रय

से ही पवित्र हो सकता है। मूढ़ मानव इसे सजाने के लिए सुबह से शाम तक परिश्रम करता है—ब्यूटी पॉर्लर जाते हैं, एक घंटे में हजारों रुपये बर्बाद कर आते हैं, सत्तर-अस्सी वर्ष की उम्र में भी 'डाई' कराना ही है। अरे यह उम्र तो केशों का लोच करने की, योग धारण की आ गई किन्तु अभी भी जीव को भोगों से तृप्ति नहीं आई।

एक बार के भोग करने में ९ लाख त्रस जीवों का घात होता है। ऐसे इस अशुचि शरीर को जितना पुष्ट करोगे यह उतना ही कष्ट देगा—

पोषत तो दुख दोष करे अति, शोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे॥

शरीर का स्वभाव दुर्जनवत् कहा है। सर्प को कितना भी दूध पिलाइये वह विष ही उगलता है, मूर्ख को कितना ही समझाओ शठता नहीं छोड़ता, वैसे ही शरीर को कितना ही सजाओ, खिला-पिलाकर पुष्ट करो यह अशुचिता को छोड़ने वाला नहीं है। "यह तन विष की बेलरी" शरीर अपवित्र है, आत्मा पवित्र है। इस अपवित्र शरीर की संगति से द्रव्यदृष्टि से त्रैकालिक शुद्ध आत्मा भी अपवित्र हो गया। उसी शरीर में रच-पच गया है। हे आत्मन्! क्षणिक विचार करो, जिसकी चर्चा, सेवा में इस चिन्तामणि सम अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ गँवा रहे हो इससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है—

जिसके शृंगारों में मेरा यह महंगा, जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से इस चेतन का कैसा नाता॥

ज्ञानहीन, अपवित्र, दुर्गन्धपूर्ण शरीर के साथ चैतन्यपुञ्ज आत्मा क्यों रमण कर रहा है, अनादि भूल को निकालने का पुरुषार्थ ही मानव जीवन की सफलता है।

आचार्य कहते हैं—इस शरीर का क्या गर्व करना, यह अपवित्र, घिनावना है, मूर्ख अज्ञानी ही इससे प्रीति करते हैं—

देह अपावन अथिर घिनावन यामें सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजै तो भी शुद्ध न होई॥

सागर का सम्पूर्ण जल भी इसे साफ करने के लिए समर्थ नहीं। निश्चय से आत्मा अनादि से पवित्र है, शरीर अनादि से अपवित्र है। पवित्र आत्मा भी शरीर की संगति से अपवित्र हो गया है। आत्मा और शरीर को पवित्र करने के लिए ५ प्रकार के स्नान बताये गये हैं–

मन्त्रस्नानं, जपस्नानं, तपस्नानं तथैव च।
शीलस्नानं, जलस्नानं, पञ्च स्नानं विकल्प्यते॥

मन्त्रस्नान, जप स्नान, तप स्नान, शील स्नान और जल स्नान–ये पाँच प्रकार के स्नान कहे गये। इनमें चार स्नानों से आत्मा पवित्र होता है, जलस्नान से बाह्य शरीर शुद्ध होता है। इनमें जपादि स्नानों से एक बार शुद्ध हो जाने के बाद आत्मा पुन: कभी भी अपवित्र नहीं होता, किन्तु इस शरीर को कितना भी नहलाइये, क्षणिक समय के लिये बाहर से पवित्र हो भी जावे पर अन्त में अपवित्र का अपवित्र ही रहता है। मानव जीवन को पाकर भी इस चाम को ही धोते रहे, चाम से ही प्रेम रहा दान से नहीं, तो क्या स्थिति होगी।

मगध देश में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी सुन्दर रूपसम्पन्न लक्ष्मीमती नाम की स्त्री थी। वह सर्वगुणसम्पन्न थी पर उसे अपने रूप का बहुत अहंकार था। वह निरन्तर अपने शरीर को सजाने में, सँवारने में व्यस्त रहती थी।

एक दिन नगर में पक्षोपवासी समाधिगुप्त नाम के मुनिराज आहार के लिये पधारे। सोमशर्मा ने उन्हें आहारार्थ भक्तिपूर्वक उच्च आसन दिया और आप स्त्री से, मुनिराज को आहार करा देना, ऐसा कहकर कार्यवश बाहर चला गया।

इधर ब्राह्मणी बैठी-बैठी दर्पण में अपना मुख देख रही थी। उसने अभिमान में आ मुनिराज को बहुत-सी गालियाँ दीं। उनकी निन्दा की और दरवाजा बन्द कर लिया। मुनिराज शान्त स्वभावी थे–

अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समताधरण।

वे ब्राह्मणी के शब्दों की ओर कुछ ध्यान न दे पुन: वन की ओर लौट गये। सत्य ही है पापियों के घर आई हुई लक्ष्मी भी चली जाती है। याद रखिये–

जब तक तेरे पुण्य का बीता नही करार।
तब तक तुझको माफ है गलती करो हजार॥

मुनिनिन्दा का पाप और रूप के अहं की मस्ती में मस्त लक्ष्मीमती को सातवें ही दिन कोढ़ निकल आया। शरीर से दुर्गन्ध आने लगी। उसकी बुरी हालत देख परिवारजन ने उसे घर से निकाल दिया। उसको कष्ट पर कष्ट आने लगा, वह सहन नहीं कर पाई और आग में कूदकर मर गई। दुर्भावों से मरकर वह उसी गाँव के धोबी के घर गधी हुई, उसे इस दशा में पीने को दूध भी न मिला। फिर मरकर सूअरी हुई, फिर दो बार कुत्ती हुई। वहाँ से मरकर एक मल्लाह के घर काणा नामकी लड़की हुई। यहाँ भी इसका शरीर जन्म से ही दुर्गन्धित रहता था। कोई भी इसके पास उठना-बैठना नहीं चाहता था।

एक दिन काणा लोगों को नदी पार करा रही थी। उसने नदी किनारे तपस्या में लीन मुनिराज को देखा। मुनिश्री को नमस्कार कर वह बोली–प्रभो! मुझे याद आता है कि मैंने आपको पहले कहीं देखा है? मुनिश्री ने कहा–बच्ची, तू पूर्वजन्म में ब्राह्मणी थी, तूने रूप के मद में आकर मुनि की घोर निन्दा की जिसके पाप से कुयोनियों में गधी, कुत्ती, सुअरी आदि होकर अब मल्लाह की पुत्री हुई है। बेटी! मुनिनिन्दा घोर पाप है। उस काणा को जातिस्मरण हो आया। तत्काल अपने पापों का प्रायश्चित्त कर उसने श्रावक के बारह व्रत धारण किये। मुनिश्री से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। काणा घोर तपश्चरण कर स्वर्ग में गई और वहाँ से चयकर श्रीकृष्णजीकी पत्नी, प्रद्युम्न की माँ रुक्मिणी हुई।

यह अनादि संसार चाम के पीछे अन्धा होकर हेयोपादेय को भूल गया था। शरीर चर्म का पुतला है। आज मानव जीवन काम का प्यारा नहीं, गुणों का प्यारा नहीं, मात्र चाम का प्यारा बन गया है। ज्ञानी विचार करता है जिससे मैं बात कर रहा हूँ वह जड़ है, शरीर है, बोलता नहीं और जिससे बोलना चाहता हूँ वह मुझे दिखता नहीं अत: किससे बोलूँ, किससे बात करूँ। ज्ञानी सत्य में तथ्य को ढूँढ़ता है–

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं तत: केन ब्रवीम्यहम्॥

जिसे मैं देखता हूँ वह बोलता नहीं, जिससे बोलना चाहता हूँ वह दिखता नहीं, अत: मैं किससे बात करूँ।

आज युग ही विचित्र आ गया है-

चन्दन पड़ा चमार घर, निशदिन कूटे चाम।
चन्दन बिचारा क्या करे, पड़ा नीच के धाम॥

चमार के घर चन्दन आ जाय तो क्या करेगा? कूटेगा बस। आचार्यदेव कहते हैं, यह मानव पर्यायरूपी चन्दन चमार के हाथ में आ गई। निशदिन चाम को कूट रहा है, चन्दनरूपी मानव पर्याय की कीमत चन्दन का व्यापारी/ज्ञानी महापुरुष ही जान सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को शरीर की वास्तविक दशा का ज्ञान करने के लिए अपने-अपने बैठक कक्ष में बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था के तीनों फोटो लगाना चाहिए। प्रतिदिन फोटो देखकर शरीर की अपवित्रता, अशुचिता का, दुर्दशा का विचार अवश्य करना चाहिए जिससे शरीर से विरक्ति हो सके। कैसा घृणित है यह शरीर, एक द्वार से खाता है, नौ द्वारों से छोड़ता है, इससे प्यार करना, इसका शृंगार करना ज्ञानी का कर्त्तव्य नहीं। हाँ शरीर को पड़ोसी मानकर उसकी रक्षा करो। क्योंकि पडोसी के घर में आग लग गई तो हमें भी खतरा है अत: तप, संयम का सहयोगी मान उसकी तदनुसार रक्षा करें। पूज्यपाद स्वामी कहते हैं-

आत्मज्ञानात् परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचित् वाक्कायाभ्यामतत्पर:॥

हे भाई! यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है तो अपनी बुद्धि में आत्मज्ञान से भिन्न, अन्य शरीर व संसार सम्बन्धी कार्यों को लम्बे समय तक धारण मत कर। यदि संसार व शरीर के कार्य तुझे करने भी पड़े तो उनको शरीर व वचन से करना, मन को उसमें नहीं लगाना।

♦ ♦

७

मोहनींद के जोर

जैनदर्शन एक पवित्र दर्शन है। इस दर्शन में आचार्यों ने जहाँ जीवन जीने की कला सिखाई वहाँ मरने की भी सुन्दर कला सिखाई है। जैनदर्शन के महान् **आचार्य शिवकोटि महाराज** ने **'भगवती आराधना'** नामक महाग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में आचार्यदेव ने मृत्यु की कला का सुन्दर विवेचन किया है। यहाँ आचार्य कर्मों के आने के द्वार आस्रव का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिए दुक्ख जलयराइण्णे।
जीवस्स परिब्भमणम्मि कारणं आसवो होदि ॥१८२८, भग.॥

संसाररूप समुद्र में जीव के परिभ्रमण का कारण आस्रव है। यह संसार समुद्र कैसा है? जिसमें बहुत दोषरूपी लहरें उठ रही हैं तथा दुखरूप जलचर जीवों से भरा पड़ा है। जैसे समुद्र के मध्य छिद्र सहित फूटी नाव डालने पर वह जल में डूब जाती है वैसे ही संसार-समुद्र में संवर रहित पुरुष के कर्मरूप जल प्रवेश करता है। अथवा-

जैसे तेल आदि से चिकने शरीर पर धूल लगने से वह मैला होता है वैसे ही मिथ्यात्व असंयम कषायरूप चिकनाई से सहित आत्मा के कर्मरूप होने योग्य जो पुद्गल द्रव्य हैं वे कर्म हो जाते हैं। अर्थात् समस्त लोक पुद्गल द्रव्यों से भरा हुआ है। उन पुद्गलों में निरन्तर परिणमन होने से कर्मरूप होने योग्य अनन्तानन्त पुद्गल वर्गणाएँ समस्तलोक में भरी हुई हैं, जहाँ आत्मा के प्रदेश हैं वहाँ भी भरी हुई हैं। जिस समय यह संसारी आत्मा मिथ्यात्व, अविरति,

कषाय व योगरूप अपना परिणाम करता है, उसी समय कर्मरूप होने योग्य पुद्‍गल स्कन्ध कर्मरूप होकर आत्मा में एकक्षेत्रावगाहरूप होने को प्रवेश करते हैं, यह आस्रव है।

भव्यात्माओ! तीन सौ तैंतालीस घनरज्जू प्रमाण समस्त लोक है। लोक सूक्ष्म व बादर पुद्‍गल द्रव्यों से खचाखच भरा हुआ है। लोकाकाश का एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जहाँ पुद्‍गल न हो। उसमें कर्मरूप होने योग्य अनन्तानन्त पुद्‍गल परमाणु हैं। जैसे जल में डाला गया लोहे का तप्तायमान गोला चारों ओर से जल खींचता है वैसे ही मिथ्यात्व-अविरति-कषाय आदि से तप्तायमान संसारी जीव सर्वतरफ से कर्म के योग्य पुद्‍गलों को ग्रहण करता है। ऐसे प्रत्येक समय समयप्रबद्ध को ग्रहण करता है। फिर जैसे एक बार का ग्रहण किया हुआ आहार रुधिर, मांस, वीर्य, मल-मूत्र, अस्थि, चाम, केश आदि नानारूप परिणमन करता है वैसे ही एक बार का ग्रहण किया गया कार्माण समयप्रबद्ध ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप परिणमन करता है।

आ उपसर्ग पूर्वक स्रु स्रव् धातु से आस्रव शब्द बना है। श्री मुनि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव बृहद् द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ में लिखते हैं–

आस्रव के दो भेद हैं–१. भावास्रव और २. द्रव्यास्रव।

आसवदि जेण कम्मं परिणामेप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि।।

आत्मा के जिन परिणामों से कर्म आते हैं वह भावास्रव है तथा कर्मों का आना द्रव्यास्रव है। जैसे तेल आदि से चिकने पदार्थों पर धूलि का समागम होता है, वैसे ही भावास्रव के निमित्त से द्रव्यास्रव हो। ५ मिथ्यात्व, ५ अविरति, १५ प्रमाद, ३ योग व ४ कषाय, ये भावास्रव के ३२ भेद हैं (द्र.सं.) अथवा ५ मि., १२ अविरति, १५ योग, १५ प्रमाद व २५ कषायें, इस प्रकार ५+१२+१५+१५+२५। इस प्रकार ७२ भेद भी भावास्रव के कहे हैं।

मोहरूप राजा का सेनापति मिथ्यात्व है। एक मिथ्यात्व ही संसार परिभ्रमण के लिए अनन्तकाल तक पर्याप्त है। मिथ्यात्व के समान अकल्याणकारी संसार में अन्य नहीं है। आलोचना पाठ में पढते ही हैं–

विपरीत एकान्त विनय के संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने वचतैं नहि जाय कहीने॥

मिथ्यात्व के वश विपरीत अभिनिवेशयुक्त प्राणी आत्मतत्त्व से विपरीत परद्रव्यों में प्रीति करने वाला होता है। अदेव में देवबुद्धि, कुगुरु में गुरुबुद्धि, कुधर्म में धर्मबुद्धि यह सब इसी **मिथ्यात्व** का प्रभाव है।

हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील व परिग्रह इन ५ पाप प्रणालिकाओं में रति कर, परम आत्मसुख में रति न करना **अविरति** है।

अच्छे, कुशल कार्यों में अनादर करना **प्रमाद** है। कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन **योग** है तथा आत्मा के अनन्त गुणों से भिन्न क्रूरता आदि रूप क्रोधादि परिणाम **कषाय** हैं।

तीन लोक तीन काल में मिथ्यात्व के समान अकल्याणकारी अन्य कोई नहीं है। पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं–

णिरयादिजहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जा।
मिच्छत्तसंसिदेण दु बहुसो विभवट्ठिदी भमिदा।

इस जीव ने मिथ्यात्व के संसर्ग से उपरिम ग्रैवेयक तक, नरक आदि गतियों की जघन्य आदि स्थितियों में उत्पन्न हो-होकर अनेक बार परिभ्रमण किया।

आप लोग बारह भावनाओं में पढ़ते हैं–

मोहनींद के जोर, जगवासी घूमै सदा।
कर्मचोर चहुँओर, सरवस लूटै सुध नहीं॥

दर्शन मोह/मिथ्यात्व के वश संसारी जीव अनादिकाल से भटक रहे हैं, कर्मरूपी चोर चारों ओर से इसकी दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रयरूपी सम्पत्ति को लूट रहे हैं, पर बेहोशी में सोये जीव को होश कहाँ। मैं सबसे कहा करता हूँ–

बेहोशी में नहीं, होश में जीओ। ढोंग से नहीं, ढंग से जीओ।

दौलतरामजी लिखते हैं–

जो योगन की चपलाई, तातैं व्है आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे॥

मन-वचन-काय तीनों योगों की चञ्चलता ही आस्रव का मूल है। आस्रव का कार्य है कर्मों को निमन्त्रण देना। जब तक योग हैं तब तक आत्मप्रदेशों में परिस्पन्द होता है, योगों के परिस्पन्द से आस्रव होता है।

द्रव्यास्रव के संख्यात-असंख्यात अनन्त भेद आचार्यों ने बताए। परिणामों की तीव्रता, मन्दता के अनुसार इनका आस्रव होता है–

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो॥३१॥द्र.सं.॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय इन आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है वह द्रव्यास्रव कहा जाता है। इनमें इस जीव के सात कर्मों का बन्ध तो निरन्तर होता है किन्तु आयु कर्म का बन्ध त्रिभागी में ही पड़ता है।

जैनागम का प्रथम संस्कृत ग्रन्थ **तत्त्वार्थ सूत्र** एक अनुपम ग्रन्थ है। इसमें ६ठा अध्याय प्रत्येक प्राणी के हृदयंगम करने योग्य एक महान् रसायन है। यह अध्याय जीवन के पग-पग पर चिन्तनीय, मननीय व अनुकरणीय है। जिसने छठा अध्याय समझ लिया उसने मानव जीवन का सार समझ लिया। यहाँ छठे अध्याय में द्रव्यास्रवरूप एक-एक कर्म के आस्रव को कराने वाले भावों का चित्र खींच दिया है। यह जीवन में लगी कालिमा को दिखाने के लिए सुन्दर दर्पण है। सर्वप्रथम आचार्य कहते हैं भव्यात्माओं के बन्धन को खोलना सरल है, पर बन्धन का कारण क्या है इसको जाने बिना पुनः पुनः बन्धन की संतति चलती रहेगी अतः आस्रव बन्ध की जड़ को खोजो। सिंह जब गोली की आवाज सुनता है, तो गोली को नहीं देखता, गोली चलाने वाले को पकडता है। जीव कर्मो को हँसते-हँसते बाँधते हैं पर रोते-रोते भी कर्म छूटते नहीं। आलोचना पाठ में पढ़ते है–''फल भुंजत जिय दुख पावे, वचतें कैसे करि गावें।'' अब हम जानें, विचार करें कि कर्म हमारे किन परिणामों से बँधते हैं–सर्वप्रथम ज्ञानावरण कर्म का आस्रव क्यों होता है–

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाताज्ञानदर्शनावरणयो: ॥१०।६॥ त.सू. ॥

ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात इन छह कारणों से ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म का आस्रव होता है।

प्रदोष-तत्त्वज्ञान मोक्ष का साधन है। एक विद्वान् या विदुषी महिला तत्त्वज्ञान की चर्चा कर रही है, उस समय जो नहीं बोलने वाले हों उनके भीतर जो पैशुन्य भाव है, वह प्रदोष है।

निह्नव-किसी कारण से 'ऐसा नहीं, या मैं नहीं जानता हूँ' ऐसा कहकर ज्ञान को छिपाना निह्नव है। प्राय: देखा जाता है कि एक बालक विशेष बुद्धिमान है, प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होता है, कमजोर बालक उसके पास जाकर कुछ समझना चाहता है, तब वह यह कह देता है-'मुझे तो आता ही नहीं', या 'अभी आपको बताने के लिए मेरे पास समय नहीं' अर्थात् किसी प्रकार बहाना बनाकर टाल देना, ज्ञान को छिपाना निह्नव है अथवा शिक्षागुरु का नाम छिपाना निह्नव है। इससे ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होता है, ज्ञान घटता जाता है।

मात्सर्य-स्वयं ने जो ज्ञानाभ्यास किया है वह योग्य पात्र में भी जिस कारण नहीं दिया जाता है, वह मात्सर्य है। जिसे मैं दे रहा हूँ वह मुझसे कहीं आगे न बढ़ जाय ऐसा विचारकर न देना मात्सर्य है। यह भाव तीव्र ज्ञानावरण कर्मास्रव का कारण बनता है।

अन्तराय-'ज्ञान का विच्छेद करना अन्तराय है'। कोई अध्ययन कर रहे हैं उनकी पुस्तक छीन लेना, पुस्तक फाड़ देना, कोई अध्ययन कर रहे हैं उनके बीच में जाकर जोर-जोर से बातें करना। पढ़ने की पुस्तक छिपा लेना, पेन्सिल, कापी आदि ज्ञान के उपकरण चुरा लेना, पढ़ते हुए को रात्रि में बिजली बन्द कर देना आदि अनेक छोटे-छोटे कारणों से ज्ञानाभ्यास में अन्तराय किया जाता है, उसके कारण ज्ञानावरण कर्म तीव्र बँधता है। कई व्यक्ति पूछते हैं-महाराजजी! बहुत पढ़ते हैं याद नहीं रहता, पढ़ने में मन ही नहीं लगता, पढ़ने बैठते हैं, स्वाध्याय सुनने बैठते हैं तो नींद सताती है, यह सब क्यों होता है? पूर्व में ज्ञानार्जन में किसी को अन्तराय किया है, उसका ही यह फल है-

कामी क्रोधी जीव को, धर्म कथा न सुहाय।
के ऊंघे के लड़ मरे, के उठ घर को जाय।।

थोड़ा सा भी अन्तराय तीव्र बन्ध कर देता है। क्षयोपशम का उघाड़ नहीं होने देता अत: हमें कभी किसी को भी ज्ञानप्राप्ति में विघ्न नहीं करना चाहिए।

आसादना–दूसरा कोई ज्ञान का प्रकाश कर रहा हो तब शरीर या वचन से उसका निषेध करना आसादना है। प्राय: लोग क्या कहते हैं– अरे! क्या करोगे पढ-लिखकर? यह पढाई सब ऐसी ही धरी रह जायेगी। इन पढ़े-लिखों से तो हम अनपढ़ अच्छे आदि.......। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं–बन्द करो इस पढाई को, इस पढ़ाई ने ही हमारा सर्वनाश किया है। बन्धुओ! ज्ञान किसी का नाश नहीं करता है, ज्ञान तो किसी भी क्षेत्र में हो प्रशंसनीय ही होता है, हॉ! ज्ञान का दुरुपयोग दुख का कारण बन सकता है। अत: ज्ञानप्राप्ति करने वालों को प्रोत्साहित कीजिये, उनका निषेध न कीजिये, अन्यथा तीव्र ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होगा।

उपघात–प्रशंसनीय ज्ञान में दूषण लगाना उपघात है। इससे भी ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होता है। पंडितप्रवर टोडरमलजी ने अपनी अल्पायु में ही गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की टीका लिखी, मोक्षमार्गप्रकाशक लोकप्रिय ग्रन्थ लिखा। अल्पायु में उनकी अनोखी विद्वत्ता को देख लोग उन्हें दूषण लगाया करते, ईर्ष्या, डाह रखा करते थे। जयपुर नरेश उन्हें बहुत सम्मानित करते थे। कुछ विद्वेषी पंडितों ने एक षड्यंत्र रचकर पंडितजी पर अपने धर्म-अपमान का दावा कर दिया। जयपुर नरेश ने साम्प्रदायिकतावश निर्दोष पंडितजी को हाथी के पगतले दबा देने का मृत्युदण्ड दे दिया। निर्दोष पंडितजी को हाथी के समीप बैठा दिया गया। पंडितजी निर्भयता, निडरता से णमोकार मन्त्र का स्मरण करते हुए मृत्यु का स्वागत कर रहे हैं। महावत बार-बार हाथी को बढ़ा रहा है परन्तु वह हाथ तो उठाता है मगर पैर नहीं, तात्पर्य निर्दोष ज्ञानी को बेमौत निष्प्रयोजन मारना हाथी को भी प्रिय नहीं था। महावत ने हाथी की चेष्टा देख उसे मार-मारकर लहूलुहान कर दिया, वह जोर-जोर से चिंघाड़ उठा पर पैर नहीं उठा पाया 'मैं यह कुकृत्य कैसे करूँ?'' यह सब देख पंडितजी ने हाथी से कहा–

"गजराज! यह क्या कर रहे हो, राजाज्ञा का पालन करो। क्या न्याय तुम्हारे हाथ में है? तुम अपना कर्त्तव्य-पालन करो।" इतना सुनते ही हाथी ने उनके पेट पर पैर रख दिया। पंडितजी के प्राण पखेरू तत्काल उड़ गये।

इस प्रकार के कुत्सित कार्य करने से ज्ञानावरण कर्म का घोर आस्रव होता है अत: ऐसे कुभावों का सर्वथा त्याग करना ही श्रेयस्कर है। हम लोगों ने पूर्व में इन्हीं अनेक प्रकार के दूषित परिणामों से ज्ञानावरण कर्म का आस्रव किया है तत्प्रतिफल आज हमारे पास ज्ञान के एक अंश का भी उघाड़, क्षयोपशम नहीं है। यह आत्मा त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् जानने वाला, केवलज्ञान स्वभावी होकर भी पिछड़ा हुआ है, अपने पीठ पीछे के पदार्थ को भी देखने में समर्थ नहीं है।

आचार्यदेव कहते हैं कि यदि सहज अनन्त सुख का खजाना केवलदर्शन, केवलज्ञान प्राप्त करना है तो ज्ञानावरण कर्म के आस्रव से बचो। मेरे पास कई लोग बारबार आते हैं–एक ही प्रश्न करते हैं, महाराज! हमें याद नहीं रहता? कोई मन्त्र दे दीजिये। मैं पूछता हूँ–आपको कोई गाली देवे, अपशब्द कहे तो याद रहता है या नहीं? वो तो भूलते ही नहीं। जिन्दगी भर भी नहीं भूलते, क्यों? उसको बार-बार मानस पटल पर दोहराते रहते हैं। भैया! अपशब्दों को जैसे मानस पटल पर दोहराते हुए, कानों में गुंजाते हुए जैसे अविस्मृत बना लेते हो वैसे ज्ञानावरण कर्म के आस्रव को मन्द करने के लिए, ढीला करने के लिए–जो पढ़ा है, जो सुना है, उसे बार-बार चिन्तन करो, मस्तिष्क में उसे बार-बार घुमाने का प्रयास करो, आस्रव के द्वार ढीले होंगे, स्मृति में परिपाक होगा। धारणा शक्ति बढ़ेगी।

दु:खशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥६॥

अपने या दूसरे में या दोनों में विद्यमान दु:ख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं। अर्थात् इन परिणामों से असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

जैनदर्शन में यह अकाट्य नियम है कि स्वकृत कर्मों का शुभाशुभ कर्मफल जीव को स्वयं को ही भोगना पड़ता है। यहाँ कर्त्ता कौन और भोक्ता

कौन ऐसा नहीं होता। स्वकृत अशुभ कर्म का उदय आने पर जीव दुःख करते हैं, शोक करते हैं, रोते हैं, आँसू बहाते हैं, चिल्लाते हैं। इन सबसे असाता **वेदनीय कर्म** का आस्रव होता है। प्रायः ऐसा होता है कि पहले तो असातावेदनीय का उदय चल ही रहा है, फलतः असाध्य रोग घेरे हैं, खाने को घर में दाना नहीं, सन्तान अपने अनुशासन में नहीं, अब रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, शारीरिक पीड़ा सहन नहीं होने से इस प्रकार चिल्ला-चिल्लाकर रोते हैं कि दूसरों का हृदय पिघल जावे, वह भी रोने लगे। आचार्य कहते हैं–भाई! ऐसी हरकतें करने से असाता वेदनीय मन्द होने वाला नहीं, अपितु नवीन बन्धन ही होगा। विचार करो–एक पुराना भार तो उतरा ही नहीं, नवीन दुगुना भार लाद रहे हो, कैसे छुटकारा मिलेगा? प्रायः जीव ऐसा कहते हैं–'क्या करें तीव्र कर्मोदय है' सत्य पूछा जावे तो कर्म का उदय तीव्र न था, उसे रोकर, चिल्लाकर हम तीव्र बना लेते हैं। असाता वेदनीय के आस्रवों को जानकर कर्मोदय को जो शान्त भाव से सहन करते हैं, वे पाण्डव, गजकुमार मुनि आदि की तरह असंख्यात कर्मों की निर्जरा समय मात्र में करते हैं और जो रोते हुए, चिल्लाते हुए, दुःख-शोक करते रहते हैं वे नवीन बन्ध कर लेते हैं। आचार्य कहते हैं–पुराना बैठा है वही सहन नहीं हो रहा है, तो अब दुगुना बँध रहा है उसे कैसे सहन करोगे?

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥६॥

सभी प्राणियों पर अनुकम्पा रखना, व्रतियों पर अनुकम्पा रखना, दूसरे के उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना तथा क्रोधादि दोषों का निराकरण करना तथा लोभ का त्याग करना। इन परिणामों से साता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है–आचार्य गुरुदेव के पावन गुण मेरे स्मृति पटल पर आ गये। वे प्राणी मात्र पर करुणाबुद्धि रखते थे। बाल्यावस्था से ही व्रतियों के प्रति उनके अन्दर विशेष अनुकम्पा थी। उनके विद्यार्थी जीवन की एक घटना है–वे विद्यालय में अपने हाथ से आटा पीसकर, कुए से पानी निकालकर प्रतिदिन शुद्ध भोजन बनाया करते थे। इसी बीच कोई संयमी, व्रती आ गये तो उनका भी आतिथ्य किया करते थे।

एक दिन आपश्री शुद्ध भोजन बनाकर, भोजन करने के लिए बैठने ही वाले थे कि एक सप्तम प्रतिमाधारी ब्रह्मचारीजी पधार गये। आचार्यश्री ने

(नेमिचन्दजी) कहा—वन्दना बाबाजी! भोजन करिये। ब्रह्मचारीजी ने भोजन किया, सामायिक में बैठ गये। इसी बीच नेमिचन्दजी ने पुन: भोजन तैयार किया, भोजन के लिए बैठने ही वाले थे कि शिखरजी की यात्रा करते हुए एक ब्रह्मचारीजी मौरेना आये। नेमिचन्दजी (आचार्यश्री) ने कहा, आपको मार्ग में उपवास हो गया, शीघ्र पहले शुद्धि करके भोजन करिये। ब्रह्मचारीजी ने भोजन किया, वे भी सामायिक में बैठ गये। नेमिचन्दजी के आनन्द का ठिकाना न था, लगभग एक बज गया। तीसरी बार भोजन बनाया, उसे भी आगन्तुक तीसरे व्रती ब्रह्मचारीजी को खिला दिया, अब दोपहर का २ बज चुका। नेमिचन्दजी ने गुड़-चना खाया और पानी पीकर उत्साह से अध्ययन के लिए बैठ गये। ऐसी व्रती अनुकम्पा ने आचार्यश्री के जीवन को अमर बना दिया। आज लोग एक त्यागी, साधु, ब्रह्मचारी आ जाये तो भोजन कराने में जी चुराते हैं। ऐसी हमारी मनोवृत्ति हो गयी है।

सब कर्मों का राजा मोहनीय कर्म है—इस कर्म के दर्शनमोह, चारित्र-मोह दो भेद हैं—दर्शनमोह कर्म का आस्रव—

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥त.सू.॥६॥

केवली भगवान्/अरहन्त देव को कवलाहारी कहना, शास्त्र में मांस-भक्षण आदि को निर्दोष कहा है ऐसा कहना, साधुगण शूद्र हैं, अपवित्र हैं, ऐसा कहना, धर्मधारण करने में कोई सार नहीं है, धर्म को सेवन करने वाले असुर होंगे तथा देव, सुरा और मांस आदि का सेवन करते हैं, इस प्रकार केवली भगवान्, श्रुत/आगम, संघ, धर्म व देवों में मिथ्या दोष लगाने से ७० कोड़ा-कोड़ी सागर की स्थिति वाले दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

जैनदर्शन में केवली जिन/अरहन्त परमात्मा आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटी पूर्व काल तक कवलाहार के बिना रहते हैं। उनके शरीर के योग्य नोकर्मवर्गणाएँ आती रहती हैं जिससे शरीर आयुपर्यन्त वैसा ही बना रहता है। अट्ठारह दोषों से रहित केवली यदि कवलाहार करें तो उन्हें पूज्यपना ही नहीं बनता। जो लोग केवली भगवान् का अवर्णवाद करते हैं वे मिथ्यात्व अवस्था युक्त दर्शनमोहनीय का तीव्र आस्रव करते हैं। इसी प्रकार शास्त्र, संघ, धर्म व

देवों को मिथ्या दोष लगाने का फल जानो। ऐसे जीव सम्यग्दर्शन को कभी प्राप्त नहीं करते हैं।

राजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व व तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया, उनके परिणाम अणुव्रत, महाव्रत धारण करने के नहीं हुए क्योंकि जिनके चारित्र मोहनीय का तीव्र बन्ध है वह चारित्र धारण नहीं कर सकता। उमास्वामी आचार्य लिखते हैं–

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

कषाय के उदय से आत्मा का तीव्र परिणाम चारित्र मोहनीय का आस्रव है। स्वयं कषाय करना, दूसरों में कषाय उत्पन्न कराना, तपस्वीजनों के चारित्र में दूषण लगाना, मिथ्या लिंग धारण करना, आदि कषाय वेदनीय के आस्रव हैं। सत्य धर्म का उपहास करना, कुत्सित, रागवर्धक हँसी-मजाक करना आदि हास्य कर्म के आस्रव हैं। व्रत और शील के पालन में रुचि न रखना, रति कर्म का व पापी लोगों की संगति आदि अरति कर्म के आस्रव हैं। शोकातुर रहना, भयरूप परिणाम रखना, सुखकर आचरण से घृणा करना, अपवाद में रुचि करना, आदि ये शोक, भय, जुगुप्सा कर्म के आस्रव हैं। असत्य बोलना, दूसरे के दोष ढूँढना आदि स्त्रीवेद के आस्रव हैं। क्रोध का अल्प होना, ईर्ष्या नहीं करना, स्वदारसंतोष ये पुरुषवेद के आस्रव हैं। इन परिणामों से अपने को सम्हालना हम भव्यात्माओं का प्रमुख कर्त्तव्य है।

चार प्रकार के मानव में कौन कहाँ जायेगा–प्रथम व्यक्ति–जो बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह वाला है, हिंसा आदि क्रूर कार्यों में निरन्तर प्रवृत्ति करता है, दूसरे के धन का अपहरण कर रहा है, इन्द्रिय-विषयों में आसक्त है, वह नियम से नरक में जायेगा क्योंकि–

बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥६॥त.सू.॥

बहुत आरंभ-परिग्रह नरक आयु के आस्रव हैं। दूसरा व्यक्ति–जो धर्मोपदेश में मिथ्या बातें मिलाकर झूठा प्रचार करता है, शील रहित है, मायाचारी है, कुटिल परिणाम वाला है, वह **मायातैर्यग्योनस्य ॥१६॥** मायाचारी से तिर्यञ्चायु का आस्रवक है।

तीसरा व्यक्ति–स्वभाव से विनम्र है, भद्र प्रकृति वाला है, सरल स्वभावी है, अल्प आरंभ, देशसंयम की आराधना करता है, परवश भूख-प्यास सहन करता है, मल-मूत्र रोकता है। इस प्रकार अकामनिर्जरा तथा बालतप को करने वाला देवायु का आस्रव करता है।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि देवस्य ॥२०॥

संसार में प्रतिदिन हम देखते हैं कोई जीव सुरूप, कोई कुरूप, कोई लूला, कोई लँगडा, अंधा, काला, भूरा आदि नजर आता है। ऐसा क्यों? आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं–मन-वचन-काय योगों की कुटिलता, साधर्मी बन्धुओं से विसंवाद करना, मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, चित्त का स्थिर न रहना, मापने और तौलने के बॉट घट-बढ़ रखना, दूसरों की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, आदि ये परिणाम अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं।

योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥६।त.सू.॥

आचार्य कहते हैं जो जीव कुटिल परिणाम रखते हैं, दूसरों को दुःखी करके सुखी होना चाहते हैं वे अशुभ नाम कर्म का आस्रव करते हैं। दूसरों को आग से जलाने वाले का स्वयं का हाथ पहले जलता है।

तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥

अभी जो आपको बताये इन कुटिल परिणामों से विपरीत योग की सरलता, अविसंवाद, धर्मात्मा पुरुषों व स्थानों, तीर्थों का दर्शन करना, आदर-सत्कार करना, सद्भाव रखना, उपनयन संस्कार, संसार से डरना, उत्साहपूर्वक धार्मिक कार्य करना, इन परिणामों से शुभ नाम कर्म का आस्रव होता है। मानव जीवन मिला है, हाथों से दान दीजिये, कानों से धर्मश्रवण कीजिये, जिनवाणी का रसपान कीजिये, नेत्रों से देवदर्शन, गुरुदर्शन कीजिये, पैरों से तीर्थ वन्दना कीजिये, मस्तक को पूज्य पुरुषों के चरणों में झुकायें और पेट को न्याय की रोटी से भरिये, शुभ नाम कर्म का आस्रव होगा।

मूलाचार ग्रन्थ में आचार्य कहते हैं, "पीठ पीछे किसी की निन्दा करना पीठ का मांस खाना है।" निन्दा करना तो बुरा है, निन्दा करने से निन्दा सुनना और विशेष अधिक पाप है "**परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने**

च नीचैर्गोत्रस्य''।।२५।। दूसरों की निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, इससे जीव नीच गोत्र का आस्रव करता है।

बन्धुओ! निन्दा करने वाले से सुनने वाले विशेष पातकी क्यों? क्योंकि वह निंदक को प्रोत्साहित कर रहा है। एक निन्दा कर रहा है, दूसरा उसकी अनुमोदना कर रहा है। आप लोग आज कोई व्रत न लें, कुछ न छोड़ें, बस छोटा सा नियम कर लें–''हम किसी की निन्दा नहीं करेंगे व नहीं सुनेंगे।'' अपनी प्रशंसा व परनिन्दा से सदा बचो। बुरा बोलने के लिए गूँगे बन जाओ, बुरा देखने के लिए अंधे बन जाओ और बुरा सुनने के लिए बहरे बन जाओ। यही उन्नति का पथ है। आस्रवों से बचने का उपाय है।

सम्यग्दृष्टि कभी दोषों पर दृष्टिपात नहीं करता, सम्यग्दृष्टि का चिह्न है ''गुण ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे।'' सम्यग्दृष्टि अपने मुख से अपनी प्रशंसा नही करता–''हीरा मुख से ना कहे लाख हमारो मोल।''

परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, दूसरों के सद्‌गुणों का उद्‌भावन, असद्‌गुणों का उच्छादन, नम्रवृत्ति, अनुत्सेक/अहंकार का अभाव, ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं। **तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य**।।२६।।

दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य में विघ्न करना अन्तराय कर्म का आस्रव है।

दातार दान दे रहा है, भंडारी पेट कूटता है, कैसी विचित्रता है! पिताजी ने ५०० रुपये दान में देना चाहा, पुत्र ने हाथ रोक दिया, अभी नहीं, दानान्तराय कर्म आ गया। मुनिराज आहार ले रहे थे, एक व्यक्ति मनचला आ गया, कहने लगा–यह वस्तु इन्हें मत दीजिये, बस लाभान्तराय कर्म आ गया, आत्मा से चिपक गया। एक बालक भोजन कर रहा था, माँ ने भोजन छुड़ा लिया, पहले दूसरा काम करो, भोगान्तराय कर्म का आस्रव हो गया। एक बालक दीक्षा लेना चाहता था, परिवार के लोगों ने साँकल से उसके हाथ-पैर बाँध दिये, देखते हैं बाहर कैसे निकलता है, अन्तराय कर्म का तीव्र आस्रव हो गया। आप कहेंगे क्या करें, मोह कराता है। अरे मोह क्या करेगा, वह तो जड़ है–

कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।
अग्नि सहै घनघात संगति लोहे की पाई॥

आप लोगों ने बेड़ी, हथकड़ी देखी है। जिस तरह अपराध करने पर इनसे बाँधकर जेल में बंद कर दिया जाता है, उसी तरह ये आस्रव पैरों में बँधी साँकल है/अर्गला है, इनसे बाँधकर शरीररूपी जेल में जीव राजा को बंद कर दिया जाता है–

घर कारागृह, वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे।

ये आस्रव, कषायसहित जीवों के साम्परायिक और ईर्यापथ आस्रव रूप से दो प्रकार के हैं। योग कर्मों को निमन्त्रण देते हैं, कषायें उनका स्वागत करती हैं अत: साम्परायिक आस्रव कषाय सहित जीवों के एक अन्तर्मुहूर्त से ७० कोडा-कोड़ी प्रमाण स्थिति तक का बन्ध करा देता है। ईर्यापथ आस्रव ११वें गुणस्थान से होता है। यहाँ योग कर्मों को निमन्त्रण तो देते हैं परन्तु कषाय स्वागताध्यक्षा के नहीं होने से आस्रव लम्बी स्थिति लेकर रुकता नहीं, एक समय मात्र की स्थिति लेकर आता है और चला जाता है।

शुभास्रव अशुभास्रव के भेद से भी आस्रव के दो भेद होते हैं–प्रवचनसार में आचार्य जयसेन स्वामी लिखते हैं–प्रथम गुणस्थान से तीसरे गुणस्थान तक घटता हुआ अशुभोपयोग है अत: अशुभास्रव भी घटता हुआ है। चौथे गुणस्थान से सातवें तक बढता हुआ शुभोपयोग है अत: वहाँ शुभास्रव भी बढ़ता हुआ ही है। तीर्थंकर प्रकृति शुभास्रव का ही फल है। ''पुण्णफला अरहंता।''

यह जीव प्रतिदिन पाँच पापों को करता है, पाप का संरंभ-समारंभ-आरंभ करता है। मन, वचन, काय से करता है, कराता है, अनुमोदन करता है, क्रोध से, मान से, माया से या लोभ से करता है–३×३=९। ९×३=२७। २७×४=१०८। इस तरह एक पाप को दूर करने के लिए प्रतिदिन जीवों को १ माला अवश्य जपना चाहिए तथा ५ पापों की मुक्ति के लिए ५ माला प्रतिदिन अवश्य जपना चाहिए। जो ५ माला रोज जपता है उसका कोटा बराबर रहेगा इससे अधिक जपने वालों का पुण्य बढ़ेगा, कम जपने वालों का पाप बढ़ता है।

कुन्दकुन्द स्वामी **समयसार** के कर्ताकर्मअधिकार में कहते हैं–

णादूण आसवाणं असुचित्तं च बिवरीय भावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ।।७२ ।।

आस्रव अशुचि हैं, जड हैं, दुःख के कारण हैं। जैसे जल में शैवाल मलिन होने से जल को मैला दिखलाती है, उसी प्रकार ये आस्रव भी आप मलिन हैं, आत्मा को भी मलिन अनुभव कराते हैं। आत्मा ज्ञानवान् है, पवित्र है, उज्ज्वल है। आस्रव आत्मा से भिन्न स्वभाव वाले हैं, हेय हैं। आत्मा विज्ञानघन स्वभाव वाला है। आस्रव दुःख के कारण हैं इसलिए आत्मा को आकुलता उपजाने वाले हैं और भगवान् आत्मा सदा ही निराकुल स्वभाव वाला है, इस प्रकार दोनों का भेद जान कर आत्मस्वभाव को प्राप्त करो। आस्रवों से निवृत्त होओ। कैसे होवें?

अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ, णाणदंसणसमग्गो।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि ।।७३ ।।

अन्त में, आस्रवों से छूटने के लिए हम बार-बार विचार करें–मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममता रहित हूँ, ज्ञानदर्शन से पूर्ण हूँ। आस्रव लाख और वृक्ष इन दोनों की तरह बध्यघातक स्वभाव है। जैसे पीपल आदि के वृक्षों में लाख उत्पन्न होती है, उससे वृक्ष बँध जाता है, बाद में उसके निमित्त से वृक्ष का नाश हो जाता है। इसी प्रकार जो बध्यघातक स्वभाव रूप से जीव के साथ बँधे हैं, ये मेरे विज्ञानघन स्वभावी मुझ आत्मा से भिन्न हैं। मैं इनसे भिन्न हूँ। इस प्रकार ज्यादा न कहकर मै इतना ही कहकर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ कि अमूल्य मानव जीवन को प्राप्त कर अशुचि, जड, विपरीत भाव वाला जानकर बार-बार उससे भिन्न ज्ञायक स्वभावी, विज्ञानघन टंकोत्कीर्ण सहजानन्द स्वरूप स्वभाव से शुद्ध आत्मा का चिन्तन करो, उसी में लीन हो कर्मों का क्षय करो। इत्यलम्।

जय बोलिये चन्द्रप्रभ भगवान् की जय!

♦♦

८

शम दम तें जो कर्म न आवें

जैनदर्शन की अमूल्य कृति, विविध विषयों का सूत्र रूप में वर्णन करने वाली मौलिक कृति तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ है। यह संस्कृत वाङ्मय का जैनदर्शन का प्रथम ग्रन्थ है। उमास्वामी आचार्य ने इसमें सप्त तत्त्वों की सारगर्भित विवेचना की है। इस तत्त्वार्थ सूत्र के नवम अध्याय में आप लिखते हैं "आस्रवनिरोध: संवर:" ॥१॥ आस्रव का रुक जाना संवर है। जैसे चतुर द्वारपाल मैले तथा असभ्यजनों को घर में प्रवेश नहीं करने देता उसी प्रकार समीचीन बुद्धि पापबुद्धि को हृदय में फटकने नहीं देती। समीचीन बुद्धि के धारक जीव सम्यक्त्वरूप दृढ कपाट के द्वारा मिथ्यात्वरूपी आस्रव द्वार को रोकते हैं। तत्त्वज्ञान को रोकने वाले अज्ञानरूपी अन्धकार को ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से दूर करते हैं तथा संवर करने में तत्पर असंयमरूपी विष के/जहर के उद्गार को संयमरूपी अमृतमयी जल से दूर कर देते हैं। जिस प्रकार युद्ध के संकट में अच्छी तरह तलवार आदि लेकर सजा हुआ वीरपुरुष बाणों से नहीं भिदता उसी प्रकार संसार की कारणरूप क्रियाओं से विरक्त संवर वाला संयमी मुनि असंयमरूप बाणों से नहीं भिदता। जैसे उत्पथ मार्ग में गमन करने वाला घोड़ा लगाम द्वारा वश में किया जाता है, वैसे ही इन्द्रिय रूपी घोड़े को पञ्चेन्द्रिय विषयों में अप्रवृत्तिरूप लगाम के द्वारा रोकना चाहिए।

संवर का इच्छुक संयमी, ज्ञानी मनरूपी बन्दर को वश करे क्योंकि जैसे विद्या, मंत्र, औषधि से पुरुष आशीर्विष सर्प को निग्रह करने में समर्थ नहीं होता वैसे ही चपल मन मानव इन्द्रियरूपी सर्पों का निग्रह नहीं कर सकता। विकथा आदि १५ प्रमाद हैं। जैसे नाव में जल के आने के द्वार को काठ आदि

के द्वारा रोका जाता है वैसे अप्रमादरूप फलक से प्रमाद जो पापप्रयोग हैं उन्हें रोकना चाहिए। जैसे खाई, कोट आदि से रक्षित नगर शत्रु के द्वारा भंग नहीं किया जा सकता वैसे ही मन-वचन-काय की गुप्तिरूप खाई, कोट से रक्षित संयमनगर को कर्मरूप शत्रु की सेना भंग करने में सक्षम नहीं हो सकती तथा प्रमादरहित पुरुष समितिरूपी दृढ़ नाव में बैठकर छह जीवनिकाय की हिंसा से उत्पन्न पापरूप जलचर का स्पर्श नहीं करते हुए संसार समुद्र से पार हो जाते हैं।

मंगतरायजी लिखते हैं–

ज्यों मोरी में डाट लगावे, तब जल रुक जाता,
त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहीं मन लाता।
पञ्चमहाव्रत समिति गुप्तित्रय, वचन काय मन को,
दशविध धर्म परीषह बाईस बारह भावन को।
ये सब भाव सत्तावन मिलकर आस्रव को खोते,
सुपन दशा से जागो चेतन कहाँ पड़े सोते।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावन संवर भावे,
डाट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावे।।

हे भाई! जैसे नाव के छिद्रों में डाट लगाने पर नाव आसानी से समुद्र पार हो जाती है वैसे ही मानव जीवनरूपी नैया में ५७ छिद्र हो रहे हैं। एक-एक छिद्र को रोकने के लिए एक-एक ऐसे ५७ परिणाम–५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, १० धर्म, २२ परीषह और १२ भावनाएँ ये ५७ संवररूपी डाट हैं, इनको जीवनरूपी नौका पर लगाओ, अशुभ व शुभ भावना से रहित शुद्ध का चिन्तन करो, बस, एक अन्तर्मुहूर्त में जीवन नौका भवसमुद्र से पार हो जायेगी। सं उपसर्ग पूर्वक वृञ् वरणे धातु से संवर शब्द की निष्पत्ति हुई है। सम्यक् प्रकारेण कर्माणि वृणोति इति संवरः अर्थात् सम्यक् प्रकार से कर्मों का जिससे निराकरण होता है वह संवर है।

छहढालाकार लिखते हैं–''शम दम तें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये'' कषायों का शमन और इन्द्रियों का दमन इनसे जो कर्मों का निरोध होता है वही संवर आदरणीय है, आचरणीय है।

एक समय की घटना है, रति और कामदेव दोनों मनोविनोद के लिए वन-विहार कर रहे थे। कामदेव रति से कह रहा था–प्रिये! सारा जगत् मेरे आधीन है, मैंने सबको अपने वश में कर रखा है, सारे विश्व पर मेरा प्रभुत्व है। रति कहने लगी–स्वामिन्! ज्यादा अहंकार हानिकारक होता है, समय आने पर निर्णय होगा। वन-विहार करते हुए दोनों क्या देखते हैं कि एक स्थान पर वीतराग मुद्रा के धारी जिनेन्द्र पार्श्वनाथ प्रभु विराजमान हैं। उन्हें देखते ही रति और कामदेव आपस में वार्ता करने लगे–

कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी, ऊहूं प्रतापी प्रिये।
ऊहूं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियां।
मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयं।
इत्येवं रतिकाम जल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः।।

रति कहने लगी "कोऽयं नाथ! हे नाथ यह कौन है?"

कामदेव–'जिनो'! हे देवी यह जिन है।

रति–"भवेत् तव वशी" हे देव! क्या ये तुम्हारे वश में हैं?

कामदवे–"ऊं हूं प्रतापी प्रिये" हे प्रिये! ये इन्द्रियविजेता मेरे वश में नहीं हैं।

रति–हे कायरबुद्धि! यदि ये तेरे वश में नहीं हैं तो अपने वीर्य, शौर्य की डींग हाँकना आज से बन्द करो। अभी कुछ क्षण पूर्व कह रहे थे–सारा संसार मेरे वश में है, अब क्या हुआ? बस, अहंकार दिखाते हो।

कामदेव–प्रिये! इन वीतराग प्रभु के तो हम लोग दास हैं। 'इन्होंने मोह को जीत लिया है, कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन कर जिन्होंने जिन, अरहंत संज्ञा प्राप्त की ऐसे जिनेन्द्र के हम दास हैं, इनको वश में करने की शक्ति हम किंकरों में कहाँ है? इस प्रकार वीतरागी अरहंत जिनदेव हमारी रक्षा करें।

मोहनींद के जोर जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुँ ओर सरवस लूटे सुध नहीं।।

हे प्रिये! यह जीव मोहकर्म के उदय से चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण

कर रहा है। जो संसारी इन्द्रियों के दास हैं वे हमारे दास हैं, क्योंकि उन्हें चारों ओर से कर्मरूपी चोर लूट रहे हैं, किन्तु मोहनिद्रा में सोए इन जीवों को सुध-बुध नहीं है, किन्तु ये जिनदेव केवलज्ञानी हैं। 'शमन-दमन' इनके जीवन का सार है, उसी का प्रतिफल है कि कर्मचोरों का इनके द्वार पर आना ही बन्द हो गया है। ये निरन्तर कर्मों का संवर करते हुए आत्मानन्द का पान कर रहे हैं। ये जिन हमारे रक्षक हैं।

मिथ्यात्व आत्मा का सबसे बडा शत्रु है। उसके क्षय होने पर संवर प्राप्त होता है। संवरप्राप्ति व मिथ्यात्व के क्षय का प्रथम उपाय है 'अरहंत भक्ति' द्रव्य गुण पर्याय से अरहंत को जानो। अरहंत का अनुराग ही आत्मानुराग है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप यह अरहंत अवस्था है।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहं खलु तस्स जादि लयं।।

जो अरहंतदेव को उनके द्रव्य-गुण-पर्याय से जानता है वह अपनी आत्मा को जानता है और उसका मोह क्षय को प्राप्त होता है।

अरहत भगवान् जीवद्रव्य हैं, ये आत्माश्रित अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय व बहिरंग ४२ इस प्रकार ४६ मुख्य गुणों वैसे अनन्त गुणों के स्वामी हैं। प्रत्येक समय मे होने वाला परिणमन जो वचनागोचर है वह उनकी अर्थपर्याय है तथा मूर्ति या शरीराकार इनकी व्यञ्जन पर्याय है। अरहतदेव में वीतराग अवस्था या जिनदेव में जो वीतरागता, सौम्यता झलक रही है वह और लोकालोक का देखना आदि ये सब शुद्ध अर्थ पर्याय हैं। पद्मासन, खड्गासन आदि रूप शरीराकार यह व्यञ्जन पर्याय है।

हे भाई! जैसे मकान बनाने के लिए नक्शा समझना आवश्यक है, वह सामने होना चाहिए वैसे ही अरहंत बनने के लिए अरहंत को जानना आवश्यक है। ये हमारे लिए नक्शा, दर्पण हैं।

नेमिचन्द्राचार्य ने वृहद्द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ में संवर के दो भेद किये हैं–

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो।।३४।।

जो चैतन्य परिणाम कर्मों के आस्रव को रोकने में कारण है उसको निश्चय से भावसंवर कहते हैं और जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण है उसको द्रव्यसंवर कहते हैं। अर्थात् आत्मा का जो परिणाम कर्मों के आस्रव को रोकता है, रोकने में कारण है वह निर्मल परिणाम ही भावसंवर है, कर्मास्रव का रुक जाना द्रव्यसंवर है। मिथ्यात्व का अभाव होने पर सासादन गुणस्थान में १६, मिश्र गुणस्थान में २५ आगे आगे १०, ४, ६, १, ३६, ५, १६ प्रकृतियों का संवर होता है।

जब उमास्वामी आचार्य ने नवम अध्याय में कहा–"आस्रवनिरोध: संवर:" तब शिष्य ने प्रश्न उठा दिया–प्रभो! आस्रव का निरोध कैसे हो? ऐसे कौन से परिणाम हैं जिनसे कर्मों के आने का द्वार बन्द किया जा सकताहै? आचार्यश्री ने समाधान में कहा–"स गुप्ति समिति धर्मानुप्रेक्षा परीषह जय चारित्रै:" वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र के द्वारा होता है। गुप्ति, समिति, धर्मादि मणियों की मालारूपी हार का धारक जीव जीवन के सौन्दर्य को प्राप्तकर मुक्तिवधू का स्वामी बन मणियों की चमक से जीवन को अलंकृत करता है।

अब संवर के कारणों में सर्वप्रथम नम्बर आता है 'गुप्ति' का। "यत: संसारकारणात् आत्मन: गोपनं भवति सा गुप्ति" जिसके बल से संसार के कारणों से आत्मा का गोपन रक्षण होता है, वह गुप्ति है। अथवा "सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति" योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है। मन, वचन, काय तीनों की निग्रहता से कर्मों के आने का द्वार बन्द हो जाता है।

आप लोग कल्पना कर सकते हैं "योगनिग्रहो गुप्ति" ऐसा आचार्यों ने क्यों नहीं कहा? योगनिग्रहो गुप्ति कह देते तो सब संसारियों का काम बन जाता। अरे भैया! तब तो ध्यान, तप, उपवासादि की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। तब तो झाड़ू देते-देते भी मुक्ति हो जाती। आप लोग भी योगों का निग्रह तो करते ही हैं–एक मुनीम हिसाब/बहीखाता का जोड़ लगाते हुए यदि जरा भी चंचलता करे तो सारा हिसाब गलत हो जाता है, एक महिला भोजनालय में यदि अपनी चंचलता नहीं छोड़े तो तवे पर रोटी जलेगी, गैस पर दाल-सब्जी जलेगी। तात्पर्य यही है कि योग का निग्रह तो संसार की सिद्धि कर सकता

है, इसीलिये आचार्यों ने विवेक से काम लिया 'सम्यक्' पद जो दिया। जिस एकाग्रता से संसार बढता है, संसार के संकल्प-विकल्प जालों में फँसे आत्मा की रक्षा नहीं होती है वह गुप्ति नहीं कुश्ती है।

चेलना ने बौद्ध भिक्षुओं के परीक्षार्थ अपना सत्पुरुषार्थ किया था, तब द्वारापेक्षण के लिए खडी चेलना मुनिराज की ओर इंगित करती है यदि आप त्रिगुप्ति धारक हैं तो आहारार्थ पधारिये। तीन मुनिराज क्रमश: आये और तीनों ही लौट गये। कारण, किसी के मनोगुप्ति, किसी के वचनगुप्ति और किसी के कायगुप्ति नहीं थी। चेलना का उद्देश्य था मेरे गुरुओं के उदर में कहीं अशुद्ध भोजन नहीं पहुँच जावे। त्रिगुप्तिधारक मुनि अवधिज्ञानी होते हैं। यदि उनका द्वारापेक्षण भी हुआ तो घर में प्रवेश करते ही वे वहाँ की अशुद्धि का निर्णयकर लौट जावेंगे। धन्य है ऐसी नारियों को जिन्होंने देव-शास्त्र-गुरु की रक्षार्थ, जैनधर्म की प्रभावनार्थ अपना जीवन समर्पित किया है। गुप्ति की महिमा गाते हुए छहढालाकार लिखते हैं–

सम्यक् प्रकार निरोध मन, वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते॥

बन्धुओ! यदि इतनी क्षमता नहीं है कि पूर्णरूपेण गुप्तिरूप निवृत्ति में रह सकें तो चिन्ता नहीं, उदारमना आचार्य कहते हैं कि समिति से रहो, सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करो। सत्य ही तो है शुद्धोपयोग में निरन्तर रहो तो कोई चिन्ता नहीं, शुभोपयोग की आवश्यकता ही नहीं। परन्तु जब शुद्धोपयोग में निरन्तर रहने की क्षमता नहीं है तब पतन से बचने के लिए शुभोपयोग ही एकमात्र सहारा है। आप लोगों ने सर्कस देखा होगा? सर्कस में कलाकार एक तार या ऊँची रस्सी पर चलकर कला का प्रदर्शन करता है। उस रस्सी के नीचे एक जाली लगी रहती है क्यों? यदि ध्यान चूक गया तो जमीन पर आकर न गिर पडे। इसी प्रकार शुद्धोपयोग से गिरने पर शुभोपयोगरूपी जाली मोक्षार्थी को अशुभोपयोग के पतन से बचाती है। गुप्ति से गिरने पर समिति संरक्षक है, संवर का कारण है। गुप्ति निवृत्ति मार्ग है समिति प्रवृत्ति मार्ग है।

आप लोगों के मन में यह प्रश्न आ सकता है कि निवृत्ति से संवर तो

होता है पर प्रवृत्ति से संवर कैसे? यह समस्या या यह प्रश्न कहो बहुत सुन्दर है। घबराइये नहीं, जैनाचार्यों के पास सभी समाधान उपलब्ध हैं। गुप्ति निवृत्ति मार्ग होने से इससे शुभाशुभ दोनों का संवर होता है जबकि समिति प्रवृत्ति मार्ग होने से महाव्रत, समिति आदि से अशुभ का संवर होता है। आज की स्थिति में कुछ ऐसी भ्रामक धारण फैली है कि जीव पुण्य से तो दूर हैं, डर रहे हैं और पाप से बचना नहीं चाहते। पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में लिखते हैं–''पुनाति आत्मानम् इति पुण्यम्'' जो आत्मा को पवित्र करे वह पुण्य है। शुभयोग और शुभउपयोग में बहुत अन्तर है। शुभयोग (पुण्य) मिथ्यादृष्टि को भी होता है पर शुभउपयोग (पुण्यत्व) सम्यग्दृष्टि के ही होता है। पुण्य प्रकृति की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि को भी पुण्यात्मा कह सकते हैं किन्तु पुण्यत्व की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि ही पुण्यात्मा है। प्रकृति की अपेक्षा पुण्यबन्ध मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है पर पुण्यत्व की अपेक्षा पुण्य सम्यग्दृष्टि ही कर सकता है। तात्पर्य, इष्ट धन, वैभव, महल, परिवार आदि सब पुण्य प्रकृति का फल है किन्तु आत्मा को पवित्र करने का लक्ष्य या जिसमें आत्मा को पवित्र करने की योग्यता है वह पुण्यत्व है यथा घट में घटत्व। सम्यग्दृष्टि को पुण्यक्रिया में हेयपना नहीं होता है। पुण्य के आचार्यो ने दो भेद किये १. मिथ्यात्व युक्त, २. सम्यक्त्व युक्त।

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होइ संसार-कारणं णियमा।
मोक्खस्स होइ हेउं जइ वि णियाणं ण सो कुणई।।४०४, भा.सं.।।

सम्यग्दृष्टि का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं होता। मोक्ष का कारण होता है यदि वह निदान न करे तो।

सम्यग्दृष्टि जितनी भी पुण्य क्रियाएँ करता है मोक्ष निमित्त, कर्मक्षय के निमित्त करता है जबकि मिथ्यादृष्टि धर्म क्रियाएँ भोगों के निमित्त करता है। श्री **कुन्दकुन्दाचार्य समयसार** ग्रन्थ में लिखते हैं–

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य।
धम्मं भोगणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।२७५।।

मिथ्यादृष्टि जीव भोग के निमित्तभूत धर्म का ही श्रद्धान करता है, उसी की प्रतीति करता है, उसी की रुचि करता है तथा पुन: उसी का स्पर्श करता

है, परन्तु कर्म-क्षय के निमित्तरूप धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श नहीं करता।

आचार्य कहते हैं पहले संवर का प्रयास आवश्यक है, निर्जरा के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दृष्टि की आसक्ति छूट जाती है और साधु की आवश्यकता भी छूट जाती है। यही संवर का मार्ग है, आसक्ति और आवश्यकता ये ही आस्रव हैं, इनका रोकना ही संवर है।

शुभोपयोग पुण्य है। यह पुण्य अरहंतपद-प्रदाता है। जहाँ मात्र पुण्य रह जाता है वहाँ अन्तर्मुहूर्त बाद मुक्ति की योग्यता आ जाती है। केवल पुण्य दसवें गुणस्थान के आगे ही होता है। वही केवल पुण्य-पाप द्वारों को पूर्णरूपेण बन्द कर देता है। पुण्य को सर्वथा हेय कहना आगम का अपलाप है, अवर्णवाद है। पुण्य सर्वथा हेय नहीं, हाँ पुण्य के फल की इच्छा सर्वथा हेय है। पुण्य-पाप में से एक को बलात् छोड़ना पडेगा और दूसरा छूट जायेगा। पाप को बुद्धिपूर्वक व्रत, संयम आदि धारण करके छोड़ना होगा, पर पुण्यरूप व्रत आदि को छोडना नहीं पड़ेगा ये स्वयं छूट जायेंगे। अरे भैया! जब पाप को छोड़ोगे तो पुण्य मे प्रवृत्ति करोगे तथा पुण्य क्रिया करते हुए राग-द्वेष को छोड़कर योगों का निरोधकर तृतीय शुक्लध्यान में स्थिर होवोगे तब चौदहवें गुणस्थान में योगों का अभाव होते ही पुण्य स्वत: छूट जायेगा। प्रारम्भिक अवस्था में ही पुण्य को छोडने या तोडने की, उसके फल को हटाने की ताकत तो केवली भगवान् मे भी नहीं है फिर हम आपका तो वश ही क्या है? पुण्य से डरो नहीं। पुण्य आत्मा को निर्मल करने वाला पुनीत जल है। पुण्यरूपी जल में जितना गोता लगाओगे, अपने को जितना अधिक इससे सींचोगे, मोक्ष की खेती उतनी ही हरी रहेगी।

समिति प्रवृत्ति है। प्रत्येक मानव, जीवन के चौबीस घंटों में पाँच क्रियाएँ करता है–१. चलना-फिरना, २. बोलना-चालना, ३. खाना-पीना, ४. उठाना-धरना और ५. ग्रहण व मोचन। ये क्रियाएँ सम्यक् प्रकार से करना, इसे जैनाचार्यों ने समिति नाम से पुकारा–"प्राणिपीडापरिहारार्थं सम्यगयनं समिति:" प्राणियों की पीडा के परिहार के लिए सम्यक् प्रकार से, समीचीनता पूर्वक उठना-बैठना/

चलना-फिरना, खाना-पीना, उठाना-धरना, ग्रहण व मोचन करना समिति है। सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं—सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति करने वालों के असंयम रूप परिणामों से जो कर्मों का आस्रव होता है उसका संवर होता है। उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ में "ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गा: समितय:" ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ कही हैं।

परमाद तज चउ कर मही लखि समिति ईर्यातें चलैं।

निष्प्रमाद हो चार हाथ भूमि देखकर चलना ईर्या समिति है। एक समय की बात है। एक बाबूजी, "यहाँ के नहीं!" रास्ते से जा रहे थे, उनको ऊँट की तरह चलते देख मैंने कहा—भैया! नीचे देखकर चलना, व्यवस्थित चलना सभ्यता है। वह कहने लगा—महाराजजी! यह तो मुनियों का मूलगुण है, हमें इससे क्या प्रयोजन। मैंने कहा—अरे भाई! मुनियों का मूलगुण तो है ही, उनका सर्वदेश है, तुम्हारा एकदेश मूलगुण है, यह तो मानव जाति की सभ्यता है। इतना ही नहीं, गुरुदेव सदा कहा करते थे—

नीचे देखे तीन गुण, पड़ी वस्तु मिल जाय।
ठोकर भी लागे नहीं, जीव-जन्तु बच जाय।।

भाषा समिति का तात्पर्य है—"पहले तोलो फिर बोलो" अपनी वाणीरूपी गाय को परनिन्दा, कटुवचनरूपी खेतों में चरने से बचाओ। जो वचन आपको अपने लिए प्रिय नहीं हैं, वे वचन दूसरों के लिए भी मत बोलिए संवर भावना का यह एक श्रेष्ठ मूल-मन्त्र है। छहढालाकार दौलतरामजी अपनी मधुर लेखनी से लिखते हैं—

जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं।।

एक वाणी अमृत का काम करती है और एक वाणी विषतुल्य होती है। चन्द्रमा की चाँदनी संताप को हरकर शीतलता प्रदान करती है, वैसे ही सभ्य पुरुषों की मृदु वाणी जीवन के समस्त दु:खों का क्षयकर शान्ति प्रदान करती है। तलवार के घाव भर सकते हैं पर वाणी के घाव नहीं भरते। वाणी

से जीवों के शिक्षण, कुल परिवार की पहिचान होती है।

खाना-पीना कैसे? एषणा समिति से–

छियालीस दोष बिना सुकुल श्रावकतनैं घर असन को।
लें तप बढ़ावन हेतु नहीं तन पोषतें तजि रसन को॥

मुनिराज ४६ दोषों से रहित हो, उत्तम कुल में योग्य श्रावक के हाथों आहार लेते हैं। क्योंकि आहार की शुद्धि-अशुद्धि का मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। "जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन, जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी।" आचार्यदेव अपने प्रवचनों में एक घटना का उल्लेख प्राय: किया करते थे–

एक दिन एक मुनिराज नगरसेठ के घर आहार के लिए पहुँचे। मुनिराज के उदर में सेठ का भोजन जाते ही उनमें चोरी के भाव आये। मुनिश्री ने तुरन्त ही रत्नों का हार कमण्डलु में डाल लिया। उनके परिणामों की विशुद्धि मलिन हुई। मध्याह्न सामायिक काल में मन में एकाग्रता नहीं हो पाई। क्यों? ऐसा क्यों? विचारों में लहर चल रही थी, तभी पाप का भंडार सामने आया। पश्चाताप से आँखें डबडबा आईं। इसी समय शौच की बाधा हुई। सेठ का सारा माल/भोजन पेट से निकलते ही परिणामों में निर्मलता आई। हे आत्मन्! दीक्षा के बाद आज प्रथम आहार था। आज प्रथम ही दिन इतना बड़ा पाप कैसे हुआ? यह हार क्यों चुराया, इस पर तेरी नियत बुरी क्यों हुई? तत्काल हार को लेकर सेठजी के घर की ओर पहुँचे। बोले–सेठजी! तुम्हारा हार, सम्हालो। ये बताओ तुम्हारे घर काहे का धंधा होता है? सेठ–महाराजजी! यह बात तो पूछिये ही मत, रात्रि में १२ बजे के बाद दुकान खोलता हूँ और ४ बजे बन्द कर देता हूँ। अर्थात् चोरी का माल खरीदता हूँ और बेचता हूँ। सेठजी! बस, तुम्हारे अन्न को खाते ही मेरे भाव चोरी करने के हो गये! सत्य ही है, आहार की अशुद्धि मन को अत्यधिक प्रभावित करती है।

इसीलिए जिस कुल में आजीविका दूषित व्यापारों से की जाती है उनमें साधुगण आहार नहीं करते। जिस कुल में पिण्डशुद्धि है, विजातीय विवाह, विधवा विवाह नहीं हुआ है, वहीं आहार लेकर मुनिराज एषणा समिति का पालन करते हैं।

भोजन की शुद्धि मानव का मंगल जीवन है। बन्धुओ! वर्तमान में देश पतन के कगार पर खड़ा है। इसका मूल कारण है खान-पान की अशुद्धि। जिसका आचार शुद्ध नहीं उसका विचार कभी शुद्ध नहीं हो सकता है। मानव मस्तिष्क पाश्चात्य संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित हुआ है कि जीवन की प्रत्येक क्रिया पर पाश्चात्य दृष्टि नजर आती है। आचार-विचार की ओर लक्ष्य ही नहीं है। भक्ष्य-अभक्ष्य का कोई विचार ही नहीं है। पेट तो लेटर-बॉक्स बन गया है जो भी मिले, जहाँ से मिले वह इस उदर में डाला जा रहा है। रात हो या दिन, सुबह हो या शाम, खाना, खाना, खाना। प्राचीन सभ्यता थी। एक घर में पन्द्रह-बीस जितने सदस्य रहते, मुखिया की आज्ञानुसार भोजन बनता था, सब शौक से करते थे। आज माँ के तीन बच्चे हैं तीनों की फरमाइश अलग-अलग है, पति की अलग और स्वयं की अलग। सुबह से शाम एक ही काम, विभिन्न किस्मों का भोजन चाहिए फिर भी तृप्ति नहीं, किसी को डोसा चाहिए, किसी को.......

आज मानव ने संयम से मुख मोड़ लिया है। सत्य और अहिंसा केवल ऊहापोह की वस्तु रह गये हैं। हम अपनी प्राचीन संस्कृति का स्वाभिमान खोते जा रहे हैं। सम्राट् अशोक एक प्रिय शासक था। वह स्वाभिमानी था। दिव्यवादन (संस्कृत) ग्रन्थ में लिखा है कि अशोक का विवाह एक म्लेच्छ कन्या के साथ हो गया। एक दिवस उसने भोजन में अशोक को प्याज परोसा। प्रिय अशोक ने कहा-"हे देवी! मैं उच्चकुलीन क्षत्रिय हूँ, मेरे वंश में प्याज का भोजन नहीं किया जाता, तुम मेरे सामने से प्याज को हटा दो।" आज की भोजन-व्यवस्था देखकर, सुनकर आश्चर्य होता है। जैनियों ने 'जैनत्व' को धूमिल कर दिया है। जैन घरों की शादियों के कार्डों में लिखा रहता है-प्रात: ११ से १, सायं ६ से १० या ८ से ११, अफसोस होता है। कहाँ है हमारी सभ्यता, कहाँ है हमारी वह संस्कृति और कहाँ है हमारा वर्तमान पतित जीवन?

बन्धुओ! अभी समय है, अपनी भोजन प्रणाली को सम्हालिये। आचार से विचार की शुद्धि बनती है। जिसका आचार शुद्ध नहीं होगा उसका विचार कभी भी शुद्ध नहीं होगा। अभक्ष्य का त्याग कीजिये, शाकाहार सेवन कीजिये, रात्रिभोजन का त्याग कीजिये, कुलाचार की रक्षा कीजिए। यह संवर भावना

की प्रथम सीढ़ी है, इसके बिना जीवन में संवर का प्रवेश कभी नहीं हो सकता।

किसी भी वस्तु को उठाते या रखते समय देख-शोधकर क्रिया करें जिससे हिंसा का अभाव, संवर की प्राप्ति हो सके। **"शुचि ज्ञान संयम उपकरण लखिके गहें लखिके धरें"** यह संवर प्राप्ति का उपाय आदान-निक्षेपण समिति है। पृथ्वी पर किसी वस्तु को घसीटना नहीं, घसीटकर वस्तु लेना-देना नहीं। यह सब सभ्यता मानव के जीवन में आस्रव का निरोध करने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार जीवजन्तु रहित स्थान में मल-मूत्र का क्षेपण करना–**"निर्जन्तु थान विलोक तृण मल-मूत्र श्लेषम परिहरै"** यह आस्रव को रोकने वाली व्युत्सर्ग समिति है।

संवर के हेतुओं के क्रम में अब नम्बर आता है 'धर्म' का। धर्म का लक्षण बताते हुए आचार्य कहते हैं "वत्थु सहावो धम्मो" वस्तु का स्वभाव धर्म है, "उत्तम खमादि दसविहो धम्मो" उत्तम क्षमा आदि का धारण करना धर्म है, अहिंसा धर्म है तथा दया करना, प्राणी मात्र की रक्षा करना धर्म है। यह धर्म ही सर्वसुख प्रदाता है–

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

अहिंसा, संयम व तपरूप धर्म लोक में मंगल है–पापनाशक है और उत्कृष्ट है। जिसके मन में ऐसा मंगलमयी धर्म रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। जैसे रत्नों में हीरा प्रधान है, तीर्थों में सम्मेद-शिखर महान् है, गायों में कामधेनु सुन्दर व मुख्य है, वृक्षों में कल्पवृक्ष इच्छित प्रदाता है वैसे ही सब धर्मों में इष्टसिद्धि प्रदाता अहिंसा धर्म महान् है। इसी की आराधना, उपासना मानवमात्र का कर्त्तव्य है।

सज्जनो! धर्म में दृढ़ता लाने के लिए वैराग्यरूप पुत्र को जनने वाली भावनारूपी बारह माताओं का बार-बार चिन्तन करो। शरीर की रक्षिका एक माता होती है जबकि आत्मारूपी परमात्मा के वैभव की रक्षिका १२ भावनाएँ हैं, इनका बार-बार चिन्तन करो। संसार अनित्य है, मैं नित्य हूँ, मृत्युकाल में मेरा कोई शरण नहीं, मैं भी किसी का शरण नहीं। व्यवहार से पञ्चपरमेष्ठी

मेरे शरण हैं, निश्चय में मेरा आत्मा ही मेरे लिए शरण है। संसार दुःखमय है, यहाँ जीव अकेला आता है, अकेला ही जाता है। इस लोक में परमाणु मात्र भी परद्रव्य मेरा नहीं हो सकता है, यह शरीर जिसे मैं सुबह से शाम तक पाल रहा हूँ, अपवित्र है, मल का पिटारा है। जीव अपने ही परिणामों से कर्मों का आस्रव करता है, परिणामों से ही संवर व निर्जरा करता है। परिणामों से ही १४ राजू प्रमाण लोक में भ्रमण करता है, ऐसी स्थिति में धर्म ही इसका रक्षक है पर समीचीन ज्ञान की प्राप्ति के बिना दुर्लभ नरभव को व्यर्थ खो देता है। एकान्त में बैठकर इन भावनाओं का चिन्तन करने वाला जीव कर्मों का संवर करता है परन्तु ठंडी में हीटर या गर्मी में कूलर लगा हो, सामने टेलीविजन चल रहा हो, डनलप का गद्दा लगा हो, चार नौकर सेवा में खड़े हैं, आप मुख से बोल रहे हैं–'राजा-राणा-छत्रपति'–क्या इससे संवर होगा ? भैया ! यह सब बारह भावनाओं का मखौल है, अविनय है। आत्मा में संवर की प्राप्ति, शुभाशुभ कर्मों का आस्रव-निरोध बच्चों का खेल नहीं, यह तो वीर पुरुषों के हाथ में रखी तीक्ष्ण तलवार है। यह संवर वीर पुरुषों का कार्य है, कायरों का नहीं। तीव्र कर्मोदय में यह आस्रव किसी को नहीं गिनता–

सतगुरु देय जगाय मोहनींद जब उपशमे।
तब कछु बनहि उपाय कर्मचोर आवत रुके॥

मोह, आसक्ति, इन्द्रिय विषयों में लम्पटता आदि रूप तीव्र कर्मोदय में जीव का झुकाव, रुझान संवर की ओर होता ही नहीं, जब मोह मन्द होता है, तब ही भव्यात्माओं को सद्गुरुओं का उपदेश रुचिकर लगता है और तब ही जीव पुरुषार्थ के द्वारा आगत कर्मशत्रुओं को रोककर संवर की प्राप्ति करता है।

बारह भावनाओं का चिन्तन किये बिना जीव कभी भी कष्टसहिष्णु नहीं बन सकता। कष्टसहिष्णु बने बिना उपसर्ग व परीषहों को जीता नहीं जा सकता। क्षुधा सता रही है, घर में भोजन तैयार नहीं है तो आप होटल जा पहुँचे अथवा दुकान पर ग्राहक बहुत हैं सुबह से शाम तक भोजन नहीं लिया यह भी परीषहजय नहीं है। आचार्यदेव कहते हैं ''मार्गाच्यवननिर्जरार्थं

परिसोढव्या परीषहा:।'' संवर के मार्ग से च्युत नहीं होने तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो सहन किया जाता है वह परीषह है और यह परीषहजय चारित्र के धारण किये बिना नहीं हो सकता। दिगम्बर सन्त चारित्र की आराधना करते हुए परीषहों को जीतते हैं।

धर्ममूर्ति परम तपस्वी धर्मघोष यतिराज एक माह के उपवास के बाद चम्पापुरी नगरी में पारणा के लिए गये। पारणा करके तपोवन की ओर लौटते हुए मार्ग भूल गये, जिससे चलने में अधिक परिश्रम हुआ और उन्हें तृषा की वेदना उत्पन्न हो गयी। वे गंगा के किनारे आकर एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गये। उन्हें तृषा से व्याकुल देख, गंगादेवी पवित्र जल से भरा लोटा लाकर बोली–हे योगिराज! मैं यह ठण्डा जल लाई हूँ। आप इसे पीकर अपनी प्यास बुझाइये। मुनिराज ने जल ग्रहण नहीं किया। वे प्राणहरण करने वाली प्यास की वेदना के मात्र ज्ञाता द्रष्टा बनते हुए ध्यानारूढ़ हो गये। यह देख देवी चकित हुई और विदेह क्षेत्र में जाकर केवली भगवान् से प्रश्न किया–प्रभो! जब मुनिराज प्यासे हैं तो जलग्रहण क्यों नहीं करते?

गणधरदेव ने उत्तर में कहा–दिगम्बर साधु न तो असमय में भोजनपान करते हैं और न ही देवों द्वारा दिया हुआ आहार आदि ग्रहण करते हैं। यह सुनकर देवी ने प्रभावित हो यतिराज को शान्ति प्रदान कराने हेतु चारों ओर सुगन्धित और ठण्डे जल की वर्षा प्रारम्भ कर दी। मुनिराज ने आत्मोत्थ अनुपम सुख के रसास्वादन द्वारा तृषा परीषह-जय कर चार घातिया कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। दिगम्बर साधु के पीछे रोटी दौड़ती है जबकि संसारी रोटी के पीछे दौडते हैं–

पराधीन मुनिवर की भिक्षा, पर घर लेय कहें कछु नाहीं,
प्रकृति विरुद्ध पारणा भुंजत, बढ़त प्यास की त्रास तहाँ ही।
ग्रीषमकाल पित्त कोपै, लोचन दोय फिरै जब जाहीं,
नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवन्तो वरतो जग माहीं।

मुनिराज बाईस परीषहों का जय कर संवर को प्राप्त करते हैं। आप बाईस हजार परीषहों को सुबह से शाम तक सहते हुए भी परीषहजयी नहीं बन

सकते क्योंकि चारित्र, संयम को धारण नहीं किया है।

"असुहादो विणिवत्ती सुहे पवित्ति य जाण चारित्रं" अशुभ से निवृत्त हो शुभ में प्रवृत्ति करो यही व्यवहार चारित्र है। साधक साधना के बल से इतना पारंगत हो जाता है कि बाह्य अभ्यन्तर दोनों क्रियाओं से उपरम हो आत्मा में लीन हो सतत संवर का कार्य करने में दक्ष बन जाता है। अत: संवर के प्यासे भव्यात्मा को गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय व चारित्ररूपी मणियों का हार पहन आत्मकल्याण करना चाहिए।

समन्तभद्र आचार्य लिखते हैं–

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुन-सेवापरिग्रहाभ्यां च।
पाप-प्रणालिकेभ्य: विरति-संज्ञश्च चारित्रं॥

द्रव्य से किसी जीव का घात करना द्रव्य हिंसा है तथा रागादि भावों की उत्पत्ति भावहिंसा है। इन दोनों से रहित होना संवर तत्त्व है–

जिन पुण्य पाप नहीं कीना आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके संवर लही सुख अवलोके॥

हिंसादि पाँच पाप की प्रणालिकाओं, कर्मों के आने के द्वार का पूर्ण त्याग करना चारित्र है। पुण्य-पाप दोनों आस्रव के द्वार हैं। दोनों से रहित उत्तम यतियों के आत्मानुभव में लीन रहने से चिदानन्द चैतन्य की भावना करने से संवर होता है।

बन्धुओ! सपेरे को आप लोगों ने देखा होगा? जी हाँ। वह सर्प को किस कला से पकड़ता है जानते हैं? सर्प कभी सीधा पकड़ में नहीं आता। उसको पकड़ने के लिए सपेरे का पुरुषार्थ बहुत प्रबल होता है। सपेरा सबसे पहले बीन बजाता है अपने मधुर गान से सर्प को जगाता है, बीन की आवाज सुनते ही सर्प जहाँ भी हो बिल से बाहर निकल आता है। बीन की कर्णप्रिय आवाज में वह इतना मस्त हो जाता है कि यदि उसे कोई बाधा करता है तो वह उसे तुरन्त ही काट लेता है पर वह सपेरे को कभी नहीं काटता। कर्णेन्द्रिय की आसक्ति में वह खाना-पीना सब भूल जाता है, बस, इसी समय अवसर पाकर सपेरा उसे पकड़ लेता है और उसके जहरीले दाँत भी तोड़ देता है।

बन्धुओ, इसी प्रकार इस जीव के चारों ओर मिथ्यात्वरूपी महाविषधर सर्प मँडरा रहा है जिसे दूर करना, जिसको पकड़कर निर्विष कर देना वीरों का, निकट भव्यों का ही काम है। भव्यात्मा का कर्त्तव्य है कि वह सम्यक्त्व रूपी बीन बजाकर उसे ऐसे भुलावा में डाले कि वह अपने पास आने का मार्ग ही भूल जावे। पश्चात् धीरे-धीरे उसके जहरीले/अनन्त संसार परिभ्रमण कराने वाले अनन्तानुबंधी आदि दाँतों को विशुद्धि व चारित्र के बल पर उखाड़ फेंके। चारित्र की आराधना में वीतरागता की बीन बजाकर चारित्रमोहरूप विष को भी उगलवा दें, सारा जहर दूर होते ही जीवात्मा का अनन्त संसार का परिभ्रमण छूट जायेगा।

आचार्य कहते हैं–दर्शनमोह यह हलाहल विष है तो चारित्रमोह विष है। एक महाविषधर है तो दूसरा विषधर है। दोनों की शक्ति क्षीण करने के लिये सम्यक्त्व व चारित्र, जिनभक्ति व वीतरागता की बीन जीवन में बजाते रहिये। ये कर्म लुटेरे, ये विषधर क्षणमात्र में वश हो जायेंगे अत: क्या करें?

तातैं जिनवर-कथित तत्त्व-अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजै।।

महानुभावो! जिनेन्द्रकथित तत्त्वों का अभ्यास करो। संशय, विभ्रम मोहरहित हो आत्मा का दर्शन करो, आत्मा में रुचि प्रतीति करो और क्या।

अमृतचन्द्राचार्य के शब्दों पर अमल करें–

अयि! कथमपि मृत्वा, तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि झगिति मूर्त्या, साकमेकत्वमोहम्।।२३, अ.क.।।

आचार्य कहते हैं, हे भाई! तू किसी भी प्रकार कष्ट पाकर अथवा मर-पचकर भी तत्त्वों का कौतूहली होकर इस शरीरादि मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त के लिए पडोसी बन कर आत्मानुभव कर, जिससे शरीरादि से भिन्न जिसका विलास है, ऐसी अपनी आत्मा को सर्वद्रव्यों से पृथक् देखकर तू शरीरादि पुद्गल द्रव्य के साथ एकत्वरूप मोह भाव को शीघ्र ही छोड़ देगा।

शरीरादि परद्रव्य में जब तक राग है तब तक संसार की आग से जले बिना नहीं रह सकते–

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये,
चिर भजै विषय कषाय अब तो त्याग निज पद बेइये।
कहा रच्यो पर पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहे,
अब दौल होऊ सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहे॥

दृष्टि को समीचीन बनाओ– मुनीम बनकर संसार में रहो, सेठ बनकर नहीं, बाला बनकर जीओ, स्त्री बनकर नहीं। मुनीम सारा कार्य करते हुए भी सेठ की सम्पत्ति मेरी नहीं अत: हानि-लाभ में उसे सुख-दुख नहीं होता यही सम्यग्दृष्टि की स्थिति होती है। बाला, मातृघर में रहती हुई भी यह मेरा घर नहीं ऐसा विश्वास कर आसक्त नहीं होती वैसे ही सम्यग्दृष्टि संसार में आसक्त नहीं होता। वेश्या का प्यार धन से होता है, आदमी से नहीं; वैसे ही सम्यग्दृष्टि संसार के सारे कार्य करते हुए भी आत्मा में ही दृष्टि को लगाता हुआ अन्तर्मुखी बना रहता है।

तुलसी जग में यों रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहि।
घी घणा भक्षण करे, तो भी चिकनी नाहि॥

"अरे भाई! मिश्री पर बैठी मक्खी बनो, गुड़ पर बैठी मक्खी कभी मत बनो।" *सम्यग्दृष्टि की आसक्ति मिट जाती है और संयमी की आवश्यकता* घट जाती है, लक्ष्य रखो। मकड़ी का जाला मत बुनो, दो पैर के मनुष्य से चार पैर के पशु बन गये फिर षट्पद वाले भ्रमर और अब ८ पैर वाली मकड़ी बनकर मकडी का जाला बुनकर फँसते जा रहे हो, यह सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य नहीं। मिथ्यात्व भूत-पिशाचरूप महान्धकार है। सम्यक्त्व संवर का प्रथम द्वार है और संवर निर्जरा का अविनाभाव सम्बन्ध है। संसार का आरम्भ जहाँ आस्रव तत्त्व से है वहाँ मोक्ष तत्त्व का आरम्भ संवर तत्त्व से है। संवर तत्त्व का अथवा संवर सहित तप करने का ही अर्थ है 'मिथ्यात्व का अभाव'। उमास्वामी आचार्य ने बन्ध के कारणों में सर्वप्रथम मिथ्यात्त्व को ही लिया–

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा: बन्धहेतव:।

उस मिथ्यात्व के कारण हैं परिवार, परिग्रह, पर्याय और परिणाम, अतः परिवार, पर्याय, परिग्रह में राग का त्याग करो। परिग्रह का परिमाण करो, परिणामों को निर्मल करो। गृहीत अगृहीत मिथ्यात्व को छोड़ो। गृहीत से भी अगृहीत मिथ्यात्व दुःखदायी है। परिवार, पर्याय, परिग्रह में राग यह अगृहीत मिथ्यात्व है। यह अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करा रहा है। ममत्व त्यागो, समय बहुत हो चुका है। अन्त में, अपनी एक बात कहकर वक्तव्य समाप्त करूँगा–

मिथ्यात्व का वमन करो, कषायों का शमन करो,
इन्द्रियों का दमन करो, प्रभु का भजन करो।
आत्मा में रमण करो, स्वरूप में लीन होओ,
संवर की आराधना करो, मुक्ति में वास करो॥

♦ ♦

स्वयं कर्म करोत्यात्मा
स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे,
स्वयं तस्माद्विमुच्यते॥

९

त्रिगुप्ति तैं सहज टरै

जैनशासन वीतरागी सन्तों का अनादि सनातन शासन है। इस शासन की कीर्ति को दिग्-दिगन्त तक विस्तृत करने वाले जैनाचार्यों ने इस शासन की सूक्ष्मता, गहराइयों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए चार अनुयोगरूप साहित्य का सृजन कर महती प्रभावना की है। इसी सन्त परम्परा में शुभचन्द्र नाम के एक महान् आचार्य हुए। आपने ध्यान का महा उपयोगी ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव' लिखा। यह ज्ञानार्णव पथ-विस्मृत जीवों को सत्पथ बताने वाली, मन की चंचलता कैसे दूर हो, इसके अनूठे उपायों का दिग्दर्शन कराने वाली आचार्यश्री की एक अनुपम कृति है। ग्रन्थ में आचार्यदेव लिखते हैं–

यया कर्माणि शीर्यन्ते, बीजभूतानि जन्मनः।
प्रणीता यमिभिः सेयं निर्जरा जीर्णबन्धनैः।।

जिससे संसार के बीजरूप कर्म गल जाते हैं, झड़ जाते हैं, उसे निर्जरा कहते हैं। जैसे सदोष भी सोना अग्नि में तपाने से शुद्ध हो जाता है, वैसे ही कर्मरूपी दोषों से सहित यह जीव तपरूपी अग्नि में तपने से शुद्ध, निर्दोष, कर्मरज रहित हो जाता है। मंगतरायजी लिखते हैं–

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा है सोखनहारी।।
उदय भोग सविपाक-समय पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली।।२०।।
पहली सबके होय, नहीं कुछ सरै काम तेरा।

दूजी करै जु उद्यम करकै, मिटै जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥२१॥

यह निर्जरा सकाम व अकाम दो प्रकार की होती है। अथवा सविपाक अविपाक के भेद से दो भेदरूप अथवा अबुद्धिपूर्वा और कुशलमूला के भेद से दो भेदरूप है। इनमें कर्मों की स्थिति पूरी होने पर कर्मों का क्षरण होना, खिर जाना तो प्रथम अकाम या सविपाक निर्जरा अथवा अबुद्धिपूर्वा निर्जरा है। आम, पनस आदि फलों को माली पाल में रखकर क्रियाविशेष से पकाता है, वैसे ही मुमुक्षु भव्य माली उन कर्मों को जो उदयावलि से बाहर स्थित हैं, तप आदि की विशेष सामर्थ्य से बलपूर्वक असमय में (उदीरणा द्वारा) उदय में लाकर निर्जीर्ण करता है वह अविपाक, सकाम या कुशलमूला निर्जरा है। अविपाक, सकाम और कुशलमूला ये और सविपाक, अकाम व अबुद्धिपूर्वा ये पर्यायवाची नाम हैं।

इनमें पहली सविपाक निर्जरा समस्त प्राणियों के प्रति समय होती रहती है परन्तु इससे जीव का कोई हित नहीं होता तथा दूसरी अविपाक निर्जरा सम्यग्दर्शन सहित तप करने वाले तपस्वियों के ही होती है। **छहढालाकार** लिखते हैं–

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो करम खिपावे, सोई शिवसुख दरशावे॥छ.ढा.॥

अरे भाई! खेत में अनाज कब पकता है? तपने के बाद। तवे पर रोटी पकती है तपने के बाद। सोना कब चमकता है? सोलह ताव तपने के बाद। उद्यान में फल पकता है, तपने के बाद, वैसे ही आत्मा शुद्ध होता है शरीर को तपाने के बाद।

एक पुत्र माँ से बोला–माँ! आज पाँच किलो दूध लाया हूँ, इसे अच्छा गरम कर दीजिये। परन्तु यह बर्तन बहुत सुन्दर है, आज ही खरीदा है, नया है, कीमती है, गर्म करने से खराब हो जायेगा अतः ध्यान रहे कि दूध गर्म करते समय बर्तन गरम नहीं हो पावे।

माँ कहने लगी–बेटा! यह तो असम्भव है। दूध गरम करने से पहले बर्तन तो गरम होगा ही, बिना बर्तन गर्म किये दूध कभी गरम होने वाला नहीं।

बन्धुओ! शरीर सुन्दर सा बर्तन है, इसमें दूधरूपी आत्मा है, उसे कर्मों से मुक्त करने के लिए तपाना है तो पहले शरीर को तपाना ही होगा। शरीर को तापाग्नि पर रखना ही होगा। शरीर को तपाये बिना आत्मा तप नहीं सकता और तपे बिना आत्मा कर्मों से मुक्त हो नहीं सकता। कोई यह विचार करे कि मेरा सुन्दर, कोमल शरीर है मैं इसे जरा भी कष्ट नहीं दूँ और कर्मों की निर्जरा कर मुक्त हो जाऊँ तो यह त्रिकाल मे भी असम्भव है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती जैसे महापुरुषो की भी तप के बिना मुक्ति नही हुई, उन्हें भी अपनी देह को तपाना पडा ''पोषत तो दुख दोष करे अति, शोषत सुख उपजावे।''

आचार्य कार्तिकेय स्वामी लिखते हैं–''निदानरहित, अभिमानरहित, ज्ञानी पुरुष के वैराग्य की भावना से बारह तपों के द्वारा कर्म की निर्जरा होती है।'' आत्मा से कर्मो के एकदेश झरने को निर्जरा कहते हैं। सामान्य निर्जरा तो एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक प्रत्येक जीव के प्रतिसमय हो ही रही है क्योंकि जिन कर्मो का फल भोग लिया जाता है, वे आत्मा से पृथक हो जाते हैं। किन्तु विशेष निर्जरा तप के द्वारा ही होती है।

यह जीव सिद्धराशि के अनन्तवें भाग व अभव्यराशि से अनन्तगुणा इतना अर्थात् एकसमयप्रबद्ध परमाणुओं को प्रतिसमय बाँधता है और इतने ही कर्म परमाणुओं की निर्जरा भी करता है, किन्तु ऐसे उसका संसारभ्रमण कभी मिट नहीं सकता। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती लिखते हैं–यद्यपि यह जीव प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध कर्म परमाणुओ (नाना निषेकों के समूहरूप परमाणुओं) को प्रतिसमय उदय में लाकर खिराता है तथापि तपस्यारूप विशेष प्रयोग, विशेष अतिशय से इससे अधिक समयप्रबद्ध को उदय में लाकर खिरा सकता है–

जीरदि समयपबद्धं पओगदो णेगसमयबद्धं वा।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥५॥ गो.क.कां.॥

यहाँ गाथा में 'पओगदो' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। यह शब्द नियतिवाद, अकर्मण्यवाद, प्रमाद आदि का खण्डन करने वाला, पुरुषार्थ मुक्ति

कसौटी इस सर्वज्ञवाणी का पोषक है। बन्धुओ! संसार में भोगभूमि, देव, नारकी इनके लिए नियति है, निश्चितता है, वहाँ उनके लिए पुरुषार्थ गौण है पर यहाँ कर्मभूमि है। कर्मभूमि का अर्थ ही है पुरुषार्थ करो, तपस्या करो, साधना करो। यहाँ तो जितना करोगे उतना पाओगे, यहाँ हाथ पर हाथ रखकर बैठने या 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे' ऐसा कहने से भी काम नहीं चलेगा। कर्मभूमि में इस मानव देह से जितना कर सकते हो कर लो, उतना ही शीघ्र जीवन को मुक्ति के निकट पहुँचा सकोगे। छहढालाकार लिखते हैं–

कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरे तें।
ज्ञानी के छिनमाहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरै तें।।

'त्रिगुप्ति' मुक्ति का साधकतम पुरुषार्थ है। त्रिगुप्ति की साधना के बिना पूर्ण कर्मनिर्जरा कभी भी नहीं हो सकती। ज्ञानी वही है जो त्रिगुप्ति का साधक है। वही पूर्णकर्मक्षय के लिए योग्य है। तप:शक्ति के प्रभाव से यह जीव कर्म स्थिति का उत्कर्षण, अपकर्षण, उपशम, उदीरणा, संक्रमण आदि करके निर्जरा का द्वार खोलता है। यहाँ प्रश्न खड़ा हो जाता है–कर्मशत्रुओं के आगमन का द्वार तो संवर ने बन्द कर दिया परन्तु घर में बैठे शत्रुओं को कौन निकाले? कैसे निकाले? एक समय की बात बताता हूँ–एक व्यक्ति व्यावसायिक कार्य के लिए घर छोड़ बाहर गाँव गया। उसका काम नहीं हुआ अत: ४-५ दिनों तक उसकी आँखों में नींद नहीं। अब अचानक कार्य होते ही घर आया। पत्नी से बोला–आज मेरा कार्य हो गया, अब मुझे गहरी नींद आ रही है। किसी प्रकार का शोर नहीं करना, मुझे चैन की नींद सोने देना, बच्चों चुप रहना। पत्नी कहने लगी–अजी! एक बात सुनिये–अपने घर से जब से आप गये हैं तब से रोज एक व्यक्ति (भूत) आता है और सबको परेशान करता है परन्तु दिखाई नहीं देता। वह कई दिनों का थका व्यक्ति क्या कहता है? अरे! यह क्या कह रही हो मेरी तो सारी नींद ही उड़ गई। विचार कीजिये कई दिनों का परेशान व्यक्ति भी कहता है–देखता हूँ मैं, वह कौन है सताने वाला? बस, कटिबद्ध हो गया, आज उसे भगाता हूँ। नींद उड़ गई, भूत भगा दिया और चैन की नींद सो गया।

पर हमारी निद्रा कितनी निराली है ! एक भूत नहीं आठ-आठ और भूत का परिवार देखो तो १४८ भूत हम पर सवार हो नचा रहे हैं और हम मोह की नींद में बेहोश होकर नाच रहे हैं, पर भूतों को भगाने के लिए कोई पुरुषार्थ करना नहीं चाहते। आश्चर्य है कि कैसी गहल निद्रा है कि एक समय में अनन्तानन्त पुद्गल कार्माण वर्गणायें कर्मरूप में परिणत होकर आत्मा के प्रदेशों पर हावी हो अपनी सत्ता जमा रही है और हम राग-द्वेष आदि विभाव परिणति से युक्त होकर अपने शत्रुओं को निमंत्रण देते चले आ रहे हैं। आश्चर्य तो ऐसा है कि कुछ जीव तो ऐसे हैं जो अपने शत्रुओं को जानते ही नहीं हैं, वे अज्ञानी हैं जो शत्रु-मित्र का भेद नहीं जानते, स्व-पर को नहीं जानते। पर आप लोग तो सब ज्ञानी हैं, शत्रु-मित्र कौन है समझ भी गये हो। यहाँ आपके नगर का एक छोटा बालक भी ज्ञानी बन चुका है। यह कैसे? मैं आज सुबह ५ वर्ष के बालक से बोला—बेटा ! क्रोध शत्रु है या मित्र? वह बोला—शत्रु ! बेटा ! क्रोध अच्छा है या बुरा? बुरा। अब बताइये जो जान-बूझकर भी अन्धा बनता है, उसके लिए क्या इलाज हो सकता है?

अंधा व्यक्ति टार्च-लालटेन हाथ में लेकर कुए में गिर जावे उसका कोई विचार नहीं किन्तु जो दोनों आँखों वाला व्यक्ति हाथ में टार्च-लालटेन लेकर भी कुए में गिर जावे तो उसको क्या कहा जावे।

ज्ञानदीप तप तैल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, बैठे पूरब चोर॥

हे भाई ! ज्ञानरूपी दीपक लो, उसमें बारह तपरूपी तैल भरो तथा उस दीप के प्रकाश से आत्मा के भीतर अनादिकाल से बैठे राग-द्वेष-मोह आदि बडे-बड़े चोरों की खोज कर एक-एक को बाहर निकालो। इसके बिना ये महाचोर सहजता में निकलने वाले नहीं हैं। पूज्यपाद स्वामी से शिष्य पूछता है—प्रभो ! ज्ञान का फल क्या है? उत्तर देते हुए सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं—''ज्ञानस्य फलं उपेक्षा, अज्ञानहानिर्वा।'' ज्ञान का फल है उपेक्षा बुद्धि, माध्यस्थ्य भाव, चारित्र की साधना तथा अज्ञान की हानि। चारित्र धारण कियेबिना पूर्ण अज्ञान का नाश हो नहीं सकता व सहज स्वाभाविक ज्ञान केवलज्ञान की प्राप्ति भी हो नहीं सकती।

संसार में श्रुतज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक विद्यालय हैं पर आज तक अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए किसी विद्यालय की स्थापना नहीं हुई क्यों? अवधि, मन:पर्यय व केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए एकमात्र चारित्र ही महाविद्यालय है। जैसे संवर के लिए व्रत, समिति आदि साधकतम करण हैं उसी प्रकार केवलज्ञान के लिए चारित्र साधकतम करण है व 'तप' निर्जरा का साधकतम करण है–'तपसा निर्जरा' तप से कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा–निर् उपसर्ग पूर्वक जर् धातु से निर्जरा शब्द बना है, जिसका अर्थ हुआ निर्जरम् या झरना, छूटना, मुक्त होना, क्रम-क्रम से खिरना आदि। मोक्षमार्ग में निर्जरा होने की बात नहीं निर्जरा करने की बात है। जो निर्जरा उद्यमपूर्वक, तप व चारित्र की आराधनापूर्वक की जाती है उसी निर्जरा का यहाँ महत्त्व है। जो निर्जरा प्रतिक्षण हो रही वह गजस्नानवत् निरर्थक है। जिस प्रकार हाथी तालाब, समुद्र या नदी मे जाकर स्नान करता है दूसरे ही समय किनारे पर आकर धूल से अपने शरीर को धूसरित करता है, इसी प्रकार अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि जीव कुतप आदि के द्वारा कर्मों को खिराते हैं पर कर्मों के आने के मूलद्वार आस्रव को बन्द नहीं करते। आप लोग भी ऐसा करते हैं या नहीं ? दशलक्षण पर्व में २-४-५-१० उपवास, एकाशन आदि करते हैं और पर्व पूरा होते ही बाजार के चाट, जलेबी, रबड़ी, मिठाई, अभक्ष्य पदार्थो का सेवन करते हैं और भी देखिये, एक बस दिल्ली से मथुरा की ओर रवाना हुई। यात्री बीच के स्टेशनो पर उतरने लगे। आगे के स्टेशन के लिए यात्री चढने लगे। ऐसी स्थिति में उतरने वाले और चढने वाले दोनों की सख्या बराबर होने से बेलेंस पूर्ववत् ही बना रहा, उसी प्रकार इधर त्याग, उधर ग्रहण यानी गजस्नानवत् होने वाली निर्जरा से जीव का प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

जैसे किसी मनुष्य के अजीर्ण दोष से मल का सचय पेट में हो जाने पर वह मनुष्य आहार का त्याग करके मलपाचक, अग्नि उद्दीपक हरड आदि औषध को ग्रहण करता है और मलपाचन होते ही अजीर्ण दोष दूर होने पर वह सुखी हो जाता है उसी प्रकार भव्यजीव भी अजीर्ण उत्पादक आहार स्थानीय मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अज्ञान आदि भावों से कर्ममल का संचय होने पर मिथ्यात्व, राग आदि को छोडकर औषध स्थानीय साम्यभाव के द्वारा ध्यान अग्नि को उद्दीप्त

करने वाली जिनवचनरूपी औषध का सेवन कर कर्मरूपी मल का निर्जरण कर सुखी होता है तथा भोगादि की वांछा का त्याग कर संवेग व वैराग्यरूप परिणामों के साथ रहता है और पश्चात् अपने आत्मा के अनुभव के बल से निर्जरारूपी रथ पर आरूढ़ हो मुक्तिमार्ग में अग्रसर होता है।

जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ।।द्र.सं. ।।३६ ।।

आत्मा के जिस परिणामरूप भाव से कर्मरूपी पुद्गल फल देकर नष्ट हो जाते हैं वह तो भाव निर्जरा है और तप से कर्मरूप पुद्गलों का क्षय हो जाना द्रव्य निर्जरा है। अर्थात् निर्विकार चैतन्य चमत्कार के अनुभव से उत्पन्न जो सहज आनन्द स्वभाव सुखामृत के आस्वाद से उत्पन्न भावों से कर्मरूपी पुद्गल फल देकर क्षय को प्राप्त होते हैं वह भाव निर्जरा है व कर्म का क्षरण द्रव्य निर्जरा है।

तप के द्वारा कर्म की निर्जरा होती है परन्तु वह तप भी समीचीन हो, सम्यक् हो–''संवर सहित करो तप प्राणी'' जो तप संवरपूर्वक, संयमपूर्वक हो, भेदज्ञानपूर्वक हो वही संवर की कोटि में आयेगा। जिस प्रकार एक व्यक्ति खान से निकले स्वर्ण पाषाण को लेकर बाजार में बेचने चला, सबने उसकी कीमत मात्र पाषाणवत् आँकी। तुरन्त घर आकर उसने उस पर एक से लेकर चौदह तक ताव दे डाले, अब वह चमकता हुआ सोना लेकर बाजार में पहुँचा किन्तु अभी भी उसकी सही कीमत देने वाला उसे कोई नहीं मिला। वह पुन: लौट आया, सोने को पुन: ताव पर चढ़ाया। पूर्ण सोलह ताव पाते ही वह झिलमिलाता स्वर्ण लेकर बाजार में पहुँचा। सब व्यापारी उसकी उचित कीमत आँकने लगे। उसने उचित कीमत पर बेच दिया। खोट निकलते ही कीमती बन गया। यही स्थिति जीवात्मा की है। ''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' निश्चय से प्रत्येक आत्मा सिद्ध समान शुद्ध परमात्मा है, परन्तु अनादिकालीन कर्म कालिमा से लिप्त हुआ अशुद्ध हो रहा है। ज्ञानी भव्यात्मा बारह तप व चार आराधनारूपी सोलह ताव देकर इस आत्मा को सहजानन्दी केवलज्ञानी सुन्दर गुणरूपी रत्नों का खजाना चमकता हुआ स्वर्ण बना लेता है। ''तपों से तपाओ, ज्ञानावरणादि मलों को

जलाओ।" स्वर्णपाषाण में से जैसे-जैसे मल हटता जाता है, स्वर्ण निखरता जाता है, उसी तरह १२ तप व ४ आराधनारूपी तावों को पाते हुए यह आत्मा गुण श्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा करता हुआ परमात्मा बन जाता है।

वह तप क्या है जो निर्जरा का हेतु है, तो कहते हैं–"तप्यते इति तप:" जो तपा जाय उसे तप कहते हैं। तप का विरोधी क्या होता है? पत। जिसका अर्थ है गिरना। पेड़ से पत्ता गिरता है वह आवाज करता है 'पत'। गिरा हुआ पत्ता पुन: पेड़ पर लगता है क्या? नहीं। पत् का अर्थ है पतन। जो पतन से बचाता है वह तप है अथवा जिसको करने वाले जीव का संसार में पतन नहीं होता है वह तप है।

यह तप अन्तरंग व बहिरंग के भेद से दो प्रकार का है–दोनों ही तप मोक्षमार्ग में कल्याणकारी हैं। एक साधन है दूसरा साध्य। स्वयंभू स्तोत्र में श्री समन्तभद्रस्वामी लिखते हैं–

बाह्यं तप: परमदुश्चरमाचरंस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपस: परिवृंहणार्थम्।

"हे कुन्थुनाथ भगवान्! आपने अंतरंग तप की वृद्धि के लिए अत्यन्त कठोर बाह्य तप अनशनादि का आचरण किया था।" अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन तथा कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय और व्युत्सर्ग ये छह आभ्यन्तर तप हैं। बाह्य तप यदि अंतरंग तपों की वृद्धि के लिए तपे जाते हैं, तो वे सुतप कहलाते हैं अन्यथा वे कायक्लेश मात्र हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि महान् तीर्थंकर भी दोनों प्रकार के तपों का आचरण कर संवर व निर्जरा के मार्ग में अग्रसर हुए हैं।

बन्धुओ! युद्धक्षेत्र में/रणभूमि में युद्ध जीतने वाला एक सैनिक भी बारह तपों को तपता है तब कहीं शत्रु को पराजित कर विजयश्री प्राप्त करता है। आचार्यदेव कहते हैं यह संसार एक कुरुक्षेत्र है। अष्टकर्मरूप शत्रुओं से भयानक बना हुआ है। युद्धक्षेत्र में सैनिक को कई समय ऐसे आते हैं जब भोजन नहीं मिलता (अनशन तप)। सभी सैनिकों को हमेशा पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता (ऊनोदर)। सैनिक कभी पहाड़ पर, कभी चट्टानों पर, कभी जहाजों से गिराया

हुआ भोजन करते हैं (वृत्तिपरिसंख्यान)। छहों रस युक्त सरस भोजन उन्हें कहाँ मिलता है, कभी घी है तो नमक नहीं, नमक है तो शक्कर नहीं, प्राय: रूखा-सूखा जैसा मिला भोजन करते हैं (रसपरित्याग)। ये सदैव ऊँची-नीची-कंकरीली भूमि पर अल्पनिद्रा लेते हैं (विविक्त शय्यासन)। ये सदैव ठंडी-गर्मी की बाधाओं को सहते ही हैं (काय-क्लेश)। सैनिक किसी प्रकार गलती करे तो सेनापति दण्ड देता है (प्रायश्चित्त)। सैनिक सदा सेनापति, शिक्षक आदि का सम्मान-आदर करते हैं, उनके देशरक्षा के भाव (विनय), किसी को भी चोट आदि आने पर सैनिक आपस में सेवा करते हैं (वैयावृत्य)। रणकौशल का निरन्तर अभ्यास करते हैं (स्वाध्याय)। शरीर, स्त्री, पुत्र, मकान, धन-दौलत आदि में ममत्व का त्याग करते हैं (व्युत्सर्ग) तथा एकाग्रचित्त होकर शत्रु पर वार करते हैं (ध्यान)। इस प्रकार तपस्वी योद्धा विजेता ही आनन्दित होता है। यह तो दृष्टान्त हुआ। इसी प्रकार मुमुक्षु जीव भी इन तपों को तपकर अन्तर्बाह्य शत्रुओं को परास्त कर सिद्धालय के वासी हो जाते हैं।

अनशन का अर्थ है चारों प्रकार के आहार का त्याग। भगवान् आदिनाथ व भीम केवली ने छह माह का अनशन तप किया था और बाहुबली भगवान् ने एक वर्ष का उत्तम अनशन तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया। ऊनोदर का अर्थ है–"भूख से कम खाना" जघन्य एक दो ग्रास कम खाना या उत्कृष्ट एक दो ग्रास मात्र भोजन लेना, सत्य है भोजन की ओर दृष्टि न दे उपवास करना कथंचित् सरल है पर सामने भरा हुआ सुन्दर मिष्ट-इष्ट भोजन का थाल छोड़कर आना कठिन तप है। इसमें इच्छानिरोध विशेष रूप से होता है। आहार को जाते हुए कठिन नियम आदि लेना वृत्ति परिसंख्यान है–पांडवों में भीम महातपस्वी थे। उन्होंने नियम लिया था कि कोई भी भाले की नोक पर भोजन रखकर देगा तो लूँगा अन्यथा नहीं, छह माह तक उनका यह कठोर नियम नहीं मिला था, आज भी वर्तमान के साधुगण आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्य महावीरकीर्तिजी, आचार्य धर्मसागरजी, आचार्य गुरुदेव विमलसागरजी आदि ऐसे कठोर नियम लेते थे कि ८-८ उपवास सहज ही हो जाते थे पर वे किंचित् खेद नहीं मानते थे। रसपरित्याग का अर्थ है–छह रस दूध, दही, तेल, घी, नमक व मीठा इन सबका या २-३ रसों का यावज्जीवन या काल की मर्यादा से त्याग करना।

मुनिराज प्राय: सरस-नीरस दोनों प्रकार के आहार लेते हुए भी आसक्ति के त्यागी हैं। ऊँची-नीची, पथरीली भूमि हो या कंकरीली भूमि आदि पर एकान्त स्थान में शयन विविक्त शय्यासन नामक तप है तथा ठंडी-गर्मी-वर्षा की बाधाओं को सतत सहन करना यह कायक्लेश तप है।

एक समय की वार्ता है–आचार्यश्री के पास एक महिला पहुँची और कहने लगी–प्रभो! मेरा मन बहुत चञ्चल है। प्रतिदिन नई-नई वस्तुएँ खाने को माँगता है। इसको वश करने का कोई उपाय बताइये। आचार्यदेव कहने लगे–बाई! मन तो बडा चञ्चल है हम लोगों को भी नहीं छोडता है। मैं अपनी बात बताता हूँ। आचार्यश्री–एक दिन मुझे मेरे मन ने कहा–कल आहार में मीठा खाना है। मैंने ध्यान नहीं दिया। शाम हुई, रात हुई, सुबह भी वही बात, मीठा खाना है। मैं शुद्धि को चला गया। मन नहीं माना– वही बात, मीठा खाना है। अब क्या करूँ, मैं आहार के लिए जाने के समय जिनेन्द्रदेव के पास पहुँचा और भगवान् के सामने कठोर प्रतिज्ञा की–''आज आहार में मीठा का त्याग।'' मन तडप गया, उसके बाद उसने मुझे कभी परेशान नहीं किया।

मन मतंग माने नहीं जब तक खता न खाय।
जैसे विधवा स्त्री, गर्भ रहे पछताय॥

बाई! मन के अनुसार नहीं चलो। मन कहे वह न करो। मन अपने आप वश हो जायेगा। मन के राजा बनो, मन को राजा नहीं बनाओ। ये छहों अन्तरंग तप इन्द्रिय और मन का निरोध करने में सम्बल हैं और संवर-निर्जरा के कारण हैं।

मुनिराज सर्वदेश व श्रावक एकदेश चारित्र की आराधना, पालना करतेहुए १३ चरण, १३ करण का पालन करते हैं, इनमें प्रमादजन्य दोष लगने पर पश्चात्ताप करते हैं; निंदा, गर्हा व प्रायश्चित्त के द्वारा व्रतों की शुद्धि करते हैं। आचार्यों की नीति है–''पाप होना कोई विशेष बात नहीं पर पाप को पाप नहीं मानना महापाप है। गलती हो जाना मानव जीवन में कोई बड़ी बात नहीं पर गलती को गलती नहीं मानना, गलती का पश्चाताप नहीं करना महापाप है। प्रायश्चित्त अन्तरंग तप है क्योंकि गलती के प्रति अन्तरंग में जब तक ग्लानि

नहीं होगी, दोषों के प्रति हृदय में पश्चाताप नहीं होगा तब तक प्रायश्चित्त तप नहीं हो सकता।

पूज्य पञ्चपरमेष्ठियों में, लौकिक में माता-पिता आदि में विनय करना विनय तप है। यह तप भी अन्तरंग विशुद्धि या निर्मलता के बिना नहीं होता। गुरुओं, पूज्य पुरुषों के आने पर उठना, उनके चलने पर पीछे-पीछे चलना, उनके अनुकूल वृत्ति रखना यह सब विनय तप है। एक दिन मित्र ने कहा– ''भैया! तुम्हारी माँ मरणासन्न है। एक बार उन्हें नमस्कार कर आशीर्वाद लेलो। समय का क्या भरोसा?'' उस बालक ने अपना सिर पत्थर से फोड़ लिया, मर गया पर सिर झुका नहीं सका। अन्तरंग कषाय की मन्दता के बिना यह तप नहीं होता है–''विणओ मोक्खद्दारो'' शरीर की चेष्टा या अन्य द्रव्यादि के द्वारा दूसरों की सेवा-सुश्रूषा करना वैयावृत्य तप है। अन्तरंग में ग्लानि जीते बिना, दूसरों की सेवा कभी होती नहीं अतः इसे भी अन्तरंग तप कहा।

आलस्य का त्यागकर ज्ञानाराधना करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय को अन्तरंग तप कहा। कारण, स्वाध्याय करने से तत्काल अज्ञान की हानि, परिणाम विशुद्धि व असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा होती है। पञ्चम काल में स्वाध्याय को आचार्यों ने परम तप कहा। मैं राजा हूँ, ज्ञानी हूँ, विद्वान् हूँ इत्यादि विकल्प भाव अहंकार हैं और मेरा घर, मेरा परिवार आदि रूप विकल्प ममकार हैं। इन अहंकार ममकार का त्याग व्युत्सर्ग तप है। इसके बल से जीव विभाव परिणामों का क्षय कर निर्जरा को प्राप्त करता है।

निर्जरा का महत्त्वपूर्ण अंग ध्यान है। तपों में महातप ध्यान है। ध्यान अशुभ, शुभ या संसार व मोक्ष के हेतुरूप से दो प्रकार के हैं। इनमें धर्म व शुक्लध्यान मोक्ष हेतु हैं। शुभ हैं। वर्तमान में जीव धर्म्यध्यान के द्वारा कर्मों की निर्जरा कर सकता है। धर्म्यध्यान के आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक-विचय व संस्थानविचय के भेद से चार भेद हैं–

पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्मचिंतनं।
रूपस्थं शुद्धचिद्रूपं, रूपातीतं निरञ्जनं॥

पञ्चपरमेष्ठीवाचक मन्त्रों का चिन्तन करना पदस्थ ध्यान है। अपनी

आत्मा का चिन्तन पिण्डस्थ ध्यान है। शुद्ध चिद्रूप में स्थित अरहंत परमेष्ठी का ध्यान रूपस्थ ध्यान है तथा रूप रहित सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान रूपातीत ध्यान है। इनमें पदस्थ ध्यान–

पणतीस सोल छप्पण चदु-दुगमेगं च जबह झाएह।
परमेट्ठीवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण॥४९ द्र.सं.॥

परमेष्ठीवाचक ३५, १६, ६, ५, ४, २ और १ अक्षर वाले मन्त्रों का जाप करें–३५ अक्षरी–णमोकार मन्त्र है। ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नमः १६ अक्षरी मंत्र है, ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः ६ अक्षरी मत्र है। अ सि आ उ सा नमः ५ अक्षरी मंत्र है, ॐ ह्रीं अर्हं नमः ४ अक्षरी मंत्र है। ॐ ह्रीं नमः या अर्ह नमः दो अक्षरी मंत्र है तथा ॐ नमः या ह्रीं नमः एकाक्षरी मंत्र हैं। इसी प्रकार विविध विधियों से णमोकार मंत्र आदि का जाप्य करना पदस्थ ध्यान है।

पिण्ड याने शरीर, स्थ याने विराजमान, देह देवालय में विराजमान अनन्त गुणो का पुञ्ज भगवान् आत्मा का चिन्तन पिण्डस्थ ध्यान है।

तनु जिनमंदिर मन कमलासन।
त्यावरि चिन्मयतुंग, भजजिन कमल यज॥

शरीर एक जिनालय है, मनरूपी कमल एक सिंहासन है, उस कमलासन पर विशाल, अनन्त गुणों का स्वामी असंख्यात प्रदेशी आत्मारूप भगवन्त विराजमान है, उसी का ध्यान करो।

समवसरण लक्ष्मी की शोभा से सम्पन्न अर्हन्तदेव का उनके अन्तरंग अनन्त चतुष्टयरूपी महागुणों से ४६ मूलगुणों से द्रव्य-गुण-पर्याय से चिन्तन करना रूपस्थ ध्यान है तथा ८ कर्म रहित लोकाग्रवासी सिद्धों का ध्यान रूपातीत ध्यान है। प्रारम्भिक अवस्था में पदस्थ ध्यान की सिद्धि के लिए ॐ का ध्यान करना चाहिए।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

बिन्दु सहित ॐकार का ध्यान नित्य ही योगीजन करते हैं। ॐ का ध्यान समस्त इष्ट की सिद्धि करने वाला मुक्तिप्रदाता है। ऐसे ॐकार के लिए नमस्कार हो।

विश्व के सभी धर्मों ने ॐ को एकमत से स्वीकार किया है। यह सार्वभौम मन्त्र है। जैनदर्शन में इसे पञ्चपरमेष्ठीवाचक मन्त्र कहा है–

अरिहंता असरीरा आयरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खर णिप्पण्णो ॐकारो पंच परमेट्ठी॥

अरिहंत का प्रथम अक्षर अ, सिद्ध अशरीरी का प्रथम अ, आचार्य का प्रथम अक्षर आ, उपाध्याय का प्रथम अक्षर उ और साधु का पर्यायवाची शब्द मुनि का प्रथम अक्षर म्=अ+अ+आ+उ+म्=ओम्। इस प्रकार यह पञ्चपरमेष्ठीवाचक मन्त्र सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार विधिवत् धर्म्यध्यान का अभ्यास कर योगीजन शुक्लध्यान के द्वारा यथाख्यात चारित्र के बल से घातिया कर्मों का क्षय व परमयथाख्यात चारित्र के बल से अघातिया कर्मों की भी पूर्ण निर्जरा कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं। धर्म्यध्यान व शुक्लध्यान में धर्म्यध्यान भोथरे चाकू की तरह संख्यात असंख्यात गुणी निर्जरा का हेतु है तथा शुक्लध्यान तीक्ष्ण चाकू की तरह क्षणमात्र में असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा का हेतु है।

यदि कोई जीव उपवास/अनशन आदि तो बहुत करे पर पित्त प्रकोप आदि होने से अन्तरंग तप को सिद्ध न कर सके तो बाह्य तप निर्जरा का हेतु नहीं बन पाएगा। जितना भी बाह्य तप है वह अन्तरंग तप की वृद्धि के लिए ही किया जाता है। अनशन आदि करने के बाद ध्यान अध्ययन आदि की क्षमता नहीं है तो आहार करके भी अन्तरंग तप ध्यान, स्वाध्याय आदि कर लेना उत्तम है। कोई अन्तरंग तप को महत्त्व दे और बाह्य तप को गौण कर दे तो वह भी ठीक नहीं है। ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। भेदविज्ञान की सिद्धि में दोनों ही तप आवश्यक हैं।

जे तपसूरा संजमधीरा, सिद्धिवधू अणुराईया।
रयणत्तय रंजिय कम्मह गंजिय ते रिसिवर मम झाईया॥

उमास्वामी आचार्य ने निर्जरा के दस स्थान बताये – सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्त-वियोजक-दर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिना: क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जरा: ॥४५॥९॥

परिणामों की विशुद्धि के निमित्त से सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धीवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, चारित्रमोह उपशमक, उपशान्त मोह, चारित्र मोह क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यगुण निर्जरा वाले होते हैं। प्रथम उपशम सम्यक्त्व उत्पत्ति के पूर्व सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव अध:करण, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणामों के द्वारा आयु के सिवा ७ कर्मों की गुण श्रेणि निर्जरा करता है, उससे असंयत सम्यग्दृष्टि के असंख्यात गुणश्रेणि निर्जरा होती है। तात्पर्य यह कि जिन स्थानों में विशुद्धि अधिक होती है उनमें निर्जरा अधिक होती है। उमास्वामी आचार्य के अनुसार १० व कार्तिकेय स्वामी के अनुसार निर्जरा के ११ स्थान होते हैं।

एक श्रावक मुझसे पूछने लगा–महाराजजी! सम्यग्दृष्टि आरम्भादि दोषों से सहित है, भोगों में आसक्त है उसे निर्जरा कैसे? मैंने कहा–भाई! सम्यग्दृष्टि की छह आवश्यक क्रियाएँ ही उसका तप है। "देवपूजागुरूपास्तिस्वाध्याय संयम तप और दान।" सम्यग्दृष्टि षट् आवश्यक क्रिया सम्बन्धी आरम्भ करते हुए मात्र कर्मों का बन्धक ही नहीं, उसकी उन क्रियाओं में भी संवर निर्जरा निहित है। कैसे?

सम्यग्दृष्टि जीव जब विषयों में झंपापात करता है उस समय अनन्त संसार की कारणभूत अनन्तानुबंधी आदि सात प्रकृतियों का बन्ध नहीं होने से वह दर्शनमोह की अपेक्षा अबंधक है। सम्यग्दृष्टि जीव जिस समय जिनदर्शन, पूजन स्तुति में तन्मय होता है वह शुभ भावों से अशुभ कर्मों की असंख्यात गुण श्रेणीरूप से निर्जरा करता है। वह वीतराग जिनबिम्ब जिनमुद्रा के दर्शन मात्र से विशुद्धि के बल से पाप प्रकृतियों के अनुभाग को क्षीण कर देता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक वीतरागता के दर्पण में निजरूप का अवलोकन करता है, विचार करता है "सोऽहं" वह ही मैं हूँ। अपने स्वरूप की ओर दृष्टिपात करता है "कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ" सोऽहं से अहं की

उपासना में तन्मय हो, उपास्य उपासक के भेद में अभेद की ओर पहुँच जाता है, बस निर्जरा प्रारंभ हो जाती है। अविनाशी पद की प्राप्ति के लिए प्राथमिक भूमिका में षट् आवश्यकों की जीवन में आवश्यकता है। कर्मों का स्थिति खण्डन, अनुभाग खण्डन शुभ भावों से होता है। प्रकृति, प्रदेश बंध से संसारवृद्धि नहीं होती, अनुभाग व स्थिति बन्ध ही संसार के मूल हैं। ३ शुभ आयु को छोड़कर १४५ कर्म प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अशुभ परिणामों से होता है।

शुभभाव, पूजा आदि के भावों को तो बन्ध के कारण मानना और गृहकार्यों में आसक्त रहना यह कहाँ का तत्त्वज्ञान है। जिस आत्मा में सच्ची निर्जरा की लहर जागीं है वह पूजा आदि के समय को कभी टालता नहीं, अपने आवश्यकों की कभी हानि नहीं करता। षट् आवश्यक क्रिया करते हुए श्रावक जितना-जितना निराकुल होता है, रागांश से छूटता है उतने-उतने अंश से निर्जरा होती है। जिनभक्ति, दर्शन, पूजन, स्तवन आदि शुभभावों से तात्कालिक बन्ध की अपेक्षा निर्जरा अधिक होती है।

अधिक न कहकर, अन्त में यही कहूँगा मकान बनाने में समय लगता है उसे नष्ट करने में नहीं, संसार बसाने में हमें अनन्त काल लग गया है पर इसे नाश करने के लिए मात्र अन्तर्मुहूर्त का काल चाहिए। जैसे तृण की आग बडे-बड़े मकानों को क्षण-भर में ध्वस्त कर देती है वैसे ही ध्यानरूपी अग्नि अनन्त काल से बँधे कर्मों को क्षणभर में जलाकर आत्मा को शुद्ध विशुद्ध परमात्मा बना देती है। घबराओ नहीं, कर्मों को बाँधना या खोलना अपने परिणामों पर निर्भर है। अपनी मंजिल अपने हाथ में है, पुण्य से न डरें, पुण्य क्रियाओं को, षट् आवश्यकों को न छोड़ें, ये ही परम्परा से सर्वकर्मक्षय के हेतु हैं। गुणभद्र आचार्य लिखते हैं–

पुण्यं कुरुष्व कृतपुण्यमनीदृशोऽपि,
नोपद्रवोऽभिभवति प्रभवेच्च भूत्यै।
संतापयञ्जगदशेषमशीतरश्मिः ,
पद्मेषु पश्य विदधाति विकाशलक्ष्मीम् ॥३१॥आ.॥

हे भव्यात्माओ! पुण्य करो क्योंकि पुण्यात्मा जीवों पर असाधारण

उपद्रव भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकते, इतना ही नहीं बड़े-बड़े उपद्रव उपसर्ग भी उनके लिए निर्जरा के कारण बन जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य दूसरों को संतापकारक होने पर भी कमलों को प्रफुल्लित ही करता है उसी प्रकार पुण्यात्मा के उपद्रव भी निर्जरा के हेतु बन जाते हैं। जो अग्नि प्राणघातक है वही सीता के लिए जलरूप परिणत हो गई थी। अत: सुखाभिलाषी भव्य जीवों को सदा पुण्य करना चाहिए।

प्रदर्शन नहीं दर्शन की ओर बढ़ो। प्राचीनकाल में घर-घर में चैत्यालय होते थे। श्रावक उठते ही जिनदर्शन करता था, पूजा-अभिषेक करता था। आजकल घर-घर में शौचालय बन गये हैं। सारे कार्य उल्टे हो गये हैं। उठकर बेड़ टी, शौचालय शुद्धि, पादत्राण शुद्धि, दंत शुद्धि, शरीर शुद्धि, टी.वी., पेपर बस यही आवश्यक रह गये। अशुभ की प्रवृत्ति बढ़ रही है। आस्रव को छोड़ो नहीं, निर्जरा की भावना करो, कैसे होगा–

बोये पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय।

बबूल का पेड़ बोकर आम की इच्छा करना व्यर्थ ही है। आचार्य **गुणभद्रस्वामी आत्मानुशासन** में लिखते हैं–

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवा:।
फलं नेच्छन्ति पापस्य पापं कुर्वन्ति यत्नत:।।

मानव पुण्य का फल तो चाहता है, परन्तु पुण्य करने की इच्छा नहीं करता और पाप के फल को तो नहीं चाहता है पर पाप प्रयत्नपूर्वक करता है।

कषायों की मन्दता, पूर्वकृत कर्मों को शान्त भाव से भोगना, उपसर्ग परीषह मे समता परिणाम, साम्यभाव, तत्त्वविचार, भेदविज्ञान, इन्द्रिय संयम-प्राणिसंयम, स्वनिन्दा, परप्रशंसा, स्वगुणों का आच्छादन, परगुणों का प्रकाशन, परमवीतरागभाव, वीतरागता आदि ये सभी परिणाम साधु व श्रावक के परम निर्जरा के कारण हैं। भव्यात्माओ, बार-बार आत्म तत्त्व की ओर लक्ष्य दो उसे पहचानने का पुरुषार्थ करो ये परिणाम ही निर्जरा के कारण हैं।

♦ ♦

१०

लोक मांहि बिन समता

जैनदर्शन में कार्तिकेय स्वामी नामक एक महानाचार्य हो गये। उन्होंने वैराग्य की स्थिरता व साम्यभाव की सिद्धि के लिए 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' नामक सुन्दर ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा-

दीसंति जत्थ अत्था जीवादीया स भण्णए लोओ।
तस्स सिहरम्मि सिद्धा-अंत-विहीणा विरायंते ॥१२१ ॥१० ॥

लोक शब्द लुक् धातु से बना है जिसका अर्थ है देखना। जितने क्षेत्र में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल देखे जाते हैं, उसे 'लोक' कहते हैं।

धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोकः ॥स.सि. ॥

सर्व आकाश अनन्त प्रदेशी है। उसके बहु मध्य में लोक है। यह असंख्यात प्रदेशी है लोक के ठीक मध्य में मेरुपर्वत है। सुमेरु पर्वत के नीचे गौस्तनाकार आठ प्रदेश स्थित हैं। जिस भाग मे वे प्रदेश स्थित हैं, वही लोक का मध्य है और जो लोक का मध्य है वही आकाश का मध्य है क्योंकि समस्त आकाश के मध्य में लोक स्थित है।

लोक पुरुषाकार है। कोई पुरुष दोनों पैर फैलाकर और दोनों हाथों को कटिप्रदेश के दोनों ओर रखकर यदि खडा हो तो उसका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार लोक का जानना चाहिए। अत: पुरुष का आकार लोक के समान कल्पित करके उसका पूरब-पश्चिम विस्तार इस प्रकार जानना चाहिए-

पञ्जों के अन्तराल में विस्तार	सात राजू
कटिप्रदेश का विस्तार	एक राजू
दोनों हाथों का एक कोनी से दूसरी कोनी तक विस्तार	पाँच राजू
ऊपर शिरोदेश का विस्तार	एक राजू
	= १४ राजू हैं

चौदह राजू ऊँचाई का घन ७×७×७=३४३ राजू है।

लोक अलोक आकाश मांहि थिर निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये षट् द्रव्यनसों मानो ।।बा.भा.मं. ।।

तीनों लोकों में मेरुपर्वत के तल से नीचे सात राजू प्रमाण अधोलोक है और तल से ऊपर सात राजू प्रमाण ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक मेरु प्रमाण है। मेरु कहते हैं–''लोकत्रयं मिनातीति मेरुः'' (रा.वा.पृ. १२७) जो तीनों लोकों का माप करता है, उसे मेरु कहते हैं। मध्यलोक की यह ऊँचाई ऊर्ध्वलोक में सम्मिलित है। अतः ऊर्ध्वलोक की यथार्थ ऊँचाई एक लाख चालीस योजन कम सात राजू बनती है। यह मध्यलोक रत्नप्रभा नामक (अधोलोक की) पृथ्वी पर स्थित है। इस पृथ्वी के नीचे शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा नामक छह पृथिवियाँ हैं। सप्तम पृथ्वी के नीचे १ राजू निगोद स्थान है, जिसे कलकल भूमि कहते हैं। ये सभी पृथिवियाँ घनोदधि, घनवात और तनुवात नामके वातवलयों से वेष्टित हैं। मेरु के नीचे यह सब ७ राजू क्षेत्र अधोलोक कहलाता है तथा मेरु से ऊपर सौधर्मस्वर्ग के ऋजुविमान के तल से लेकर लोक के शिखर पर्यन्त सात राजू क्षेत्र को ऊर्ध्वलोक कहते हैं। मेरुपर्वत की चूलिका और ऋजुविमान में एक बाल मात्र का अन्तर है। सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नव अनुदिश एवं पाँच अनुत्तर तथा सिद्ध शिला ये सब ऊर्ध्वलोक में सम्मिलित हैं।

अथवा लोक के आकार का वर्णन करते हुए आचार्य ब्रह्मदेवसूरिजी ने लिखा–नीचे मुख किये हुए आधे मृदंग के ऊपर पूरा मृदंग रखने पर जो आकार होता है वैसा आकार लोक का है। परन्तु मृदंग गोल है और लोक चौकोर है। अथवा लोक नीचे तो वेत्रासन मोढ़े के आकार/नीचे से चौड़ा, पश्चात् ऊपर-

ऊपर घटता गया है और बीच में झालर जैसा है तथा ऊपर मृदंग के समान अर्थात् दोनों तरफ सँकरा, बीच में चौड़ा है।

इसका कोई न कर्ता हर्ता, अमिट अनादि है।
जीव रु पुद्गल नाचै, यामैं कर्म उपाधि है।।बा.भा.मं.।।
पाप पुण्यसों जीव जगत में नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरे शिर औरन के धरता।
मोहकर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा।
निजपद में थिर होय लोक के शीश करो वासा।।२३।।

अन्य दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि यह लोक महेश्वर का बनाया हुआ है और विष्णु आदि देवता उसे धारण किये हुए हैं। परन्तु जैन आचार्य कहते हैं–

लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुढो सव्वागासवयवो णिच्चो।। त्रिलो.सा.।।४।।

यह लोक अकृत्रिम है, अनादि अनन्त है, स्वभाव से निष्पन्न है। जीव-अजीव द्रव्यों से भरा हुआ है, समस्त आकाश का अङ्ग है और नित्य है। किन्हीं का कथन है ब्रह्मा ने इसे बनाया है और किसी ने इसे धारण किया हुआ है। किसी का कहना है, यह लोक कछुए की पीठ पर या शेषनाग के फण पर ठहरा हुआ है, यह उनका भ्रम है।

श्री **शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णव** ग्रन्थ में लिखते हैं–

अनादिनिधनः सोऽयं स्वयं सिद्धोप्यनश्वरः।
अनीश्वरोऽपि जीवादिपदार्थैः संभृतो भृशम्।।४।।पृ.५१।।

यद्यपि यह लोक अविनाशी, स्वयंसिद्ध, अनादिनिधन है, इसका कोई ईश्वर, स्वामी या कर्त्ता नहीं है तथापि यह जीवादिक पदार्थों से भरा हुआ है।

इस लोक में पापकर्म के फल से जीव अधोलोक में जाता है, पुण्यकर्म के फल से ऊर्ध्वलोक में जाता है। पुण्य-पाप की समानता होने पर मध्यलोक में जन्म लेता है और दोनों का अभाव होने पर सिद्धलोक का वासी बनता है।

अधोलोक में रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं १. खर भाग २. पंक भाग और ३. अब्बहुल भाग। इनमें खर भाग में असुरकुमार जाति के देवों को छोड़कर नव प्रकार के भवनवासी और राक्षसों को छोड़कर सात प्रकार के व्यन्तर जाति के देव रहते हैं। पंक भाग में असुर और राक्षसों का निवास है। यहाँ अधोलोक में देवो के निवासों में ७ करोड़ ७२ लाख अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं।

इस अधोलोक में अब्बहुल भाग से प्रथम नरक का प्रारंभ है। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि सात नरक नीचे-नीचे एक-एक रज्जु प्रमाण आकाश में हैं। इनमें ८४ लाख बिल हैं। इनमें प्रथम नरक में नारकियों की ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ और छः अंगुल प्रमाण है तथा आगे बढ़ती हुई सप्तम पृथ्वी में पाँच सौ धनुष ऊँचाई है। प्रथम नरक में जघन्य आयु दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट एक सागर तथा आगे बढते हुए सप्तम नरक में नारकियों की आयु ३३ सागर प्रमाण है। इन नरकों में तीव्र मिथ्यात्व से युक्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, सरठ, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्री और मनुष्य जन्म लेते हैं। अर्थात् असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्रथम भूमि में, सरठ दूसरे नरक में, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे नरक तक, सिंह पाँचवें नरक तक, स्त्री छठी नरक तक तथा सातवीं पृथ्वी में कर्मभूमि के उत्पन्न हुए मनुष्य और मगरमच्छ ही जा सकते हैं। सातों नरक से आये हुए जीव बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण और चक्रवर्ती संज्ञक शलाका पुरुष नहीं होते तथा चौथे नरक से आये जीव तीर्थंकर नहीं होते, पाँचवें नरक से आये जीव चरम शरीरी, छठे नरक से आये भावलिंगी मुनि और सातवें से आये जीव श्रावक नहीं होते है। पञ्चेन्द्रिय विषयों मे लम्पट मिथ्यादृष्टि, मायाचारी निजात्मानंद की भावना रहित जीव नरकायु का बन्ध करते हैं।

इन नरको मे पाँचवीं पृथ्वी के ऊपरी भाग तक उष्णता का दुख है और पाँचवीं पृथ्वी के निचले भाग से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त शीतजन्य भयानक दुख हैं तथा–"नारकानित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियासुरोदीरित-दुःखाश्च" ॥३॥त.सू.॥ नारकी नित्य अशुभतर लेश्या परिणाम, अशुभतर शरीर छेदन भेदन आदि अशुभतर वेदना, अशुभतर ही विक्रियाजन्य दुखों से स्वयं

तो दुखी रहते ही हैं और जले पर नमक बुरकाने का काम असुर जाति के देव आकर करते हैं–

तहाँ राधशोणित वाहिनी, कृमिकुल कलित देहदाहिनी।
सेमर तरु जुतदल असिपत्र असि ज्यों देह विदारे तत्र।
मेरुसमान लोह गलि जाय ऐसी शीत उष्णता थाय।
तिल-तिल करे देह के खंड, असुर भिड़ावे दुष्ट प्रचंड।
सिन्धु नीरतें प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटे न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागर लों सहे......

ऐसे असह्य नरकजन्य दुखों को यह जीव सागर आयु पर्यन्त सहता है। दुख से पीडित हो सदैव मरने की इच्छा भी करता है पर वहाँ अकाल में मृत्यु भी नहीं होती है। इस प्रकार अधोलोक का चिन्तन करें, हमें प्रतिदिन नरक के दुखों से बचने के लिए कम-से-कम मद्य-मांस का त्याग तो अवश्य ही कर देना चाहिए और रत्नत्रय की भावना करनी चाहिए।

अधोलोक के ऊपर आत्मा से परमात्मा बनने का मार्ग जहाँ सदा खुला है, मानव पर्याय की सार्थकता को कराने वाला ऐसा असंख्यात द्वीप और समुद्रों से घिरा हुआ मध्यलोक है। यह मध्यलोक अच्छे-अच्छे नाम वाले द्वीप और समुद्रों से मंडित है। मध्यलोक में जम्बूद्वीप आदि सुन्दर द्वीप व लवण समुद्र आदि समुद्र हैं। असंख्यात द्वीपों व समुद्रों के बीच जम्बू वृक्ष से चिह्नित थाली के समान गोल और एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप सुदर्शनरूप नाभि से युक्त है। इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत सात क्षेत्र हैं। विदेह क्षेत्र में उत्तर कुरु भोगभूमि में अनादि-निधन पृथ्वीकाय अकृत्रिम जम्बू (जामुन) का वृक्ष है इसीलिए इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा है। उन क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व से पश्चिम लम्बे हिमवत्, महाहिमवत्, निषध, नील, रुक्मिन् और शिखरिन् ये छः कुलाचल हैं (पर्वत हैं)। उन पर्वतों पर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरी, महापुण्डरीक, पुण्डरीक नाम के तालाब हैं। उनमें प्रथम तालाब पर एक योजन

विस्तार वाला कमल है। तालाब के कमलों पर श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि व लक्ष्मी नाम की देवियाँ निवास करती हैं। उन तालाबों से नदियाँ निकली हैं–उनमें पहले पद्म और छठे पुण्डरीक से तीन-तीन व शेष से दो-दो नदियाँ निकली हैं। भरत में गंगासिन्धु, हैमवत में रोहित रोहितास्या, हरि में हरित हरिकान्ता, विदेह में सीता सीतोदा, रम्यक में नारी नरकान्ता, हैरण्यवत में सुवर्णकूला रूप्यकूला और ऐरावत क्षेत्र में रक्ता-रक्तोदा नदियाँ बहती हैं। इनमें भरत क्षेत्र का विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है तथा विदेह क्षेत्र पर्यन्त पर्वत और क्षेत्र दूने-दूने विस्तार वाले हैं। विदेह क्षेत्र के उत्तरदक्षिण में पर्वत व क्षेत्र समान विस्तार वाले हैं। भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता है। यहाँ बीस कोडा-कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उत्सर्पिणी में जीवों की आयु, ऊँचाई, बुद्धि आदि की वृद्धि व अवसर्पिणी में बुद्धि, आयु आदि की न्यूनता होती है। अवसर्पिणी के छह भेद हैं–सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषम दुषमा, दुषमसुषमा, दुषमा और अति दुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के ६ भेद अतिदुषमा आदि हैं। अभी वर्तमान में दुषमा हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है। हुण्डावसर्पिणी काल असंख्यात कल्पकाल बीतने के बाद आता है। इसमें अनहोनी घटनाएँ होती हैं। यथा तीर्थंकर तीन पद धारी, तीर्थंकर के पुत्रों में लड़ाई, तीर्थकर के लडकियाँ आदि।

मध्यलोक में पाँच भरत, पाँच ऐरावत व पाँच विदेह क्षेत्र हैं। इस प्रकार १५ कर्मभूमियाँ है। भरत-ऐरावत क्षेत्र में प्रथम द्वितीय तृतीय काल में भोगभूमि व चतुर्थ आदि काल में कर्मभूमि है। चतुर्थ काल में यहाँ १६९ महापुरुष होते हैं। २४ तीर्थकर और इनके २४ माता, २४ पिता, २४ कामदेव, १४ कुलकर, १२ चक्रवर्ती, ११ रुद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र और ९ नारद आदि। यहाँ मात्र चतुर्थ काल में ही मुक्तिद्वार खुला है अन्य कालों में नहीं।

विदेह क्षेत्र में सदा चतुर्थ काल है। यहाँ सदैव जीव मुक्तिगमन करते रहते हैं। बीस तीर्थंकर शाश्वत पाये जाते हैं। पन्द्रह कर्मभूमियों में १७० अयोध्या और १७० ही सम्मेद-शिखर हैं। अयोध्या में तीर्थंकरों का जन्म व सम्मेद-शिखर में निर्वाण होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से तीर्थंकरों का जन्म व निर्वाण यहाँ अलग-अलग भूमियों में हुआ है।

शेष क्षेत्र भोगभूमि कहलाते हैं।

जम्बूद्वीप के आगे दूने-दूने विस्तार वाले असंख्यात समुद्र व द्वीप हैं। उनमें ढाई द्वीप–जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि समुद्र और पुष्करार्ध इतने क्षेत्र को अढ़ाई द्वीप कहते हैं। इसका विस्तार ४५ लाख योजन है। ढाई द्वीप में ही मनुष्य पाये जाते हैं इसके आगे नहीं अत: इसे मनुष्य क्षेत्र भी कहते हैं। मनुष्य लोक में ४९८ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। जहाँ असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मों की प्रवृत्ति होती है वे कर्मभूमि कहलाती हैं। ढाई द्वीप में एक मेरु सम्बन्धी ६ भोगभूमि तो ५ मेरु सम्बन्धी ३० भोगभूमियाँ हैं। यहाँ जीव कल्पवृक्षों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

आठवाँ द्वीप नन्दीश्वर द्वीप है। यहाँ ५२ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। उसके आगे कुण्डलवर द्वीप में ४ व रुचकवर द्वीप में ४, इस प्रकार मध्यलोक में ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। विशेष वर्णन करने के लिए समय नहीं है अत: आप लोग तत्त्वार्थ सूत्र, तिलोयपण्णत्ति आदि का स्वाध्याय कर विशेष जानकारी प्राप्त करें।

पृथ्वी से ७९० योजन से लेकर ११० योजन अर्थात् ९०० योजन पर्यन्त ज्योतिर्लोक है। यहाँ तारा, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बुध-बृहस्पति-मंगल और शनि के विमान क्रमश: ७९०, १०, ८०, ४, ४, ३, ३, ३ और ३ योजन ऊपर हैं। सूर्य के बाद चन्द्र और अन्त में शनि है। ढाई द्वीप के ज्योतिषीदेव निरन्तर मेरु की प्रदक्षिणापूर्वक परिभ्रमण करते हैं। उसी से ढाई द्वीप द्वीप में घड़ी, घण्टा, प्रहर, दिवस आदि व्यवहार काल होता है। जम्बूद्वीप में २ चन्द्रमा, २ सूर्य, लवणोदधि में ४ चन्द्रमा, ४ सूर्य हैं, धातकीखण्ड में १२ सूर्य, १२ चन्द्रमा, कालोदधि में ४२ चन्द्रमा ४२ सूर्य और पुष्करार्ध में ७२ सूर्य ७२ चन्द्रमा हैं। उनमें भरतक्षेत्र से बाह्य भाग में उस चारक्षेत्र में सूर्य के १८४ मार्ग होते हैं चन्द्रमा के मात्र १५। जम्बूद्वीप के भीतर कर्क संक्रान्ति के दिन जबकि दक्षिण अयन का प्रारम्भ होता है तब निषध पर्वत के ऊपर प्रथम मार्ग में सूर्य प्रथम उदय होता है, तब सूर्य के विमान में स्थित निर्दोष वीतराग जिनेन्द्र की अकृत्रिम प्रतिमा

का अयोध्या नगरी में स्थित भरतक्षेत्र का चक्रवर्ती निर्मल सम्यक्त्व के अनुराग से अवलोकन कर पुष्पाञ्जलि व अर्घ समर्पण करता है।

मध्यलोक चौराहा है। यहाँ से जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ऊर्ध्व अधोगति को प्राप्त है। मध्यलोक के ऊपर ऊर्ध्वलोक है–इस लोक में सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक १६ स्वर्ग हैं। वहाँ से आगे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश व पाँच अनुत्तर विमान हैं। इनमें सौधर्म युगल में ३१, सानत्कुमार युगल में ७, ब्रह्म युगल में ४, लान्तव युगल में २, शुक्र युगल में १, शतार युगल में १, आनत युगल में ३, प्राणत युगल मे ३, प्रत्येक तीनों ग्रैवेयकों में ३-३, नव अनुदिशों में १, पॉच अनुत्तरों में १, ऐसे कुल ६३ पटल हैं। इन स्वर्गों में सौधर्म आदि स्वर्ग सम्बन्धी ८४ लाख ९७ हजार २३ विमान हैं। उन विमानों में इतनी ही संख्या ८४९७०२३ प्रमाण सुवर्णमय अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। सोलह स्वर्गों से ऊपर एक रज्जु मे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पॉच अनुत्तर विमान हैं तथा इसी के आगे बारह योजन अन्तर से ४५००००० योजन प्रमाण विस्तार वाली सिद्धशिला है। सिद्धशिला के ऊपर घनोदधि, घनवात और तनुवात नामक तीन वलय हैं। इनमें जो तनुवात है, वहाँ लोक के अन्तभाग में केवलज्ञान आदि अनन्त गुणों सहित ऐसे अनन्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं।

किनहुं न करै न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक मांहि बिन समता, दुख सहे जीव नित भ्रमता ।।छ.ढा. ।।

छहढाला में दौलतरामजी लिखते हैं–यह लोक जीव, पुद्गल, धर्म आदि छह द्रव्यमयी है, किसी ईश्वर आदि का बनाया हुआ नहीं। लोक को यदि ईश्वर का बनाया कथंचित् मान भी लिया जावे तो अनेक प्रश्न आपके सामने है–

१. ईश्वर ने बनाया है तो ईश्वर को किसने बनाया?

२. ईश्वर तो समताभावी वीतरागी होता है फिर ईश्वर ने किसी को दुखी किसी को सुखी, किसी को धनवान, किसी को दरिद्री क्यों बनाया? ईश्वर

है तो यह पक्षपात क्यों हुआ?

३. एक घर में १० सदस्यों की देखरेख करने वाला व्यक्ति चिन्तित रहता है, जिस ईश्वर को पूरी सृष्टि की रचना, देख-रेख करना है उसे कितनी चिन्ता होगी। यदि ईश्वर में भी चिन्ता है तो ईश्वरत्व कैसा, आदि आदि कई बाधाएँ सामने हैं। वास्तव में यह लोक अनादिनिधन, शाश्वत, अकृत्रिम है। यह लोक षट् द्रव्यमयी है। इनमें एक जीव द्रव्य चेतन व पाँच द्रव्य अचेतन हैं। संसार में जीव द्रव्य व पुद्गल द्रव्य का सारा बोलबाला है क्योंकि दोनों ने अपने-अपने असली रूप को तज दिया है तथापि–

अट्ठविह कम्म वियला सीदीभूदा णिरञ्जणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्ग णिवासिणो सिद्धा॥

स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त, आठ कर्मों से रहित, शान्तरूप, निरञ्जन, नित्य, अष्टगुणों सहित, कृतकृत्य लोकाग्रवासी अनन्त सिद्ध भगवान् शुद्ध जीव द्रव्य हैं। और–

अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तन्तं णेव इंदिये गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं तं परमाणु वियाणेहि॥

जो स्वयं ही आदि है, स्वयं ही मध्य है, स्वयं ही अन्त है, इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य है, अविभागी पुद्गल परमाणु शुद्ध पुद्गल द्रव्य है।

हरदी ने जरदी तजी, चूनो तज्यो सफेद।
दोऊ मिल एकहि भये, रह्यो न काहू भेद॥

हल्दी-चूना मिलने पर हल्दी पीलापन छोड़ देती है, चूना सफेदी छोड देता है और दोनों मिलकर एक तीसरा लाल रंग हो जाता है, वही स्थिति लोक में जीव पुद्गल की हो रही है। जीव ने अपना ज्ञान-दर्शन स्वभाव छोड़ विभाव को अपनाया, पुद्गल ने अपना स्वभाव छोड़ा, अब दोनों वैभाविक दशा को प्राप्त हो एक ही नजर आ रहे हैं कैसे–मेरा शरीर, मेरा मेरा मेरा–

भैया! नाटक कर्म का, नाचत हैं सब लोग।
नाटक तज न्यारे भये, ते पहुँचे शिवलोक॥

प्रतिदिन आप लोग पढ़ते भी हैं–

चौदह राजू उत्तंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामैं जीव अनादि तैं भरमत हैं बिन ज्ञान॥

त्रिलोक में ज्ञान के समान सुख का कारण अन्य कोई नहीं तथा अज्ञान के समान दुख का कारण कोई नहीं। अज्ञान ससार-परिभ्रमण का मूल है तो ज्ञान जन्म-जरा-मृत्यु का नाश करने के लिए परम अमृत है।

ज्ञानी स्व-पर उपकारक होता है। ज्ञानी का ज्ञान, दर्शन और चारित्र दोनों की रक्षा करता है और इसीलिए उमास्वामी आचार्य ने–"सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग:" कहा। ज्ञान को मध्यदीपक कहा।

इस जीव ने अज्ञानवश तीनों लोकों में भ्रमण किया, लोक का एक भी प्रदेश ऐसा नहीं जहाँ यह जन्म-मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। ज्ञानी कर्मफल को कैसे भोगता है–

रिणमोयण व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पावफलं मे एदं मया वि जं संचिदं पुव्व ॥११०॥ का.आ. ॥

"मैंने पूर्वभव में जो पाप उपार्जित किया था उसी का यह फल है।" ऐसा जानकर ज्ञानी तीव्र उपसर्ग परीषह को कर्ज से मुक्ति सम मानता हुआ कर्मो की निर्जरा कर लोकाग्रवासी बनता है। जो कर्मोदय को परकृत मानता है वह अज्ञानी नवीन कर्मो का संचय कर संसारवासी बनता है।

सामायिक पाठ में अमितगति आचार्य लिखते हैं–

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्वयं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

हे भव्यात्माओ! अपना पुराकृत कर्म अपने को ही शुभ-अशुभ फल देता है, यदि उसे दूसरों का दिया हुआ मानकर आर्त्त रौद्र ध्यान में पड़ते हैं तब तो स्वयं का किया हुआ कर्म निरर्थक ही हो जायेगा।

सीता, अञ्जना, द्रौपदी, चन्दना आदि महासतियों पर कितने संकट

आये, उन्होंने कभी दूसरों को दोष नहीं दिया। अपने किये पापकर्मों का ही उदय माना। उसी का फल था कि सीता का अग्निकुण्ड कमलयुक्त तालाब बन गया, अञ्जना की सास ने क्षमा-याचना की, द्रौपदी का चीर बढ़ता ही गया और चन्दना के चरणों में सेठानी आकर नतमस्तक हो गई। समय नहीं है, इसका बार-बार चिन्तन करते हुए अपने ज्ञान स्वभाव की ओर लक्ष्य दो–

केवलणाण सहावो, केवलदंसणसहाव सुहमइओ।
केवल सत्ति सहावो सोऽहं इति चिंतये णाणी॥

छह द्रव्यों में मेरा यह आत्मा केवलज्ञान स्वभावी, केवलदर्शन स्वभावी है। अनन्त सुख व अनन्त वीर्य से युक्त है। मैंने अपनी शक्ति को कर्मों के आवरण में छिपा रखा है। उस शक्ति से कार्य सिद्ध नहीं होगा, अनंत शक्ति ही व्यक्ति का सुख है। वह सुख द्रव्य और पर्याय दोनों की निर्मलता से प्राप्त होगा।

गिरधर कवि कहते हैं–

सांई सब संसार में मतलब का व्योहार,
जब लग पैसा गाँठ में तब लग ताके यार।
तब लग ताके यार, यार संग ही डोले,
पैसा रहा न पास यार मुँह से नहीं बोले।
कहे गिरधर कविराय जगत का याही लेखा,
करत बेगरज प्रीति यार कोई बिरला देखा॥

यह सारा संसार स्वार्थ का है, इस संसार में सब जीव पक्षियों की तरह दिशा-दिशा से आते हैं और अपना-अपना स्वार्थ पूरा करके अपनी-अपनी दिशा में उड़ जाते हैं। यहाँ ऐसी दशा में 'सोऽहं' मन्त्र ही हमारा उपकारक है–

होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम॥

ये पंक्तियाँ हमारी अनादिकालीन कर्ताबुद्धि को दूर कर कर्तव्यबुद्धि के लिए प्रेरित करने वाली हैं। अन्त में एक बात कहकर अपना आज का वक्तव्य पूरा करता हूँ–

परमप्पाणमकुव्वं, अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो, कम्माणमकारगो होदि॥

ज्ञानी पर को अपना नहीं करता हुआ और अपने को भी पर का नहीं करता हुआ ज्ञानभाव में विचरण करता हुआ कर्मों का अकर्ता होता है।

साम्य भाव को प्राप्त कर ज्ञानी कर्तव्यबुद्धि का आचरण करता है। दुख-सुख में, शत्रु-मित्र में, वन-नगर में द्वेष को नहीं रखता हुआ ज्ञानी ही लोक का चिन्तन करता हुआ लोकाग्रवासी बनता है अत: प्रतिदिन आप लोग ज्ञान की भावना करें। थोड़ा बहुत स्वाध्याय अवश्य करें। एक-एक पंक्ति भी आप प्रतिदिन स्वाध्याय करेंगे तो ज्ञानी बनकर आत्मा को निर्मल, पवित्र लोकाग्रवासी बना लेंगे।

♦ ♦ ♦

'मेरे पास नहीं है' यह लाचारी छोड़ कर 'मुझे नहीं चाहिए' का सत्त्व आत्मा से प्रकट होना चाहिए।

११

एक जथारथ ज्ञान

जैनशासन के प्रसिद्ध आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ के नवम अध्याय में ज्ञान की दुर्लभता का वर्णन करते हुए लिखा है–

एक निगोद शरीर में सिद्धों से अनन्त गुणा जीव हैं। इस प्रकार स्थावर जीवों से सारा लोक निरन्तर भरा हुआ है। (स.सि.)

एकणिगोदसरीरे, जीवा दव्वपमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंत गुणा, सव्वेण विदीद कालेण ।।१९६ ।।जी.का. ।।

समस्त सिद्ध राशि और सम्पूर्ण अतीत के समयों का जितना प्रमाण है, द्रव्य की अपेक्षा उनसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं।

इस लोक में त्रस पर्याय का पाना उतना ही कठिन है जितना कि बालुका के समुद्र में पड़ी हुई वज्रसिकता की कणिका का प्राप्त होना अर्थात् जैसे बालुका के समुद्र में पड़ी वज्रसिकता मणि की प्राप्ति दुर्लभ है वैसे ही निगोदिया जीवों से भरे संसार में त्रस पर्याय की प्राप्ति दुर्लभ है–

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि त्यों पर्याय लही त्रस तणी ।।छ.ढा.१ ।।

त्रस जीवों में भी विकलेन्द्रियों की बहुलता है, चारों ओर लट, चींटी, भ्रमर-मक्खी-मच्छर भरे हुए हैं अत: गुणों में जिस प्रकार कृतज्ञता गुण का प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है उसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय पर्याय का प्राप्त होना दुर्लभ है।

पञ्चेन्द्रिय पर्याय में मृग, पक्षी, सरीसृप, देव, नारकी जीवों की बहुलता है, इसलिए जिस प्रकार चौपथ पर रत्नराशि का प्राप्त होना अति कठिन है उसी प्रकार मनुष्य पर्याय का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। आचार्य उमास्वामीजी

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में लिखते हैं–"अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य" अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह से मनुष्यआयु का आस्रव होता है। अर्थात् प्राणिपीड़ा का आरंभ जिसमें अल्प प्रमाण में होता है, मरणकाल में जिसके परिणाम में संक्लेश नहीं रहता है, स्वभाव से ही जिनके मन में मृदुभाव, दया रहती है, जो नम्र स्वभाव वाले हैं, सरल स्वभावी हैं, नीतियुक्त व्यवहार करते हैं व जिनकी कषायें मन्द हैं ऐसे जीव मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं। ऐसी मानव पर्याय मोह-माया में फँसे निरन्तर परपीड़ा में आनन्द मनाने वाले जीवों को कैसे प्राप्त हो सकती है अत: आचार्यदेव कहते हैं–चौराहे पर रत्नराशि की प्राप्ति के समान मनुष्य पर्याय की प्राप्ति दुर्लभ है।

तीर्थंकर भगवान् जब गर्भ में आते हैं तब माता से देवियाँ विविध प्रश्न करती हुईं माँ को सदा प्रसन्न रखती हैं। एक देवी माता से पूछती है–हे मात! इस संसार में 'किं दुर्लभं' दुर्लभ वस्तु क्या है? माता कहती है–'नृजन्म' मनुष्य-जन्म की प्राप्ति अति दुर्लभ है। देवी पुन: पूछती है–"प्राप्येदं भवति किं च कर्तव्यम्" यदि यह प्राप्त हो गया तो क्या करना चाहिए? माता उत्तर देती है–"**आत्महितमहितसंगत्यागो रागश्च गुरुवचने**" यदि दुर्लभ नरजन्म कर्मवशात् प्राप्त हो गया तो आत्मा का हित करना चाहिए, अहित को करने वाले परिग्रह का त्याग कर गुरुवचनों में श्रद्धा करनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया तो, हाथ में आया मनुष्य भव व्यर्थ जायेगा, एक बार हाथ से गया यह फिर मिलने वाला नहीं है।

पुन: आचार्य कहते हैं–कदाचित् पुण्यवशात् मनुष्य पर्याय मिल गई, तो एक बार हाथ से निकलने के बाद पुन: उसी की प्राप्ति होना इतना कठिन है जितना कि जले हुए वृक्ष के पुद्गलों का पुन: उस वृक्ष पर्याय रूप से उत्पन्न होना कठिन है यानी एक वृक्ष जल गया उसके जले हुए उन परमाणुओं का पुन: उस वृक्ष पर्याय से उत्पन्न होने के समान पुन: मनुष्य पर्याय की प्राप्ति कठिन है।

पत्ता टूटा डार से, ले गई पवन उड़ाय, अबके बिछड़े कब मिलें, यों पत्ता दुख पाय।
सुन पवन उत्तर दिया, क्यों पत्ता दुख पाय, या घर ऐसी रीति, इक आवे इक जाय।

इस संसार में एक पर्याय आती है एक जाती है, मनुष्य पर्याय एक बार जाने के बाद मिलना कठिन है। यदि कदाचित् पुन: इस मनुष्य जन्म की प्राप्ति हो जावे तो देश, कुल, इन्द्रिय सम्पत् और नीरोगता इनका पाना उत्तरोत्तर दुर्लभ है।

यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिबो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी।।छ.ढा.।।

कदाचित् मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, उत्तम देश भी मिल गया तो भी समीचीन धर्म की प्राप्ति होना कठिन है, क्योंकि मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, देश मिलने पर भी यदि समीचीन धर्म नहीं मिला तो जिस प्रकार नेत्रों के बिना मुख व्यर्थ है वैसे धर्म के बिना मनुष्य पर्याय व्यर्थ है। कदाचित् अतिकठिनता से प्राप्त होने योग्य धर्म की प्राप्ति भी हो गई तो भी समीचीन धर्म को प्राप्त कर इन्द्रियविषयों में रममाण होना, भोगों में आसक्त होना भस्म के लिए चन्दन जलाने के समान व्यर्थ है। कदाचित् धर्म की प्रभावना और सुखपूर्वक मरणकर समाधि का प्राप्त करना अति दुर्लभ है। इस समाधि के होने पर ही बोधि लाभ सफल है–

एक बाबाजी बहुत धर्मात्मा थे। उत्तम कुलीन घराने में उनका जन्म हुआ था। घर बड़ा वैभवसम्पन्न था। परन्तु उनका मोहजाल नहीं छूटा था, बोधि की प्राप्ति नहीं हो पाई थी। बाबाजी चारपाई पर लेटे थे, मरणासन्न अवस्था थी। लोग उन्हें भगवान् का नाम सुना रहे थे परन्तु उनकी दृष्टि घर के दरवाजे की ओर थी–"कौन आया, कौन गया?" बस, उन्होंने क्या देखा! एक गाय घर में घुसी है, उसने झाडू को मुँह लगाया, बाबाजी चिल्लाने लगे, झाडू झाडू झाडू, बस उनके प्राण-पखेरू झाडू का नाम लेते-लेते उड गये। आचार्य कहते हैं सम्यक् बोधि की प्राप्ति के बिना कभी भी समाधिमरण नहीं हो सकता।

दौलतरामजी ने सत्य ही लिखा है–

धन समाज गज वाजि, राज तो काज न आवे।
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावे।।
तास ज्ञान को कारण स्वपर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो।।

बन्धुओ! हाथी, घोड़ा, धन, बाग-बगीचा सब अन्तिम समय में काम आने वाले नहीं, एक मात्र ज्ञान ही आपके साथ स्थिरता में सहायक बनेगा। ज्ञान का कार्य स्व-पर का विवेक जागृत करना है इसलिए करोड़ों प्रयत्न करके भी ज्ञान की प्राप्ति अवश्य करना चाहिए, क्योंकि–

जे पूरब शिव गये जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहे हैं।।

आज तक जितने सिद्ध हो गये, वर्तमान में हो रहे हैं और आगे भी होंगे वह सब ज्ञान की ही महिमा है, ज्ञान की प्राप्ति के बिना त्रिकाल में भी मुक्ति नहीं हो सकती।

मंगतरायजी लिखते हैं–

दुर्लभ है निगोद से थावर अरु त्रसगति पानी,
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्राणी।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ श्रावक कुल पाना,
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम पंचम गुणठाणा।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना,
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन शुद्ध भाव करना।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन बोधिज्ञान पावै,
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर इस भव में आवै।

इस जीव ने ''काल अनंत निगोद मंझार बीत्यो'' अनन्त काल निगोद में व्यतीत कर दिया वहाँ से, भाड़ में चना भूँजते समय कोई एक-दो चना जैसे उछलकर बाहर आ जाता है वैसे ही वहाँ से निकलकर स्थावर पर्याय पृथ्वी-जल आदि में जन्म लिया। वहाँ से निकलकर–

इस जीव को त्रस पर्याय के लिए मात्र २००० सागर का समय मिलता है, उसमें भी १००० सागर तो विकलेन्द्रिय पर्याय में बीत जाता है और रहा मात्र १००० सागर उसमें भी स्वर्ग, नरक, पशु पर्याय में अधिकांश समय निकलता है। मनुष्य पर्याय के लिए अति अल्प समय मिलता है। यदि इसमें भी कल्याण नहीं किया तो अनन्तकाल निगोद में ही बिताना होगा। **अथवा**

निगोद से निकलने के बाद इतर पर्याय में आत्मा को उत्थान करने के लिए मात्र २ हजार सागर ९६ कोटि पूर्व का समय मिलता है, इसमें २००० सागर का समय इसका नरक व स्वर्ग पर्याय में निकल जाता है शेष ९६ कोटि पूर्व का समय रहा उसमें से ४८ कोटि पूर्व का समय एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पशु पर्याय में बीत जाता है शेष रहा ४८ कोटि पूर्व। उन ४८ कोटि पूर्व में १६ कोटि पूर्व नपुंसक मनुष्य पर्याय में,

१६ कोटि पूर्व स्त्री मनुष्य पर्याय में और

१६ कोटि पूर्व पुरुषवेद मनुष्य पर्याय में बीतता है।

यदि इस अमूल्य समय में भेदविज्ञान नहीं किया, आत्मकल्याण का पुरुषार्थ नहीं किया तो पुन: उत्कृष्ट से असंख्यात कोड़ाकोडी सागर काल पर्यन्त रहना होगा। बन्धुओ! इस काल में कोई अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञानी तो हैं नहीं, पता नहीं यह अपनी कौन सी पर्याय है, हो सकता है हमारी यह मानव पर्याय अन्तिम भव हो अत: जागृत हो हमें अपनी आत्मा को कल्याण पथ पर लगा लेना चाहिए।

यह नर पर्याय इतनी दुर्लभ है कि देवों का इन्द्र भी इस पर्याय की प्राप्ति को तरसता है। जिस समय तीर्थंकर देव संसार से विरक्त होते हैं उस समय इन्द्र अपनी पूर्व आदत के अनुसार पालकी में विराजमान कर उठाना चाहता है, तब मनुष्य उसे रोक कर कहते हैं, भाई! अब आपका काम नहीं, अब आप पालकी नहीं उठा सकते। अब तुम्हारा अधिकार नहीं। इन्द्र बोला–मैंने गर्भ में आने के ६ माह पूर्व से १५ माह पर्यन्त रत्न बरसाये, भगवान् का जन्माभिषेक मेरु पर्वत पर किया, अब मेरा अधिकार क्यों नहीं? तब एक वृद्ध ने चिन्तन कर निर्णय दिया कि भाइयो! भगवान् की पालकी वही उठा सकता है जो भगवान् के साथ भगवान् के समान ही संयम को धारण कर सकेगा। यह बात सुनकर मनुष्य बड़े प्रसन्न हुए। तब इन्द्र बोला–हे मनुष्यो! मेरी इन्द्रत्व की सारी सम्पत्ति ले लो और इसके बदले यह मनुष्य पर्याय मुझे दे दो, परन्तु उनकी यह आशापूर्ति कौन कर पाता, वह रोता रहा, मनुष्य भव को ललचाता रहा। ऐसे अमूल्य नररत्न को क्षणिक, पराधीन विषय आस्वाद में गँवा देना महामूर्खता ही है।

मनुष्य पर्याय में भी उत्तम देश, सुसंगति, उत्तम श्रावक कुल, सम्यग्दर्शन, देशसंयम, पंचमगुणस्थान, रत्नत्रय की आराधना, जैनेश्वरी दीक्षा का पाना, दीक्षा लेकर शुद्ध भाव रखना ये आगे-आगे दुर्लभ ही हैं। इन सबके प्राप्त होने पर भी सम्यक् रत्नत्रय, सम्यग्ज्ञान, भेदविज्ञान, समीचीन ज्ञान, आत्म तत्त्वरूप ज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है और भेदज्ञान की, आत्मज्ञान की सिद्धि के बिना केवलज्ञान की प्राप्ति अत्यंत कठिन है। दुर्लभ बोध/सम्यक् ज्ञान कैसा हो–

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निः संदेह वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२ र.आ.॥

न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित और सन्देह रहित वस्तु स्वरूप के यथार्थ जानने को आगम के ज्ञाता सर्वज्ञ गणधरदेव सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

अर्थात् वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही जानना उससे कम नहीं, अधिक भी नहीं, विपरीत भी नहीं और संदेह सहित भी नहीं, जानना। द्रव्य छह या छह ही हैं अधिक या कम नहीं। हिंसा में कभी धर्म नहीं हो सकता, नग्नत्व से विपरीत अन्य कोई मोक्षप्राप्ति नहीं करता, जिनेन्द्र देव के वचन संशय-विपर्यय-अनध्यवसाय से रहित होते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ऐसा अकाट्य ज्ञान, बोधि दुर्लभ है।

Knowledge is power, ज्ञान एक प्रकाश है। हेय क्या है? उपादेय क्या है? अर्थात् मेरे लिए करने योग्य क्या है, नहीं करने योग्य क्या? यह सब बताने वाला ज्ञान ही है। ज्ञान एक अमर ज्योति है जो जिसके भीतर जल जाती है उसे अपने सत्य तक पहुँचा देती है। ज्ञान का अर्थ मात्र डिग्रियाँ ले लेने से नहीं, ज्ञान का अर्थ है नैतिकता, भेदविज्ञान, वस्तु व्यवस्था का ज्ञान। मोह रहित थोड़ा भी ज्ञान मुक्ति का कारण बनता है और मोह सहित बहुत ज्ञान भी संसार का ही कारण है–"णाणं पयासओ"

निशि का दीपक चन्द्र है, दिन का दीपक भान।
कुल का दीपक पुत्र है, तिहुँ जग दीपक ज्ञान॥

तीन लोक का प्रकाश करने वाला एकमात्र ज्ञान है। और भी कहते हैं–

नास्ति कामसमो व्याधि, नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्निः नास्ति ज्ञानसमं सुखम्॥

इस लोक में मदन के समान कोई रोग नहीं, मोह के समान कोई शत्रु नहीं, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं और ज्ञान के समान कोई सुख नहीं। ज्ञानी नर सदा ज्ञान भाव में विचरण करता है। यह ज्ञान "भूतार्थप्रकाशकज्ञानम्" सत्य का प्रकाश होता है। जिस मानव के पास ज्ञान/विद्या नहीं वह नर बिना पूँछ का पशु है। ज्ञान ही आत्मा है। आचार्यदेव कहते हैं–

आदा णाणपमाणं, णाणं णेयपमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोआलोअं, तम्हा णाणं तु सव्वगयं॥प्र.सा.॥

आत्मा ज्ञान प्रमाण है। ज्ञान ज्ञेय के, प्रमेय के, यानी पदार्थ के प्रमाण हैं, ज्ञेय लोकालोक प्रमाण हैं अतः ज्ञान सर्वलोक प्रमाण है।

"बोधि का अर्थ है रत्नत्रय" ज्ञानार्णव ग्रन्थ में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं–

सुप्रापं न पुनः पुंसां बोधिरत्न भवार्णवे।
हस्ताद्‌भ्रष्ट यथा रत्नं महामूल्यं महार्णवे॥

यह जो बोधि यानी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र रूप रत्नत्रय हैं, इस संसाररूपी समुद्र में प्राप्त होना सुगम नहीं है किन्तु अत्यन्त दुर्लभ है। इसको पाकर भी जो खो बैठते हैं, उनको हाथ में रक्खे हुए रत्न को समुद्र में डाल देने पर जैसे फिर मिलना कठिन है उसी प्रकार सम्यक् रत्नत्रय का पाना दुर्लभ है।

जीव का सम्यक्‌दर्शन गुण मिथ्यादर्शन से, सम्यक् ज्ञान गुण मिथ्याज्ञान से व सम्यक् चारित्र गुण मिथ्याचारित्र से ढका हुआ है। ये "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र" तीन रत्न हैं। ये रत्न आत्मा की निजी वस्तु हैं। ये आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते–

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि।
तह्मा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ।।४० ।।

रत्नत्रय निज शुद्ध आत्मा को छोड़कर अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं रहता है। राग द्वेष मोह की उपाधि से रहित चैतन्य चमत्कार की भावना से उत्पन्न आत्मा का परद्रव्य से भिन्न श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है ''परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।'' अपने आत्मस्वरूप को विभावभावों से भिन्न जानना निश्चय सम्यक् ज्ञान है–''आप रूप को जानपनो सो सम्यक् ज्ञान कला है।'' चिदानन्द चैतन्य रूप साम्यभाव में लीन होना सम्यक् चारित्र है–''आप रूप में लीन रहे थिर सम्यक् चारित सोई।'' जो सम्यग्दृष्टि है वही सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्रवान हो सकता है।

सम्यक्त्व रहित ११ अंग ९ पूर्व का पाठी क्षयोपशम ज्ञान से अपना यश बाह्य में फैलाता है पर वह चारित्र रथ पर आरूढ़ मोक्षमार्गी नहीं है। इसी प्रकार सम्यक्त्व रहित घोर तपश्चरण करने वाला भी चारित्रवान नहीं है, क्योंकि

अन्तिम ग्रीवकलौं की हद पायो अनन्त बिरियापद
पर सम्यक् ज्ञान न लाधो दुर्लभ निज में मुनि साधो।

इस निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति व्यवहार रत्नत्रय के बिना नहीं हो सकती, अत:–

प्रथम देव अरहंत, सुश्रुत सिद्धान्त जू,
गुरु निरग्रन्थ महन्त मुक्तिपुरपन्थ जू।
तीन रतन जगमांहि सु ये भवि ध्याइये,
तिनकी भक्ति प्रसाद परम पद पाइये।

सच्चे देव अरहंत-वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, संशय-विभ्रम-विमोह रहित निर्दोष वीतराग प्रभु की वाणी/जिनवाणी व निर्ग्रन्थ गुरु ये तीन रत्न हैं। इन तीनों की आराधना से ही बोधि/रत्नत्रय की प्राप्ति हो सकती है अन्य से नहीं। आचार्य देव कहते हैं–एक-एक की आराधना कर एक-एक रत्न प्राप्त कर लीजिये।

जिने भक्ति-र्जिने भक्ति-र्जिने भक्तिः सदास्तु मे।
सम्यक्त्वमेव संसार-वारणं मोक्षकारणं।।

जिनेन्द्र देव की भक्ति सम्यक्त्व की कारण है। यह संसार का क्षय कर मुक्ति को देने वाली है।

श्रुते भक्ति-श्रुते भक्ति-श्रुते भक्तिः सदास्तु मे।
सज्ज्ञानमेव संसार-वारणं मोक्षकारणम्।।

द्वादशांग जिनवाणी की भक्ति सम्यग्ज्ञान की कारण है। यह संसार का क्षय कर मुक्ति को देने वाली है।

गुरौ भक्ति-र्गुरौ भक्ति-र्गुरौभक्तिः सदास्तु मे।
चारित्रमेव संसार-वारणं मोक्षकारणम्।।

निर्ग्रन्थ गुरुओं की भक्ति सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के लिए साधन है तथा संसार का क्षयकर मुक्ति को देने वाली है।

पूज्य आचार्यदेव कहते हैं-हे प्रभो! देव-शास्त्र-गुरु तीनों में भक्ति मेरे भीतर सदा हो, सदा हो, सदा हो, क्यों कि यह रत्नत्रय की भक्ति ही स्वरत्नत्रय को प्रकट कराने में एकमात्र समर्थ कारण है।

समय हो रहा है, अन्त में मुझे यही कहना है, स्वाध्याय के बिना समीचीन श्रद्धा, ज्ञान में निर्मलता व चारित्र की विशुद्धता नहीं रहती, अतः-

जो सुखमय जीवन चाहत हो, तो बस एक उपाय।
समय शक्ति अनुकूल तुम, करो नित्य स्वाध्याय।।

आचार्यों ने ज्ञान-प्राप्ति के ११ उपाय बताये। उनका जीवन में पालन करें १. उद्यम करना २. अल्प बोलना ३. ऊनोदर तप यानी भूख से कम खाना, ४. विद्वानों की संगति करना, ५. विनय, ६. कपट रहित तप, ७. संसार की असारता को जानना, ८. पढ़े हुए/सीखे हुए ज्ञान का/विषय का बार-बार चिन्तन करना, ९. ज्ञानी गुरु से पढ़ना, १०. इन्द्रिय विषयों का त्याग करना, टी.वी., सिनेमा में जो अश्लील चित्रण आते हैं उन्हें देखने का त्याग करना और ११. प्रमाद का त्याग करना, उत्साह से पढ़ना।

ज्यादा नहीं तो एक काम अवश्य करें–जिन कार्यों के करने से विद्यालय, घर, समाज में अपनी अपकीर्ति होती है उन्हें न करें–बीरबल बहुत बुद्धिमान था। एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा–तुम्हें इतनी बुद्धि कहाँ से मिली? बीरबल ने कहा–मूर्खों से। अकबर ने कहा वह कैसे? बीरबल नेकहा–बादशाह! जिन कामों के करने से व्यक्ति मूर्ख होता है वे काम मैंने छोड़ दिए, बस, मैं बुद्धिमान बन गया। बन्धुओ! बीरबल की इस नीति को भी हम जीवन में उतार लें तो सच्चे ज्ञानी रत्नत्रय के उपासक बनकर आत्महित करते हुए परहित भी कर पायेंगे।

♦ ♦

अत्यन्तमलिनो देहो,
देही चात्यन्तनिर्मल:।
उभयोरन्तरं दृष्ट्वा,
कस्य शौचं विधीयते ।।

१२

धर्म सकल सुख देन

'धर्म:' संस्कृत कोश में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है धृ धातु से मन् प्रत्यय लगाकर धर्म: शब्द बना है, ''ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोकं वा'' कर्त्तव्य, धार्मिक या नैतिक गुण, अच्छे काम, धर्म है। 'धर्म' मानव के चार पुरुषार्थों में प्रथम पुरुषार्थ भी है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्रवचनसार गाथा स. ११ में श्रीजयसेनाचार्य ने टीका करते हुए धर्म शब्द के अनेक अर्थ किए हैं–

''इह धर्मशब्देन अहिंसा लक्षण: सागारानगाररूपस्तथोत्तमक्षमा-दिलक्षणो, रत्नत्रयात्मको वा तथा मोहक्षोभरहित आत्मपरिणाम: शुद्ध वस्तु-स्वभावश्चेति गृह्यते। स एव धर्म: पर्यायान्तरेण चारित्र भण्यते। अर्थात् यहाँ धर्म शब्द से १. अहिंसा लक्षण धर्म २. मुनि धर्म, श्रावक का धर्म, ३. उत्तम क्षमा आदि दस लक्षण धर्म ४. रत्नत्रयात्मक धर्म ५. मोह क्षोभ रहित आत्म परिणाम धर्म अन्य पर्याय से अर्थात् चारित्र भाव की अपेक्षा कहलाता है अत: प्रवचनसार में कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा–''चारित्तं खलु धम्मो'' ॥गा.७॥

श्रीपूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में लिखा–''अहिंसालक्षणो धर्म:'' वह अहिंसा लक्षण धर्म कैसा है? सत्य उसका आधार है, विनय उसकी जड़ है, क्षमा उसका बल है, ब्रह्मचर्य से रक्षित है, उपशम की उसमें प्रधानता है, नियति उसका लक्षण है और परिग्रहरहितपना उसका आलम्बन है। इसकी प्राप्ति नहीं होने से जीव दुष्कर्मों के विपाक से उत्पन्न दु:खों का अनुभव करते हुए संसारचक्र में परिभ्रमण करते हैं। परन्तु इस धर्म की प्राप्ति होने पर नाना प्रकार

के अभ्युदयों, नरेन्द्र, धरणेन्द्र, देवेन्द्रादि की प्राप्तिपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होना निश्चित है। ऐसा चिन्तन करना धर्मस्वाख्यातत्त्वानुप्रेक्षा है।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ में कार्तिकेय स्वामी धर्म की परिभाषा/लक्षण जैनागम के चारों अनुयोगों की अपेक्षा बताते हुए लिखते है–

धम्मो वत्थु सहावो, खमादि भावो य दहविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो॥४७८॥

'धर्म' वस्तु का स्वभाव है। आचार्यश्री ने धर्म का यह लक्षण द्रव्यानुयोग की अपेक्षा लिखा, दूसरा है उत्तम क्षमादि दस प्रकार का धर्म, धर्म है; यह लक्षण चरणानुयोग की अपेक्षा कहा। तीसरा है रत्नत्रय धर्म यह लक्षण करणानुयोग की अपेक्षा कहा तथा जीवों की रक्षा करना धर्म है, यह लक्षण प्रथमानुयोग की अपेक्षा से कहा।

धर्म वस्तु का स्वभाव है। जैनधर्म अनादि शाश्वत सनातन धर्म है। यहाँ आचार्यों ने कहा "धम्मो वत्थु सहावो" धर्म वस्तु का स्वभाव है, किसी पर थोपने की वस्तु नहीं। नीम का स्वभाव कड़वापन है, नीबू का स्वभाव खट्टापना है, शक्कर मीठी है, नमक खारा, मिर्च चरपरी है, आँवला कषैला है। ये सब इनका अपना स्वभाव है, धर्म है। नीम में कडवाहट या शक्कर में मिठास किसी ने डाला नहीं, यह स्वभाव से उनमें है, क्योंकि यह उनका धर्म है। नीम अपने स्वभाव/धर्म को छोड़ दे यानी नीम कड़वाहट छोड दे और शक्कर मिठास छोड़ दे तो नीम को ऊँट और शक्कर को मानव दूर से छोड़देगा क्योंकि धर्मच्युत हो गये हैं। इसी प्रकार जीव का धर्म है–जानना-देखना, ज्ञाता द्रष्टा रहना। अनादिकाल से यह जीव अपने ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव को छोड़कर "पर का कर्ता" बना हुआ है। कर्ता बुद्धि के ही कारण यह पर वस्तु में भी राग-द्वेष करता है। बस, इसी का फल है कि अपने शाश्वत स्थान सिद्धालय में स्थान न पाकर चौरासी लाख योनियों में फुटबाल 'बॉल' की तरह चक्कर लगा रहा है। जब तक कर्ताबुद्धि है तब तक धर्म नहीं प्राप्त होता।

आचार्य कहते हैं यह जीव अपने स्वभाव में रहने लग जावे, ज्ञाता द्रष्टा बनकर रहने का अभ्यास कर ले तो कर्मों का कोई वश नहीं चलने वाला।

"कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात संगति लोहे की पाई।" जीव कर्मों को दोष देते हैं पर अपनी अनादिकालीन भूल सुधारने का प्रयत्न नहीं करते। धर्म कहीं बाहर नहीं, धर्म अपनी आत्मा में है, धर्म अपने परिणामों में है। धर्म कहाँ? राजा जनक के दरबार में एक जिज्ञासु ने आकर प्रार्थना की, स्वामिन्! आप बड़े धर्मात्मा हैं, मैं लोगों से सुनता आया हूँ मुझे भी धर्म बता दीजिये?

जनक राजा बोले—मैंने अभी-अभी उस नदी में मगर को धर्म दिया है तुम उससे जाकर ले लो। वह जिज्ञासु नदी में मगर के पास जाकर बोला—मुझे धर्म दे दो। अभी-अभी जनक राजा आपको धर्म देकर गया मुझे वही धर्म चाहिए। मगर ने कहा—भाई मुझे प्यास लगी है। पहले एक लोटा पानी लाकर मुझे दे दो, मैं तुम्हें धर्म दे दूँगा। जिज्ञासु ने कहा—ओह! अरे भाई! नदी में रहकर प्यास? यह कैसी बात?

पानी में मीन प्यासी, मुझे सुन-सुन आवे हाँसी।

वह कहने लगा—पानी में रहकर प्यास की बात, मुझे तो यह सुनकर ही हँसी आ रही है। मगर कहने लगा—भाई! धर्म तुम्हारे अपने भीतर है बाहर नहीं; तुम अपने अन्दर की चीज मुझसे माँग रहे हो यह सुनकर मुझे हँसी आ रही है।

तेरा सांई तुज्झ में, ज्यों पुहपन में वास।
कस्तूरी के मिरग ज्यों, फिरि-फिरि ढूंढे घास॥

कस्तूरी मृग की नाभि में छिपी रहती है पर मृग को ज्ञान नहीं होने से वह वन-वन में उस सुगंधि की प्राप्ति के लिए भटकता है, आज जीवों की स्थिति ही यह हो गई है कि 'धर्म' जो अपनी आत्मा का स्वभाव है, सच्चरित्रता, नैतिकता में निहित है अपने अन्दर है वह उसकी खोज बाहर कर रहा है। धर्म कहीं मन्दिर में, तीर्थ में, मठ में, शास्त्र में नहीं, धर्म तो हमारे अन्दर है। ये तीर्थ आदि धर्म के साधन हैं।

बध्यते मुच्यते जीवः निर्ममः सममः क्रमात्।

निर्ममत्व भाव धर्म है, जीव का स्वभाव है और ममत्व भाव अधर्म

है। पर वस्तु में राग-द्वेष की उत्पत्ति अधर्म परिणाम/विभाव भावों से ही होता है। वस्तु स्वभाव से जैसी है वैसी है, न अच्छी है न बुरी। परन्तु जीव के विभाव परिणाम इसमें अच्छे-बुरे की कल्पना करते हैं—गर्मी के दिनों में जो भोजन पानी, वस्त्र आदि अच्छा लगता है वही ठंड की ऋतु में अरुचिकर लगता है क्यों? वस्तु में कहीं अशुभपना आया है? नहीं, जीव की राग-द्वेष रूप विभाव/अधर्म रूप परिणति का यह फल है। जब तक परद्रव्यों में शुभाशुभ की कल्पना, कर्ता बुद्धि, राग-द्वेष की कल्पना है, तब तक ''वत्थुसहावो धम्मो'' की प्राप्ति दुर्लभ है। वीतराग भाव वस्तु स्वभाव है, वही धर्म है। यह वस्तु स्वभाव धर्म निश्चय धर्म है।

उत्तम क्षमा, मार्दव आदि दस प्रकार के परिणामों को चरणानुयोग की अपेक्षा आचार्यों ने धर्म कहा। चरणानुयोग में धर्म के दो भेद किये–१. सागार धर्म २. अनगार धर्म अथवा गृहस्थ धर्म व मुनि धर्म। गृहस्थ क्षमा आदि धर्मों का एकदेश पालन कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है। मुनिगण सर्वदेश क्षमादि धर्मों का पालन कर मुनिपद के कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में लिखा–

सकलं-विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससंगानाम्।।५०।।

'चारित्तं खलु धम्मो' सर्वपरिग्रहों से रहित मुनिराजों के सकल चारित्र होता है। यह मुनियों का धर्म है और परिग्रह सहित गृहस्थों का विकल चारित्र यह श्रावक का धर्म है। मुनिराज क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से, लोभ को शौच से, असत्य को सत्य से, असंयम को संयम से, कर्मों को तप से, ममत्व को त्याग से, अहंकार-ममकार को आकिञ्चन्य से और अब्रह्म को ब्रह्मचर्य से जीतते हैं। जिसका प्रत्याख्यान नहीं किया था ऐसे परद्रव्य का, परभाव का त्याग करते हैं, जिसकी आलोचना नहीं की थी, उसकी आलोचना करते हैं, जिस दोष आदि की निन्दा नहीं की उसकी निन्दा करते हैं, जिसका प्रतिक्रमण नहीं किया उसका प्रतिक्रमण करते हैं, इस प्रकार विराधना को त्याग कर आराधना स्वीकार करते हैं, अज्ञान, कुदर्शन, कुचारित्र,

कुतप, अकरणीय, अक्रिया, प्राणातिपात, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, रात्रिभोज, आर्त्तरौद्रध्यान, तीन कृष्णादि अशुभ लेश्या, आरम्भ, असंयम, सग्रन्थता, सचेल आदि त्यागने योग्य, मुनि अवस्था में अनाचरणीय का त्याग करके आराधना, सम्यक् ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र, सुतप, करणीय, सुक्रिया, अहिंसा, अभयदान, अचौर्य, सत्य, दत्तादान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दिन में एक समय भोजन, धर्म शुक्ल ध्यान, तीन शुभ पीत आदि लेश्या, अनारम्भ, संयम, निर्ग्रन्थता, अचेलकत्व आदि अपने सकलचारित्र के योग्य चारित्र धर्म को अंगीकार करते हैं। तथा "झाणाज्झयणं मुक्खं जदिधम्मे" यति/अनगार के मुख्य कर्त्तव्य ध्यान व अध्ययन में रत हो अपने गृहीत व्रतों के निर्दोष आचरण में सदा तत्पर रहते हैं। घोर उपसर्ग परीषह के आने पर भी 'वत्थु सहावो धम्मो' रूप धर्म में विचरण करते हुए, वस्तु स्वरूप के परिणमन के ज्ञाता द्रष्टा/ज्ञायक मात्र बनकर सभी कुछ क्षमादि भावों के द्वारा जीतते हैं, अपने स्वभाव से विचलित नहीं होते हैं।

"दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा" श्रावक धर्म में दान व पूजा मुख्य कर्त्तव्य है। श्रावक जीवन में सुबह से शाम तक गृहस्थाश्रम की क्रियाओं का सम्पादन करना पड़ता है, उसे उसके लिए अर्थ उपार्जन करना भी अनिवार्य है। इस क्रिया में सावद्य/पाप होता ही है, फिर गृहस्थाश्रम में पीसना, कूटना, झाड़ना, बुहारना, रसोई बनाना/भोजन तैयार करना और पानी भरना आदि पञ्चसूना पापों से वे बच भी नहीं पाते। इसके अतिरिक्त व्यापार, धंधा, पञ्चेन्द्रिय विषयों में, भोगोपभोग की सामग्री में राग-द्वेष परिणाम होना भी स्वाभाविक ही है। इन सावद्य क्रियाओं से उपार्जित पाप की शुद्धि श्रावक धर्म में जिनपूजा व सुपात्रदान से ही हो सकती है।

जिनपूजा श्रावक धर्म का प्राण है। यह गृहस्थ धर्म की आधारशिला है। जिस प्रकार ध्यान-अध्ययन के बिना यतिधर्म टिक नहीं सकता उसी प्रकार जिनपूजा व पात्रदान के बिना श्रावक धर्म टिक नहीं सकता। सामान्यत: पूजा सद्गृहस्थ का मुख्य कर्त्तव्य है। गृहिणी का कर्त्तव्य घर है। घर की अधिष्ठात्री धर्मपत्नी कहलाती है। पति के साथ-साथ समस्त धार्मिक क्रियाओं का/अनुष्ठानों का सम्पादन जहाँ दम्पति वर्ग करते हैं वहीं सागार धर्म है अत: जैनाचार्यों ने

श्रावकाचार में एक ही प्रकार का वर्णन किया है। आज तक किसी भी आगम में श्रावकाचार व श्राविकाचार पृथक्-पृथक् नहीं बताये अत: दम्पति वर्ग को समान रूप से प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव की अष्टद्रव्य से पूजा, अर्चा, अभिषेक आदि करना चाहिए।

सौ कार्य छोड़कर नहाना चाहिए,
हजार कार्य छोड़कर भोजन करना चाहिए,
लाख कार्य छोड़ कर राजाज्ञा पालना चाहिए और
करोड़ों कार्य छोड़कर जिनेन्द्रदेव की पूजा करना चाहिए।

गृहस्थ आश्रम में धन-सम्पत्ति आदि भोगोपभोग से शरीर को खुराक मिलती है परन्तु आत्मा को खुराक दान से मिलती है। धन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग है दान। उत्तम-मध्यम जघन्य पात्रों में, साधु पुरुषों, मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं, श्रावक-श्राविकाओं में यथायोग्य भक्तिपूर्वक दान देवें। समन्तभद्र आचार्य ने लिखा है–

नवपुण्यैः प्रतिपत्ति सप्त गुण समाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

पञ्चसूना पाप और आरम्भ रहित आर्यजन–सकलसंयमी मुनि, आर्यिका व एकदेश संयमी क्षुल्लक-क्षुल्लिका के लिए श्रद्धा, तुष्टि/संतोष, भक्ति, विवेक, निर्लोभता, क्षमा और सत्य इन सात गुणों व पड़गाहन, उच्चासन, पाद-प्रक्षालन, पूजा, नमस्कार, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि व भोजन शुद्धि नवधाभक्तिपूर्वक दान देना श्रावक का धर्म है। इसी प्रकार श्रावक का कर्त्तव्य है कि वह आहार-औषध-अभयदान व ज्ञानदान देकर स्व-पर का उपकार करे तथा दीन-दुखियों को करुणा भाव से दान करे–

दातारों का मजा इसी में, खाने और खिलाने में।
कंजूसों का मजा इसी में, जोड़-जोड़ मर जाने में॥

धन को सप्त क्षेत्रों–जिनचैत्य, चैत्यालय, चार दान, जिनतीर्थ, जिन आगम, पञ्चकल्याणक महोत्सव, जिनमहोत्सव आदि में दान देकर अपने धन का सदुपयोग करना चाहिए। आचार्यों का कथन है अधिक नहीं तो कम से

कम कमाई का दसवाँ हिस्सा तो श्रावक को दान में अवश्य ही देना चाहिए। प्रकृति का नियम है कि चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र का बरसा पानी पीता है। कवि की सुन्दर कल्पना बादलों को संबोधित कर रही है–

वितर वारिद वारिद वातुरे, चिर पिपासित चातक पोतके।
प्रचलिते मरुतेक्षणमन्यथा, क्व च भवान् क्व पय: क्व च चातक: ॥

हे बादल! बरसो, बरसो, बहुत देर से चातक पक्षी के लिए कुछ बिन्दु जल बरसा-बरसा दे। अन्यथा हवा का प्रबल वेग आते ही पता नहीं तू कहाँ उड़कर पहुँचेगा। कहाँ तेरी यह बूँद होगी और कहाँ यह चातक होगा? इसी तरह भव्यात्माओ! धन को समय रहते दान में लगा दो अन्यथा पता नहीं कब पापरूपी पवन इसे उड़ाकर ले जाये, कोई छापा डालेगा, कोई डाका डालेगा, कोई किडनेप करके यह सब तेरे पास से ले जायेगा। चंचला लक्ष्मी हाथ से उड गयी तो तू सिर ठोककर पछतायेगा। श्रावक धर्म, दान व पूजा कर्त्तव्यपालन के लिए प्रथम 'कुलाचार' का पालन आवश्यक है। मद्य, मांस, मधु तीन मकार का त्याग व बड, पीपल, पाकर, ऊमर व कठूमर पाँच फलों का त्याग, रात्रि भोजन नहीं करना, पानी छानकर पीना व नित्य वीतराग जिनदेव का दर्शन करना ये जैनकुल के कुलाचार हैं। जैसे मूल के बिना वृक्ष, नींव के बिना मकान ठहर नहीं सकता वैसे कुलाचार के बिना श्रावक धर्म नहीं हो सकता। जैनकुल में जन्म लेने मात्र से कोई जैनी नहीं हो जाता। गाँधीजी ने लिखा है–मैं जैन कुल में उत्पन्न होने मात्र से किसी को जैनी नहीं मानता किन्तु जो भी रात्रि भोजन का त्यागी है उसे मैं जैनी मानता हूँ।

पहले, आचरण से जैनी की पहचान होती थी, कोई भी जैन भाई नल पर कपड़ा लगाकर पानी पीता तो व्यक्ति दूर से देखकर ही कह देते थे वह जैनी है। जैनी यात्रा को निकलते थे तब अपने लोटा छन्ना डोरी साथ रखते थे। कभी याचना नहीं करते थे। कहावत प्रसिद्ध है–"लोटा डोर छरी उसकी यात्रा खरी।" खाने के पीछे आज व्यक्ति पागल सा बन गया है। सबसे प्रथम 'बेड टी' इसके बिना तो नींद नहीं खुलती, डनलप का गद्दा नहीं छूटता, फिर चाय फिर नाश्ता, फिर चाय फिर भोजन, फिर दोपहर की चाय फिर भोजन, फिर रात में नाश्ता

चाय, दिन और रात खाते रहो फिर भी शान्ति नहीं। अरे भैया हमारे पास आओ बढ़िया चाय, नाश्ता करो, ऐसा नाश्ता कि फिर भूख-भूख चिल्लाना नहीं पड़े। आओ हम तुम्हें चाय पिलाएँ–

हमारी चाय–

प्रभु नाम की चाय पी लो, आत्मध्यान का नाश्ता।
ज्ञानामृत का भोजन कर लो, यही मोक्ष का रास्ता।।

आज घरों में कुलाचार, भारतीय संस्कृति के आचार तो समाप्त हो गए। फैशन में मानव बिक गया। लड़के-लड़कियों की वेश-भूषा ऐसी बन गयी कि लड़के-लड़कियों की पहचान ही नहीं हो पाती। लड़के बड़े-बड़े बाल रखने लगे तो लड़कियाँ बाल कटाने लगीं। लडकों की पोषाक लड़कियाँ पहनने लगीं। सास-ससुर के प्रति, माता-पिता के प्रति आदर्श विनय, सम्मान, सत्कार की भावनाएँ समाप्त हो गयी हैं। बेटी और बहू के आदर्शों की मर्यादा का लोप हो गया। श्रावक या मुनि जो जिस पद में स्थित है उसी के अनुकूल क्रिया कर्त्तव्य धर्म कहलाता है। श्रावक अपनी मर्यादाओं से दूर हो रहा है। सीता जब तक लक्ष्मणरेखा में रही रावण उसका हरण नहीं कर पाया। सीता ने जैसे ही लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन किया उस पर विपत्तियों का पहाड़ आ पड़ा। यही अवस्था श्रावक धर्म में आज हमारे समाज की है। सामाजिक नियंत्रण, मर्यादाओं का उल्लंघन होने से आज घर-घर अशान्ति का वातावरण है। कुलाचार की मर्यादा लुप्त हो गई है। जिस घर में कुलाचार धर्म का पालन नहीं होता, वहाँ देव-पूजा, दान आदि श्रावक धर्म का पालन नहीं हो सकता। श्रावक का कर्त्तव्य है निर्णय करे–''हमें जीने के लिए खाना है या खाने के लिए जीना है।'' आज जैनकुलों में श्रावकधर्म की मर्यादा नहीं रह गई। एक पशु भी जिन कार्यों को नहीं करता, जिन चीजों को नहीं खाता, वह मानव करता व खाता है। कोई पशु पान पराग नहीं खाता किन्तु मनुष्य खाता है, कोई पशु चोरी-डकैती करके जेल नहीं जाता पर मनुष्य चोरी, डकैती, दुष्कर्म करके जेल जा रहा है। मैं एक नगर में पहुँचा। मुझ से एक व्यक्ति ने कहा–महाराजजी, आशीर्वाद दीजिये! मैंने कहा–सफेद-सफेद, गोल-गोल कुछ खाते हो? जी हाँ। मुँह से धुआँ निकालते

हो? जी हाँ। कुछ-कुछ पीते भी हो? जी हाँ। मुँह में चबाते भी हो? जी हाँ। मैंने कहा, अरे भाई! ऐसे काम तो गधा भी नहीं करता, घोड़ा भी नहीं करता, फिर ये बताओ घोड़ा, गधा को आशीर्वाद दूँ या आपको?

आगे आचार्यदेव ने कहा–"रयणत्तयं च धम्मो" रत्नत्रय धर्म है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र धर्म है।

सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि, भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥र.श्रा.॥

सम्यग्दर्शन-तत्त्वों का श्रद्धान, देव-शास्त्र गुरु का श्रद्धान, **सम्यग्ज्ञान**-तत्त्वों का जैसा स्वरूप है वैसा जानना और **सम्यक् चारित्र**-पापक्रियानिवृत्ति ये संसार की दुखमयी अवस्था से उठाकर मुक्ति में ले जाते हैं अतः धर्म हैं और इनसे विपरीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र संसार-मार्ग है।

कुन्दकुन्द आचार्य 'दर्शन पाहुड' में लिखते हैं–"दंसणमूलो धम्मो" धर्म का मूल सम्यक्त्व है। दर्शन के अभाव में ग्यारह अंग नौ पूर्व का ज्ञान अथवा बाह्य विविध प्रकार का ज्ञान भी भार रूप है, मिथ्या ही है तथा सम्यक्त्व के बिना कठोर व्रत, उपवास, तपश्चरण आदि भी पत्थर की नौकावत् डुबोने वाला ही है। एक बार अन्तर्मुहूर्त के लिए जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो अनन्त संसार, पंचपरावर्तन से वह छूट जाता है, मात्र अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार उसके लिए शेष रह जाता है। सम्यक्त्व के होते ही समस्त ज्ञान सम्यक् व चारित्र सम्यक् हो जाता है। अतः हमें शंकादि २५ दोषों से रहित सम्यक्त्व प्राप्ति का पुरुषार्थ करना है।

णाणं णरस्स सारं, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥३१ द.पा.॥

ज्ञान जीव के लिए सारभूत है, ज्ञान की अपेक्षा दर्शन सारभूत है क्योंकि सम्यक्त्व से चारित्र सम्यक्त्व नाम पाता है और चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में वीतशोकनगर में राजा वैश्रवण राज्य करते

थे। एक दिन वे बसन्त ऋतु में क्रीड़ार्थ किसी उद्यान में पहुँचे। आमोद-प्रमोद करते हुए राजा की दृष्टि शिला पर विराजमान ध्यानमग्न मुनिराज पर गई। मुनि-चरणों में जाकर उसने उल्लासपूर्वक विनय से उनको पंचांग नमस्कार किया। आगम में कथन आता है कि पुरुष वर्ग देव-शास्त्र-गुरु के लिए पंचांग या अष्टाङ्ग नमस्कार करें तथा स्त्रियाँ गवासन और व्रती, त्यागी वर्ग सदा गवासन से नमस्कार करें। राजा ने मुनिराज को पंचाङ्ग नमस्कार किया व धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की।

मुनिराज ने कहा–राजन्! यह जीव अनादिकाल से मोह व मिथ्यात्व में फँसा हुआ मिथ्या श्रद्धा, ज्ञान, आचरण करता हुआ पुन: पुन: कर्मबन्ध करता हुआ जन्म-मरण के दु:खों को उठाता है। वास्तव में इसके हितकारी "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। यही सच्चे सुख का मार्ग है। जो इसकी आराधना करता है, बाह्य में रत्नत्रय व्रत करता है वह मुक्ति को प्राप्त करता है। राजा–गुरुदेव! रत्नत्रय व्रत की विधि बताइये।

मुनिराज–भादों, माघ और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में तेरस, चौदस, पूर्णिमा तीन दिन तक यह व्रत किया जाता है। द्वादशी को व्रत की धारणा और प्रतिपदा को पारणा होता है। उत्तम तो तीनों दिन उपवास करें, पाँचों दिन सावद्य कर्म त्यागकर सामायिक, पूजा, स्वाध्याय, जाप आदि में समय बितावें। इस प्रकार उत्तम १२ वर्ष, मध्यम ८ वर्ष (कांजी आहार बेला करके)। इतनी शक्ति न हो तो एकासन के साथ ३ या ५ वर्ष तक यह व्रत करें। पश्चात् शक्ति अनुसार उद्यापन करें–रत्नत्रय विधान करें।

"ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नम:" मन्त्र का जाप करें। राजा ने मुनिराज से व्रत का संकल्प लिया। व्रत को यथाविधि पूर्ण कर उद्यापन किया।

पश्चात् एक दिन वैश्रवण राजा बड़े भारी वटवृक्ष को जड़ से उखड़ा देख वैराग्य को प्राप्त हुए और दीक्षा धारण कर अन्त में समाधिमरण कर अपराजित विमान में अहमिन्द्र हुए। वहाँ से चयकर मिथिलापुरी में कुम्भराय राजा के पुत्र तीर्थंकर मल्लिनाथ हुए। रत्नत्रय धर्म का आराधक या तो उसी भव से मुक्ति

को पाता है या तीन या चार भव का उल्लंघन नहीं करता। रत्नत्रय धर्म साक्षात् मुक्ति का हेतु है। छहढाला में दौलतरामजी ने लिखा है–

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारे, तबही सुख अचल निहारे॥

"जीवाणं रक्खणं धम्मो"–"धम्मो दयाविसुद्धो" जहाँ दया है वहाँ निर्मल धर्म है।

"धर्म का मूल दया है" प्राणी मात्र में दया-भाव होना मन-वचन-काय से किसी भी प्राणी का घात नहीं करना। मानसिक-वाचनिक-कायिक हिंसा से रहित दया अनुकम्पा रूप परिणाम धर्म है। धर्म मानव ही नहीं जीव मात्र का स्वभाव है। सिंह क्रूर होकर भी अपने बच्चों पर दयालु है। इससे सिद्ध होता है कि दया जीव मात्र का स्वभाव है–"अहिंसा परमो धर्म:" अहिंसा धर्म मंगल है, उत्कृष्ट है, जिसके मन में यह धर्म होता है वह देवों के भी द्वारा पूजा जाता है।

पाप समय निर्बल बनो, धर्म समय बलवान।

पुराणों में आचार्यों की सबसे प्रथम देशना यही हुई, हिंसा आदि पाँच पाप हैं उनका त्याग करो, पाप अधर्म है। पुण्य धर्म है। भगवान् वीर का जीव उसने सर्वप्रथम सिंह की पर्याय में हिंसा करने का, मांस खाने का त्याग किया, भगवान् नेमिनाथ के जीव ने भील की पर्याय में मांस खाने का त्याग किया वे तीर्थंकर बने। मानव को 'पापभीरु' बनना आवश्यक है। पहले छोटा सा पाप करते व्यक्ति को नरक जाने का डर था, आज मानव मन से पापभीरुता निकल गई। उसी का फल है–मांस-निर्यात, कत्लखाना खोला जाना आदि। सत्य ही लिखा है–"पापमरातिधर्मो बन्धुः जीवस्य"।

इस प्रकार धर्म की विविधता जानकर अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार आचरण करें। सर्वप्रथम हिंसादि पापों का त्याग करें, पश्चात् तत्त्वार्थ का सच्चा श्रद्धान कर रत्नत्रय की आराधना कर उत्तम क्षमादि धर्म को धारण करें तभी "वत्थुसहावो धम्मो" की प्राप्ति कर आत्मा सिद्धसुख को प्राप्त कर धर्ममय बनेगा।

काल-परिस्थितियों के अनुसार दृष्टान्त बदल सकते हैं, समझाने की शैली भी बदल सकती है, भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन बदल सकता है पर मूल सिद्धान्त कभी नहीं बदलते हैं। "वस्तु स्वभाव धर्म कभी भी नहीं बदलता।" धर्म शाश्वत है, अकाट्य है। बाह्य वस्तुएँ सब बदल सकती हैं पर धर्म कभी नहीं बदलता। **यशस्तिलक चम्पू** में **सोमदेव आचार्य** ने लिखा–पुरुष अपना रहन-सहन सब कुछ बदल दे पर धर्म नहीं बदल सकता, पर यदि अरिहंत देव के प्रति मन से श्रद्धा खत्म हो जायेगी तब धर्म परिवर्तित हो जायेगा।

आज मानव के पास सब कार्यों के लिए समय है पर धर्मकार्यों के लिए 'No time' समय नहीं है। टी.वी. देखने के लिए, मनोरंजन के लिए, खेलने, कूदने, घूमने के लिये समय है, पर धर्मकार्य के लिए समय नहीं है, उसे कवि कहते हैं–

हरदम है तैयार तू पाप कमाने के लिए।
कुछ तो समय निकाल प्रभुगुण गाने के लिए॥

एक व्यक्ति मुझसे बोला–महाराज! धर्म करने में मन नहीं लगता क्या करें? मैंने कहा–भैया! 'करिष्यामि' का मन्त्र–यह करूँगा, यह करना है, वह करना है–इस मन्त्र को बदलकर 'मरिष्यामि'–इस मन्त्र को जपना शुरू कर दीजिये। मुझे मरना भी है–यह जिस क्षण निश्चित हो जायेगा उसी क्षण आवाज आयेगी मरना है, फिर संसार में क्या करना है? बस, धर्म करने की भावना जागृत हो जायेगी।

अन्त में यही कहना है–जिस प्रकार रत्नों में श्रेष्ठ हीरा है, वृक्षों में श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन है उसी प्रकार धर्मों में श्रेष्ठ धर्म अहिंसा धर्म है, वस्तु स्वभाव धर्म है, उसी से प्रीति करो–

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद् भव्यः, भाविनिर्वाणभाजनं॥

संसार आकाशरूपी दो पाटों के बीच जीव निरन्तर दुखी है किन्तु जो धर्मरूपी कील का सहारा लेते हैं वे शाश्वत अविनाशी सुख को प्राप्त करते हैं। क्योंकि धर्म मानव से मानव को जोड़ता है, तोड़ता नहीं। मानव जीवन

में जीने की कला धर्म से ही आती है। जो धर्मपूर्वक जिन्दगी में जीया नहीं वह शान्ति से मर भी नहीं सकता, अत: धर्म को धारण करो।

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलपर्वत-मन्दिरम्।
चलाचली च संसारे, धर्म एको हि निश्चल:॥

इच्छित वस्तु देने के लिए धर्म ही कामधेनु है, धर्म ही चिन्तामणि है, धर्म ही स्थिर रहने वाला कल्पवृक्ष है तथा धर्म ही अविनाशी निधि है।

♦ ♦

मोक्ष: कर्मक्षयादेव,
स चात्मज्ञानतो भवेत्।
ध्यानसाध्यं मतं तच्च,
तद् ध्यानं हितमात्मन:॥

卐 भरत वाणी 卐

- प्रतिकूल पर कभी बरसो नहीं, अनुकूल पर कभी हरषो नहीं और ख्याति-पूजा-लाभ के लिए तरसो नहीं।
- जो छोड़ता जायेगा वह ऊँचा उठता जायेगा और जो जोड़ता जायेगा वह डूबता जायेगा।
- हमेशा प्रसन्नचित्त रहो, क्योंकि प्रसन्नता आसन्न भव्य में होती है। छिद्रान्वेषी नहीं, गुणग्राही बनो।
- कभी कैंची का काम मत करो, सूई का काम करो। परशरण ही मरण है। यदि किसी से बचना है तो पाप से बचो।
- पुरुषार्थ के बल पर असंभव को संभव बनाया जा सकता है। पुरुषार्थ ही सफलता की कुंजी है।
- एक मिनट का क्रोध ६० मिनट की प्रसन्नता को नष्ट कर देता है। क्रोध तो विष है, इसका त्याग करना ही सुखकर है।
- लाभ में लोभ न हो गया तो भला है, यदि लाभ में लोभ आ गया तो पतन होगा।
- अभिषेक करने से पापों का प्रक्षालन होता है, परिणामों की विशुद्धि होती है।
- तीर्थ हमारी धरोहर हैं। तीर्थ की रक्षा हमारी रक्षा है। प्रत्येक धर्मस्नेही का कर्तव्य है कि अपनी कमाई का दसवाँ हिस्सा तीर्थों में लगावे।
- संगठन के बिना मोक्ष नहीं बनता। अकेला सम्यग्दर्शन, अकेला ज्ञान व अकेला चारित्र शाश्वत सुख देने में असमर्थ है।
- आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद व जीवन में अपरिग्रह धारण करो।
- पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। पापी तो सुधर सकता है पर पाप कभी नहीं।

- आत्मगौरव नष्ट करके जीना मृत्यु से भी बुरा है।
- कष्टों से घिरे होने पर भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए।
- पतितों को पावन बना देने की योग्यता धर्म में ही है।
- जीवन में ज्ञान के साथ श्रद्धान की आवश्यकता है।
- संयमरहित जीवन पशुतुल्य जीवन है।
- हजार मन ज्ञान से एक मुट्ठी चारित्र श्रेष्ठ है।
- मनुष्य वही है जो अपने वचनों का पालन करे।
- मेरी भूल बताने वाला मेरा परम मित्र है।
- दूसरे के द्वारा तुम्हारा कोई अनिष्ट हो जाये तो उसके लिए खेद न करो। उसे अपने पहले किये हुए बुरे कर्मों का फल समझो।
- अपने दोषों को देखने की आदत डालो। तभी तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा मन भी दोषों से भरा है, फिर दूसरे के दोष देखने की फुरसत ही नहीं मिलेगी।
- किसी के मुख से कोई बात विरुद्ध सुन उसे अपना विरोधी मत मान बैठो। विरोध का कारण ढूँढ़ो, उसे मिटाने की सच्चे हृदय से चेष्टा करो।
- शुभ परिणाम से पुण्य होता है, अशुभ परिणाम से पाप होता है और शुद्ध परिणाम से मोक्ष होता है।
- अपने भाग्य पर संतोष रखकर पुरुषार्थ करना चाहिए।
- निन्दा करने वाले से निन्दा सुनने वाला ज्यादा पापी है।
- अकेले रहकर जीवन बिताना अच्छा है किन्तु दुर्जनों की संगति कभी अच्छी नहीं होती है।
- पूज्य पुरुषों में आदर ही भक्ति है। वह भक्ति पूजक को पूज्य बनाती है, गुणों में अनुराग बढ़ाती है।
- इच्छाएँ जीव को संसार-समुद्र में पटकती हैं। इन इच्छाओं को ध्यान, स्वाध्याय, चिंतन-मनन से भव्यगण काबू में कर सकते हैं।
- सर्व-दुखों से छुड़ाने वाले, णमोकार मंत्र के जपने से सर्व कार्य अपने आप सिद्ध हो जाते हैं।

- अन्याय से अर्जित किया हुआ धन दस वर्ष तक टिकता है, पर ग्यारहवें वर्ष में मूल से नाश कर देता है। अतः धर्म सहित धन का अर्जन करो।
- सत्पुरुषों की वाणी से हृदय-नेत्र खुल जाते हैं। जिसके हृदय में सत्पुरुषों की वाणी ने प्रवेश नहीं किया, वह वास्तव में अन्धा है।
- सुख-दुख, स्वर्ग-नरक हमारे स्वयं के शुभ-अशुभ कर्मों के फल हैं। दूसरों को दोषी बताना अज्ञान है।
- संसार में यदि हमारे कोई शत्रु हैं, जिनसे हमें लडना है तो वे हैं राग, द्वेष और मोहादि।
- *इस संसार में शरीर से तो सभी प्यार करते हैं परन्तु खेद है कि अपनी आत्मा से प्यार करने वाले विरले ही होते हैं।*
- प्राणिमात्र में वह असीम शक्ति मौजूद है जिसके द्वारा प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है।
- संसार के सभी धर्मों में दया को प्रधानता दी गई है। इसके बिना धर्म नाम की कोई सार्थकता नहीं।
- मानव को विवेक से काम लेना चाहिए, जिससे परिणामों में निर्मलता और शान्ति मिल सके।
- जो लोग अपने मानव-जीवन की सार्थकता चाहते हैं, उन्हें हर समय अपने स्वरूप का चिंतन करना चाहिए और पाप-प्रवृत्ति से बचना चाहिए।
- मानव अगर चाहे तो शान्ति से क्रोध को मार सकता है, नम्रता से अभिमान को जीत सकता है, सरलता से माया को तथा संतोष से लोभ पर काबू पा सकता है।
- मानव धन से नहीं, आचरण से महान् बनता है। किसी की आलोचना करना जितना आसान है, उससे प्रेरणा लेना उतना ही कठिन है।
- जिस मनुष्य में धर्म के प्रति अविश्वास हो उसे मृतक समझना चाहिए।
- प्रत्येक प्राणी अनादिकाल से सुख एवं शांति चाहता है। वास्तविक सुख-शान्ति तो अपनी आत्मा में ही है।
- संसार में जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग अवश्य ही होगा। उसको

कष्टरूप समझकर दुखी होना योग्य नहीं।

- धर्म में अनुराग हुए बिना धार्मिकजनों की सेवा नहीं हो सकती और धर्म-दृष्टि के बिना संसार से पार होने का रास्ता नहीं देख सकता।
- सज्जनों की परीक्षा विपत्ति में होती है। उस समय कसौटी पर खरा उतरना ही सज्जनता है।
- विपत्ति के आने से पहले ही उसका उपाय सोचना चाहिए। घर में आग लगने पर क्या कोई कुआ खोद सकता है?
- यदि किसी लोभी व्यक्ति को तीनों लोकों की समस्त विभूति भी प्राप्त हो जाये, तो भी वह सन्तुष्ट नहीं होता।
- सदाचार-रहित मनुष्य का जन्म निरर्थक है।
- आत्मज्ञानी को उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं।
- जो मनुष्य समय पर काम कर लेते हैं, वे कभी नहीं पछताते। अत: जो कल करना है उसे आज ही कर डालो।
- सत्य चन्द्रमा से अधिक सौम्य और सूर्य से अधिक तेजस्वी होता है।
- जो परिग्रह में फँसे हुए हैं, वे बैर को ही बढ़ाते हैं। परिग्रह के लिए मनुष्य न करने योग्य कामों को भी करता है।
- परिग्रह से रहित मनुष्य का जीवन स्वाधीन और निर्भय होता है।
- इस संसार में जैसे अणु से छोटी कोई वस्तु नहीं है और आकाश से बड़ा कोई द्रव्य नहीं है, उसी प्रकार अहिंसा से बड़ा कोई दूसरा व्रत नहीं है।
- रागी जीव कर्म को बाँधता है और वीतरागी कर्मों से मुक्त होता है।
- कर्म के उदय के कारण शत्रु भी मित्र हो जाता है और मित्र भी शत्रु हो जाता है। यह संसार का स्वभाव है।
- बहुत बोलना दु:ख का मूल कारण है।
- आत्मा की निर्बलता ही दुख की जननी है।
- जो आशा के दास हैं वे संसार के दास हैं। जिन्होंने आशा को जीत लिया, संसार उनका दास हो जाता है।

- *झूठी प्रशंसा करने वाले चाटुकारों से बचो। खुशामद करने वालों को सदैव अपने खतरे की निशानी समझो।*
- *धैर्य से काम लीजिये और परिणामों को निर्मल बनाने का यत्न कीजिये। आपके सभी कार्य अनायास ही सिद्ध हो जायेंगे।*
- जो प्राणी निष्कपट भाव से काम करता है उसका काम सदा सफल होता है।
- अपने मन को स्थिर करके तत्त्वों में श्रद्धान करना मोक्ष-प्राप्ति का प्रथम उपाय है। आत्मा की शुद्ध अवस्था का नाम ही मोक्ष है।
- धर्म का मर्म जानने से आकुलता नहीं रहती है। आकुलता मोक्ष-मार्ग में बाधक है जब कि निराकुलता साधक है।
- प्रत्येक सत्कार्य के लिए प्रयास करना तब तक मत छोड़ो जब तक कार्य की सिद्धि न हो जाये। कार्य की सिद्धि के लिए मन, वचन और काय से प्रयत्नशील होना आवश्यक है।
- मानवता वही है जिसके होने पर स्व-पर भेदविज्ञान हो जावे। भेदविज्ञान वही है जिससे आत्मा परमात्मा बन जावे।
- धर्म वही है जहाँ पर मोह और क्षोभ का अभाव है। वास्तव में धर्म की उत्पत्ति कषायरहित भावों में ही है।
- पर को जानने और देखने की इच्छा को छोड़कर स्व को जानने और देखने की आदत डालो।
- क्रोध पर विजय होने से क्षमागुण सहज में निखर जाता है क्योंकि क्षमा आत्मा का स्वभाव होने से निजी सम्पत्ति है।
- संसार से मुक्त होने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि पर-पदार्थों में आत्मीयता लगाना छोड़ दो।

❋ ❋ ❋